पांडेय-स्मृति-ग्रंथ

स्व० पंडित रूपनारायण पांडेय की स्मृति में
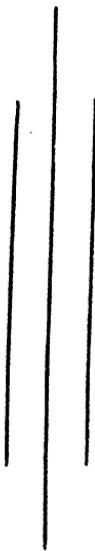
संपादक

डॉ० प्रेमनारायण टंडन

प्रकाशक
हिंदी - साहित्य - मंडार
गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ

प्रथमावृत्ति, १९५९
मूल्य ५)

मुद्रक
विद्यामंदिर प्रेस
रानीकटरा, लखनऊ

निवेदन

वचन-ऋण से मुक्ति—

पिछले वर्ष, १२ जून, १९५८ को स्वर्गीय पांडेय जी के मृत्यु-दिवस पर रानीकटरे के गणेशमंदिर में आयोजित शोक-सभा में स्वर्गीय पांडेयजी की स्मृति-रक्षा के लिए एक 'स्मृति-ग्रंथ' निकालने का सुझाव मैंने दिया था। स्व-संपादित 'रसवंती' का 'स्मृति-अंक' और प्रस्तुत 'स्मृति-ग्रंथ', दोनों को प्रकाशित करने का सुयोग पाकर आज उस वचन-ऋण से उऋण हो सका हूँ। मेरी इस ऋण-मुक्ति का सारा श्रेय पांडेय जी के उन मित्रों और स्नेहपात्रों को है जिनकी रचनाएं इन दोनों में प्रकाशित हुई हैं और जिन्होंने मेरे निवेदन पर इस प्रकार कृपापूर्ण सहयोग देकर मुझे आभारी किया है।

'पांडेय-स्मृति ग्रंथ के लिए सामग्री का संकलन हो जाने पर प्रकाशन की जटिल समस्या सामने आयी। एक तो प्रकाशकों की आर्थिक स्थिति यों ही बहुत डावांडोल है, उस पर कागज के अकाल का समय, और 'अंक' के साथ-साथ 'ग्रंथ' भी प्रकाशित करने की योजना—इन सबको सोचकर कभी-कभी तो बहुत घबराहट होती थी कि सारा कार्य किस प्रकार सिमट सकेगा। ऐसी स्थिति में मेरे अनुज तेजनारायण जी सहायक हुए और 'स्मृति-अंक' तथा 'स्मृति-ग्रंथ', दोनों के व्यय का भार उन्होंने अपने ऊपर लेकर मुझे चिंता से मुक्त किया। इस सहयोग के लिए मैं उनके कल्याण की कामना करता हूँ।

'स्मृति अंक' और 'ग्रंथ' की रूपरेखा—

प्रतिष्ठित साहित्यकारों की स्मृति में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के 'अंक' की रूपरेखा तो सामान्यतया वैसी ही होती है, जैसी 'रसवंती' के 'पांडेय स्मृति अंक' की है, परतु 'ग्रंथ' का आकार-प्रकार भिन्न रहता है और कभी-कभी तो अनेकानेक विषयों के निबंध उनमें संकलित रहते हैं। वैसा करने में इतना लाभ तो अवश्य होता है कि अधिकारी विद्वानों के प्रामाणिक लेख रहने से ग्रंथ स्थायी महत्व का हो जाता है; परंतु उसके लिए जितने साधनों की और जितने समय की आवश्यकता होती है, वे सबको सुलभ नहीं होते। अस्तु, किसी के प्रति श्रद्धा की भावना जितनी साधन-संपन्नों में होती है, साधनहीनों में उससे

अधिक नहीं तो कम भी नहीं होती। किसी महान व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए बहुमूल्य उपहार ही अपेक्षित नहीं है, अपनी भावना का परिचय फूलों की एक माला से भी दिया जा सकता है। भगवान को 'भाव-ग्राही' कहने के मूल में वस्तुतः यही सांत्वना है कि अकिंचन भी ऐसे अवसरों पर अपनी भावना को व्यक्त न कर सकने पर अपने को अभाग्यवान समझने की निराशा से बचा रहे। अतः हमारी साधनहीनता के कारण ही प्रस्तुत 'स्मृति-अंक' बहुत सादे रूप में प्रकाशित हो रहा है। आरंभ में अपनी साधन-हीनता की बात सोचकर ऐसा महत्वपूर्ण कार्य हाथ में लेने से बार-बार संकोच हो रहा था। अंत में साधन-हीनता के विचार की दुर्बलता भी इस तर्क के सामने दब गयी कि जो साहित्यमनीषी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अंतःकरण से सादगी का ही पुजारी रहा हो, अपने संपर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को व्यवहार की सभी बातों में 'सादगी' अपनाने के लिए ही प्रोत्साहित करता रहा हो, उसकी 'स्मृति-रक्षा' का आयोजन भी यदि 'सादगी' से ही किया जाय तो उसमें संकोच की क्या बात है? इससे तो 'सादगी' के उस व्यवहारक, समर्थक और प्रशंसक की आत्मा को संतोष ही होना चाहिए। अस्तु, हम अकिंचनों का स्वर्गीय पांडेय जी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने का यह साधारण प्रयास भी भावना की दृष्टि से ग्रहण किया जायगा, ऐसी आशा है।

कृतज्ञता-प्रकाश—

इस स्मृति ग्रंथ की सफलता का सारा श्रेय स्वर्गीय पांडेय जी के उन घनिष्ठ मित्रों, सहयोगियों और परिचितों को ही है जिनकी रचनाएँ इसमें प्रकाशित हुई हैं। उनके कृपापूर्ण सहयोग के लिए हम उनके प्रति हृदय से अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

क्षमा-याचना—

विलंब से प्राप्त होने के कारण कुछ लेख उचित स्थान पर नहीं जा सके और याचनापूर्वक लिखाये गये कुछ लेख स्थानाभाव से प्रकाशित नहीं किये जा सके। इन दोनों बातों का हमें हार्दिक खेद है। कुछ लेखों में अनेक कारणों से काट-छाँट भी करनी पड़ी है जिसके लिए हम उनके विद्वान लेखकों के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं।

—संपादक

विषय-सूची

(२) प्रशस्ति

(३) संदेश

(४) संस्मरण और श्रद्धांजलि

(५) विचारधारा

(६) मूल्यांकन

(७) परिशिष्ट

पांडेय-स्मृति-ग्रंथ

पांडेय स्मृति ग्रंथ

अमर साहित्यकार

स्व० पं० रूपनारायण पांडेय

'कविरत्न'

अंतिम समय तक पांडेय जी इसी प्रकार साहित्य-साधना में जुटे रहे।

पांडेय स्मृति ग्रंथ

स्व० पं० रूपनारायण पांडेय अपने पड़ोसी तथा अभिन्न मित्र **पं० भरतलाल गौड़ कथा-वाचक** के साथ। गौड़ जी ने ही पांडेय जी की अन्तिम काव्यकृति "श्रीकृष्ण चरित" का प्रकाशन किया है जो हिंदी साहित्य भंडार से ४॥) मे मिल सकता है।

प्रशस्ति

(१)

स्व० पंडित कृष्णबिहारी जी मिश्र

स्वर्गीय पंडित रूपनारायण जी पांडेय तथा स्व० पं० कृष्णबिहारी जी मिश्र अभिन्न मित्र थे। दोनों का वर्षों साथ रहा था। जिस दिन मिश्र जी की मृत्यु हुई उसी दिन आपने निम्न छंद अपने अभिन्न मित्र पांडेय जी के विषय में बनाना प्रारम्भ किया था—

"अनुवाद स्वाद मैं अलोनोपन छाय गयो
देवबानी बँगला को जानकार बूटिगो।
मंजुल रसीली अरसीली कविता की गति
उकुति जुगुति को चमतकार लूटिगो।
साहस सहानुभूति संजम सचाई सूधी
पत्रकारिता के गुनगन सब खूटिगो।
....
....

किन्तु इस छंद को वे पूरा नहीं कर सके। कदाचित तीन पद लिखने के बाद उन्होंने विचार किया हो कि लिखने से क्या लाभ ! क्यों न चलूँ और पांडेय जी से मिल कर अपने हृदय की बात उन्हीं को सुनाऊँ ! और सम्भवत: यही विचार कर वे हम लोगों को विलखता छोड़कर चले गये।

(२)

श्री सोहनलाल द्विवेदी, बिंदकी, फतहपुर

चले गए कवि किन्तु, तुम्हारी छवि न कभी जाएगी,
हे रससिद्ध ! तुम्हारी वाणी, वीणा बन गाएगी।
तपस्वियों के तप की गरिमा, सकते जान तपस्वी,
मनस्वियों के मन की थाहें पाते जान मनस्वी !
जिसमें जितनी श्रद्धा है, है भक्ति जगी हृत्तल में,
नारायण का रूप देख पाया, वह नर भूतल में।
श्रद्धाञ्जलि करता हूँ श्री चरणों में सादर अर्पित !
हे रससिद्ध कवे, यश-काया तव भव में चिरजीवित !

(३)

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, विश्वविद्यालय, बड़ौदा

नाटक, उपन्यास, निबंध, दर्शन, इतिहास, पुराण
गद्य - पद्य - रचना में जिनकी प्रतिभा सिद्ध समान;
नवयुग का उन्नायक था जिनका अनुवाद्-विधान
रहे भारती के चरणों में अर्पित जिनके प्राण;
बहा अनवरत जिनका महिमामय संपादन-स्रोत
'सुधा' 'माधुरी' 'वासंती' से जिसके अगणित पोत;
किया जिन्होंने शत-शत आकर ग्रंथों का उद्धार
उनका ज्ञानालोक उतारा जन-जीवन के द्वार;
जिनकी आर्ष-साधना-सर के कवि-कुल-कमल अनेक
करते स्वर-सौरभ-प्रसार नित नवल प्रबुद्ध- विवेक;
खिले कला-कानन में जिनके 'दलित कुसुम' अम्लान
छाया 'स्वर्ण पराग' खुली 'वन विहंगमों' की तान;
हिंदी के गौरव-स्तंभ जो उनको आज प्रणाम !
अमर रूपनारायण को शत श्रद्धा-सहित प्रणाम !
वे हिंदी के कंठहार के भास्वर रत्न महान्
स्वयं भारती भी गाती हैं उनके यश के गान।

(४)

श्री शिवसिंह 'सरोज'

खुली बाँह पर धुली हुई घर की कमीज पर सिदरी,
पहिन-पहिन कर काटी जिसने सरदी, कड़ी दुपहरी।
और गोमती की गति, जिसकी क़लम नोक पर ठहरी,
लखनपुरी का पुरुष पुरातन नूतन पथ का प्रहरी।

ममतामयी 'माधुरी' मूरति 'सुधा' सुलभ बसुधा की,
रचनाकार उदार सर्जना सबकी सुख-सुविधा की।
'नारायण' के 'रूप' निरामय, रमे हुए रस-मय हो,
कागज-क़लम, अलम जिसको है उस योगी की जय हो।

(१०)

वेद-व्यास विमल-हिन्दी के, विद्याधर बलशाली,
संपादक अनुवादक भावुक, भाषा के टकसाली।
संत गृहस्थ श्रमिक साहित्यिक रसिक विरत विज्ञानी,
'रूपनरायन पांडे' पंडित सरल स्नेहमय प्राणी।

तुमने कलम पकड़कर, छोड़ी जग की ममता माया,
अन्त समय तक भाव भारती का सब भांति निभाया।
एक-एक अक्षर में अंकित तपी, तुम्हारा तप है,
बं.या बीज, वाङ्मय का अब वह बन गया विटप है।

तुमने पकड़ हाथ हिन्दी का ऊपर और उठाया,
'अनमिल आखर अरथ' न जिनके उनको पढ़ा पढ़ाया।
तुम मत से अवगत थे, ज्ञाता थे आगम-आगत के,
भाव भागवत के, भाषा में भाष्य महाभारत के।

वाणी के मतिमान भगीरथ साधक तपे - तपाये-
नभ से गहन ज्ञान को गंगा धरती पर ले आये।
नीति-निपुण कौटिल्य कुटी के, महलों के वैरागी,
सत्य-शील-शिव सुन्दरता के, अति अनन्य अनुरागी।

श्रद्धांजलि स्वीकार करो, शारदा-सुवन शत-शत की,
भक्त भारती के, अंजलि लो भारत-भाल-विनत की ॥

(५)

श्री द्विज 'विमलेश', लखनऊ

सुनत पयान 'देव लोक' को तुम्हारो 'देव'
विकल भए हैं सब 'सतदल' साखा के।
काव्य रचना में मंजु मुकता पिरोये नित्य
करत प्रकास लेख कंचन सलाखा के॥
"द्विज विमलेश" कहैं पुहुप सुखाने आज
'सुधा' 'माधुरी' के ग्राहकों की अभिलाषा के।
जीवन में बाँह गहे देव नागरी की रहे
संस्कृती 'पंडित' प्रधान 'बंग' भाषा के॥

❀

मृदु मुस्कान आन बान में अलौकिक थे कवि थे महान बड़े चित्त के उदार थे।
शंकर समान वेदशास्त्र के सुज्ञाता रहे विमलेश भाषै भारती के कंठहार थे ॥
सुर तरु शाखा की गहे धौं मंजु लेखनी थे भाषा बँगला के अनुवादक अपार थे।
यत्र तत्र ऐसो सर्वत्र मान पाते रहे उत्तर प्रदेश के विचित्र पत्रकार थे ॥

*

सुकवि शिरोमणि थे मणि थे सुवंश बीच विद्यादान देने में समर्थ महादानी थे।
चंद के समान नित्य करते प्रकाश रहे व्यास शुकदेव के समान महाज्ञानी थे ॥
द्विज विमलेश कहैं पंडित प्रवीण पूरे लेखनी पै सुन्दर विचित्र धरे पानी थे।
निर अभिमानी ध्यानी भक्त वर बानी जू के मंजु मूर्ति उत्तरप्रदेश को निशानी थे।

(६)

पं० अखिलेश त्रिवेदी, मछरेहटा, सीतापुर

कान्यकुब्ज कुल - कमल - मित्र श्री रूपनरायन।
पंडित परम प्रसिद्ध अखंडित काव्य - रसायन ॥
हिन्दी मन्दिर - देव, कल्पना के कमलाकर।
इन्दु, माधुरी, सुधा आदि सम्पादक गुरुवर ॥
जय निरभिमान, सहृदय, सरल सिष्य - कोकनद हेतु रवि।
तव पद - सरोज अति ओज सों बदत "श्री अखिलेस कवि" ॥

(७)

श्री अवधेशदयाल, लखनऊ

जीवन की लेकर साध एक, विद्वान् धरा पर आया।
प्रतिभा जागी फिर कला हँसी, संस्कृति का राग सुनाया।
हिंदी उपवन के परिजात, सुमनों को है बरसाया।
कितने ही नव - प्रतिभावालों को मिली सुशीतल छाया ॥
माधुरी मधुर रक्खी कितनी, कितनों को सुख पहुँचाया।
सब विषय समय में वाङ्मय को, कितना सम्पन्न बनाया ॥
अनुवाद किए, निज ग्रंथ रचे, शुभ काव्य प्रवाह बहाया।
की सुलभ सुधा वसुधा में भी, साहित्यामृत बरसाया ॥

(८)

श्री गिरिजादयाल 'गिरीश', मौलवीगंज, लखनऊ

कवि-कुल-कुमुद-कलाधर की शुभ्र कीर्ति,
धवल बनाये धरा लखनपुरी की है।
कमनीय काव्य की कला के कल कौशल में,
चारों ओर चरचा सुचारु चातुरी की है।
सरस पदावली अनूपम अनूठी उक्ति,
गरिमा 'गिरीश' अनुवाद-आतुरी की है,
रसना हमारी रस-रंजित 'सुधा' से मंजु,
मुख में मधुरिमा उन्हीं की 'माधुरी' की है॥

❀

वारिज से बुध-वृन्द-विकास के, हेतु रहे रवि रूपनरायण।
माखन से मृदु प्रेमियों को रहे, मानियों को पवि रूपनरायण।
बोली खड़ी थी तथापि रहे व्रज माधुरी की छवि रूपनरायण।
भाषा 'गिरीश' प्रभा-भरी के प्रिय थे भरता कवि रूपनरायण॥

❀

कल काव्य-सरोवर-अंकज पंकज—पुंज के मंजु मृणाल थे वे।
रतनाकर से उर में भरे भाव के सीपज और प्रबाल थे वे।
कवि देव से दिव्य 'गिरीश' सदा, कविता का दिखाते कमाल थे वे।
जन-मानस-मंजु मराल, सुभारत-भारती के प्रिय लाल थे वे॥

(९)

श्री चन्द्रपालसिंह यादव "मयङ्क", एम ए. एलएल. बी, साहित्यरत्न कोर्ट, कानपुर

माधुरी द्वारा मधु का दान
दिया औ फूँक दिये नव प्राण।
प्रकाशित हुआ यथा आदित्य;
हँस पड़ा था जिससे साहित्य।

❀

हो गया 'रूप-माधुरी' योग!
मनो मणि-काँचन का संयोग!
अहा! साहित्यिक-श्री की कांति—
हरे फिर क्यों न हृदय की भ्रान्ति।

(१३)

❀

आज का साहित्यिक - संसार
स्मरण कर तुमको बारम्बार
निरख अभिनन्दन योग्य कृतित्व
तुम्हारा श्रद्धास्पद व्यक्तित्व

❀

दे रहा श्रद्धाञ्जलि इस भाँति;
सजा स्मृति - संस्मरणों की पाँति।
सरस रस - धारा का कल गान!
मिली है "रसवन्ती" की तान!!

(१०)

श्री ब्रजराज शास्त्री ब्रजेश, कृषि सूचना ब्यूरो प्रेस, लखनऊ

पाण्डे जी कुशाग्र बुद्धि सिद्धहस्त लेखक थे
कविरत्न सिद्ध लेखनी थी शुद्ध भाव था।
पण्डित प्रकाण्ड बँगला के अनुवादक थ
शिष्यवर्ग से न कोई किंचित दुराव था।
काव्य-साधना की खोज में निरत नित्य रहे
सतत प्रयत्नशील सुखद स्वभाव था।
परम पुनीत थे गुणज्ञ नवरस सिद्ध
प्रखर प्रभा प्रवीण प्रबल प्रभाव था।

❀

विज्ञता के वारिधि थे, भारती के भव्य भाल करते कमाल काव्य कला में अपार थे,
भेद भाव रहित प्रधान अनुवादक थे कुल काव्य रसिकों के कल कण्ठहार थे
भागवत और महाभारत के पंडित थे हिन्दी के हितैषी थे द्विवेदी-युगाधार थे।
युक्तियुक्त उत्तर से करते निरुत्तर थे उत्तर प्रदेश के प्रमुख पत्रकार थे।

(११)

पं० पुत्तूलाल शर्मा 'उद्दंड', दैनिक 'नवजीवन' कार्यालय, लखनऊ

चन्द्र-सा शीतल सूर्य-सा तेज समन्वित ऐसा विभास चला गया !
प्रेम-पयोधि-पीयूष पिला कुछ सीखने का है सुपास चला गया !
विद्वत्-मंडली में मणि था वही हा ! वसुधा का विलास चला गया !
पारखी काव्य गु ों का गया कवि-कोविदों का हा ! विकास चला गया !

लेखनी का बल ऐसा न है मरते-मरते मुसकान गयी !
मूक तपस्वी तपा ही किया नहीं टेक गयी, नहीं सान गयी !
कल्पना का कुल सूना हुआ कविता की चली है उड़ान गयी !
प्यार-प्रणाली गयी गुरु की प्रतिभा की चली पहचान गयी !

उठते हुओं को गति दी उसने गिरते हुओं को है सम्हाल गया !
कभी जीवन-मर्म न भूल सका वह जान अनेकों में डाल गया !
उर-अन्तर छोड़ प्रकाश गया कर सूना है हिंदी का भाल गया !
दलबंदी से दूर रहा फिर भी करके धरती पै कमाल गया !

ज्ञान-गुमान न स्वप्न में था सदा साधुता में सना धीर चला गया !
शान्ति-प्रदाता सनेह का मूल महा सुखदायी समीर चला गया !
दिव्य प्रभा का प्रसारक पावन है तटिनी का सुतीर चला गया !
छोड़ के शोक में शिष्य समूह को क्या कहें हिंदी का हीर चला गया !

स्वागत साज सजाये हैं स्वर्ग ने वैभव की क्षति से धरा रोई !
भाषा है भामिनि-सी विधवा बँगला-सी मिठास है हिंदी की खोई !
सोच में सारे सुधी जन हैं सुधि-सम्पति है उर बीच सँजोई !
क्या कहिए कहते न बने अह ! ऐसा यहाँ से चला गया के.ई !

❀

प्रतियोगिता-स्वाँग सुरों ने रचा, है बुलाया तुम्हें, गये होड़ लिया ?
महि-मानव भाये तुम्हें क्या नहीं दिवलोक से नाता है जोड़ लिया ?

यह देव प्रपंची प्रसिद्ध ही हैं फुसलाकर है तुम्हें फोड़ लिया !
हमें दीन मलीन व खिन्न बनाकर है तुमने मुख मोड़ लिया !

विष देकर दूसरों को चुपके सुधा-स्वाद स्वयं ही लिया करते !
सुरले क में सम्पदा सारी समेट दबाकर मानव को जिया करते !

इनकी करतूत की क्या चर्चा भरे डाह हैं ताप दिया करते !
यह देवता नाम ही के निरे हैं सब कर्म-कुकर्म किया करते !

(११)

देवता कैसे भले बनेंगे वह वंश ही के इनके थे न दानव ?
स्वप्न में चौंकि उठे, सहमें, कोई देख पड़ा जो इन्हें है बढ़ा नव !
अंतर ही रहने दो भला अपने को अरे उनमें मत सानव !
मानव से क्या बराबरी है उनसे, पर थे तुम तो महा मानव !

(१२)

श्रीयुत 'अधीर', १०५, गुरु गोविन्दसिंह मार्ग, लखनऊ

हिन्दी के सपूत ! तुमको ये शब्द-सुमन की श्रद्धांजलियाँ।
तुम साहित्य-निशा के उज्ज्वल
दीप्तिमान आलोक - सितारे
तुम रचना - सरि के प्रवाह को
संयत करते हुए किनारे
तेरी स्मिति पाकर बेसुध झूम उठीं कविता की कलियाँ।
दूर दूर तक दृष्टि डालकर
तुमने जो भी दृश्य निहारे
अपने नए रंग में रँग कर
तुमने जिनके रूप निखारे
आज तुम्हारे बिना तुम्हारी बिलख रहीं वे चित्रावलियाँ।
हिन्दी के हे अमर पुजारी
'सुधा' 'माधुरी' के सम्पादक
आदर्शों के स्रोत अमर
मानवता के श्रद्धेय उपासक
तेरे गुण के गीत गा रहीं इस नगरी की सिगरी गलियाँ।

(१३)

श्री योगेंद्रनाथ शर्मा, चौक, लखनऊ

साहित्य नभ सूर्याय, प्रशस्त यशसे नमः।
सुधिये शांतरूपाय, काव्य - पंकज - भानवे ॥
कविता-कामिनि कांताय, शुचये, लेखकाय च।
काव्योद्यान मयूराय, कवि रत्नाय धीमते ॥
गीर्वाणी प्रवीणाय, बंग भाषा विपश्चिते।
सम्पादकेषु श्रेष्ठाय, रूप नारायणाय वै ॥

(१४)

पंडित गौरीशंकर त्रिपाठी 'पीयूष', खेतगली, लखनऊ

ऊँचे विचार जबान मँजी हुई सादगी से भरा जीवन सारा;
बुद्धि से मण्डित, पूर्ण थे पण्डित लेश किसी का न छिद्र निहारा
लेखकों को कवियों को सदैव दिखाते रहे पथ का ध्रुवतारा—
जाके छिपे हैं अनन्त की गोद में गोमती पे वही काट किनारा ॥१॥

उर के नभ में घन वेदना के, उठे अश्रु बहा कहाँ खो गए हो;
त्याग, तपस्या तथा दृढ़ निष्ठता के वर बीज को बो गए हो।
भारती भौन में ग्रन्थों के दीप जगा-जगा के कहाँ सो गए हो।
व्यास, विनोद के प्यारे सखा! बर. बोलो तो मौन क्यों हो गए हो ॥२॥

हे पुर के गुरु गौरव! धीर, गंभीर, विनोदी, प्रशान्त, कृपाकर—
बैठे छिपे हुए हो, इस भाँति से व्यर्थ की निष्ठुरता अपनाकर।
ढूँढ़े कहाँ तुम्हें आज 'पियूष' तथा सखा 'हर्ष' 'निशंक', प्रभाकर—
आज प्रवासी किसी अनजाने प्रदेश के क्यों हुए हो कमलाकर ॥३॥

भेंट करूँ तुम्हें क्या गुरु हो तुम दाता अदम्य तुम्हें अभिवादन,
दानी दधीचि से न्यून न काव्य प्रभा से सुरम्य तुम्हें अभिवादन।
श्रद्धा से संचित छंद-प्रसूनों से ज्ञान अगम्य तुम्हें अभिवादन;
लोचन हैं युग सम्पुटों में लिए अर्घ्य प्रणम्य तुम्हें अभिवादन ॥४॥

———

(१)

डा० मैथिलीशरण गुप्त, ६, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली

श्री रूपनारायण जी पांडेय ने अपने जीवन भर हिंदी की सेवा की। वे सौम्य और सुजन थे। हम पर उनका हिंदी के नाते जो ऋण है उसे कौन अस्वीकार कर सकता है ?

मैं उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

(२)

श्री सूर्यनारायण व्यास, भारती भवन, उज्जैन

स्व० पांडेय जी से मेरा यद्यपि प्रत्यक्ष परिचय का प्रसंग नहीं आया, किंतु पत्र-परिचय बहुत दीर्घ काल से रहा है। वे माधुरी में थे, और मैं माधुरी में प्राय: लिखा करता था। कई बार वे विषय सूचित करते थे कि अमुक विषय पर आप लिखें, और बड़े प्रेम से वे प्रकाशित करते थे। १९३७-३८ की बात है, मैं यूरोप से लौटा था, उन्हीं के आग्रह से मैंने यात्रा के संस्मरण लिखे थे। उन्हीं दिनों यूरोप में महाकवि कालिदास के संबंध में विद्वानों से चर्चा की थी, उस पर मैंने एक नोट लिखा, जो उन्हें बहुत पसंद आया, माधुरी में वह 'टिप्पणी' के रूप में मुद्रित हुआ था। माधुरी में मैं उनके ही स्नेहानुरोध वश होकर लिखा करता था, और वे बराबर पत्र-व्यवहार कर मुझे लिखने को प्रेरित करते रहते थे। मेरे प्रति उनका हार्दिक

स्नेह रहा है। उनकी व्यापक विद्वत्ता, प्रतिभा, अनुवादन-क्षमता और कविता के प्रति मेरा समादर रहा है। वे हिंदी और साहित्य के साधक थे। पांडेय जी की प्रज्ञा की तुलना में, और कर्मण्यता की क्षमता में मुझे आज कोई अन्य प्रतिभा दिखलायी नहीं देती। मैं उनकी स्मृति में नम्रता से नमस्कार निवेदन करता हूँ।

(३)

श्री गोविंददास सेठ, ३३, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली

स्वर्गीय पांडेय जी ने हिंदी की जो सेवा की है, उसके लिए हम सब उनके सदा कृतज्ञ रहेंगे। मैंने भी पांडेय जी के श्री द्विजेन्द्रलालराय के नाटकों के हिंदी अनुवादों को पढ़ा है और नाटक साहित्य में मेरे लिए पं० पांडेय के अनुवाद काफी प्रेरणा और प्रोत्साहन का कारण सिद्ध हुए हैं।

मैं स्वर्गीय पांडेय जी की हिंदी-सेवा और विशेष कर नाट्य-साहित्य के क्षेत्र में जो देन है, उसका अत्यन्त ऋणी हूँ और इस अवसर पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

(४)

श्री गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', सरस्वती भवन, झालरापाटन (राजस्थान)

पं० रूपनारायण जी पांडेय ने संसार-प्रसिद्ध बंगाल के द्विजेंद्रलालराय के नाटकों का बड़ी अच्छी हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी की वृद्धि की है।

वे अच्छे कवि थे और उत्तम सम्पादक। 'माधुरी' को उन्होंने 'सरस्वती' तथा 'विशाल भारत' जैसे पत्रों के समकक्ष ही सम्पादित किया था। मेरे वे स्नेही थे और मेरी रचनाओं पर अपनी प्रसन्नता प्रकट किया करते थे। परमात्मा उनकी आत्मा को शांति दे और कुटुम्बियों तथा मित्र वर्ग को धैर्य।

(५)

डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डी. लिट्., अध्यक्ष हिंदी विभाग, विश्वविद्यालय, काशी

स्वर्गीय पांडेय जी ने आजीवन हिन्दी की सेवा की है। जिन दिनों इस प्रकार की सेवा से किसी प्रकार के प्रतिदान की आशा नहीं थी उन दिनों उन्होंने प्रसन्न भाव से निःस्पृह होकर सेवा की है। उनका जीवन संघर्षों में ही बीता है। वे आज के हिन्दी सेवकों के लिए अनुकरणीय हैं। मुझे कभी-कभी बड़ा कष्ट होता है कि आज हम लोगों में निर्माता-साहित्यकारों को भूलते जाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। आपने पांडेय जी के श्राद्ध का सुन्दर आयोजन किया है। इस अवसर पर मैं भी अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पण करता हूँ। परमात्मा करे कि उनका स्वप्न साकार हो और हिंदी साहित्य निरंतर समृद्ध होता हुआ संसार के साहित्य में अपना उचित स्थान अधिकार करे।

(६)

श्री वृन्दावनलाल वर्मा, बी. ए., एल-एल. बी., ठि० मयूर प्रकाशन, झाँसी

स्वर्गीय पंडित रूपनारायण पांडेय जी की स्मृति में प्रकाशित होनेवाले 'पांडेय-स्मृति-ग्रंथ' का मैं सादर स्वागत करता हूँ। पांडेय जी ने हिंदी

(६)

साहित्य की चिरस्मरणीय सेवा की है। अंक-प्रकाशन के इस सत्प्रयत्न के लिए आपको मेरी हार्दिक बधाई।

(७)

डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, डी० लिट्०, सिविल लाइंस, राजनांदगांव

स्वर्गीय पं० रूपनारायण जी पांडेय उन सहृदय सज्जनों में से थे जिनसे मिलकर चित्त को प्रसन्नता ही मिलती है। आडम्बर से दूर रहकर उन्होंने भारती की जैसी महत्वपूर्ण सेवा की है वह किसी से छिपा नहीं है। वे एक सच्चे अक्षर-साधक थे और उनकी साधना-माधुरी न केवल 'माधुरी' द्वारा ही किंतु उनकी अन्य अनेकानेक कृतियों द्वारा भी हिन्दी सेवी संसार को प्राप्त होती रही है। वे कृतियाँ उन्हें निश्चय ही चिरस्मरणीय रखेंगी। आपने 'पांडेय स्मृति ग्रंथ' प्रकाशित करने का जो निश्चय किया है वह वस्तुत: बहुत उपयुक्त है मैं इस सदनुष्ठान के सम्बन्ध में अपनी शतशत शुभ कामनाएँ अर्पित करता हूँ।

(८)

आचार्य गुलाबराय, एम० ए०, ठि० डा० एस० एस० गुप्त, भूपाल

यह जानकर बड़ा संतोष हुआ कि पंडित रूपनारायण पांडेय की पुण्य स्मृति में आप 'स्मृति - ग्रंथ' निकाल रहे हैं। पांडेय जी ने डी. एल. राय के नाटकों का हिंदी अनुवाद कर हिन्दी नाटकों का गद्य की ओर

झुकाव बढ़ाया और उनको एक नई दिशा दी। उन्होंने श्री मद्भागवत का हिंदी अनुवाद कर भक्त जनों का ही नहीं, साहित्य सेवियों का भी बड़ा उपकार किया। मेरे पूज्य पिता जी (बाबू भवानी प्रसाद जी) उस पुस्तक का बड़ी श्रद्धापूर्वक पाठ किया करते थे। अनुवाद कार्य सरल नहीं है। वह बड़ा कठिन है और बड़े महत्त्व का भी है। उससे हमारे ज्ञान का क्षितिज विस्तृत होता है। पांडेय जी ने जो हमारे ज्ञान क्षेत्र को विस्तृत किया है उसके लिए वे चिरस्मरणीय रहेंगे।

(६)

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, विश्वविद्यालय, काशी

श्री रूपनारायण जी पांडेय की दीर्घकालीन साहित्य-सेवा की प्रशस्ति में जो 'स्मृति-ग्रंथ' प्रकाशित हो रहा है, मैं उसका हार्दिक स्वागत करता हूँ। पांडेय जी ने अपने लिए जो सारस्वत सत्र कल्पित किया था, उसकी वेदि में यावज्जीवन वह ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करते रहे, ऐसी स्थिर और एकरस साधना सबके लिए स्पृहणीय हो सकती है। अपने संस्कृत भाषा और साहित्य के अगाध पाण्डित्य को वे नए-नए रूपों में हिन्दी पाठकों के लिए अर्पित करते रहे। उन्होंने अपने लिए जो पथ परिष्कृत किया, उस पर निश्चल वृत्ति से चलकर वे साहित्य की उत्तम निधि छोड़ गए हैं। मनुष्य क्या है? वह विराट दैवशक्ति का एक परिचित प्रतीक है। यही हम सबके व्यक्ति की मर्यादा है। किंतु संकल्प की स्थिरता और कार्य की दृढ़ता से मानव अपने सीमाभाव से ऊपर उठ सकता है और उस असीम दैवशक्ति के अक्षय्य भंडार में से अपने लिए विशिष्ट भागधेय प्राप्तकर सकता है। जितनी जिसकी साधना, उतनी उसकी उपलब्धि। पांडेय जी का जीवन इसका सटीक उदाहरण है। जीवन के मंच पर आकर चले जाना सबके लिए सदृश नियम है, किंतु वही उत्तम सूत्रधार है जो सूत्र का स्वयं विधाता बन सके और जो अपनी नाट्य विधि का सुन्दर संदर्शन करा सके। इस दृष्टि से हम श्री पं० रूपनारायण जी के कार्य का अभिनंदन करते हैं।

(१०)

श्री परशुराम चतुर्वेदी, वकील, जोही, मरसर, बलिया

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय रूपनारायण जी पांडेय की स्मृति में 'पांडेय-स्मृति ग्रंथ' प्रकाशित होने जा रहा है। पांडेय जी हमारी राष्ट्रभाषा के एक श्रेष्ठ पत्रकार थे, सिद्धहस्त अनुवादक थे, अच्छे कवि थे तथा एक बहुत बड़े विद्वान थे। जब तक जीवित रहे उन्होंने हिन्दी-साहित्य के भंडार को अपनी सुन्दर कृतियों द्वारा सदा भरते रहने का ही अथक परिश्रम किया। उनके द्वारा अनुवादित ग्रंथों में हमें सर्वत्र मौलिकता अक्षुण्ण बनी दीखती है और उनकी सरलता भी सुरक्षित रह गई है। उन्होंने प्रायः सभी उपयोगी विषयों की ओर एक समान ध्यान दिया था और विशेषतः बाल-साहित्य की भी वृद्धि के लिए जो प्रयत्न किये थे वे चिरस्मरणीय रहेंगे। उनकी रचनाएँ हमारे लिए बहुमूल्य निधि हैं। 'स्मृति-ग्रंथ' के प्रकाशन द्वारा जो आपने स्व० पांडेय जी की देन के प्रति एक बार हम लोगों का ध्यान आकृष्ट करने तथा अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने का हमें सुअवसर देने की कृपा की है उसके लिए आपको साधुवाद।

(११)

पं० हरि शंकर शर्मा, शंकर सदन, आगरा

स्व० पण्डित रूप नारायण पाण्डेय मेरे आदरणीय मित्र थे। वे सफल साहित्यकार और प्रतिष्ठित एवम् प्रवीण पत्रकार थे। वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता और गम्भीर एवम् विद्वान लेखक थे। उन्होंने 'माधुरी' का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया। मेरे हृदय में पाण्डेय जी के प्रति बड़ी श्रद्धा रही। दो बार उनसे लखनऊ में मुलाकात भी हुई थी। पहली बार आचार्य प्रवर स्व० श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा के साथ और दूसरी बार स्वर्गीय बन्धुवर केदारनाथ भट्ट एम. ए. के साथ। पाण्डेय जी के साथ वह स्नेह-सम्मिलन कभी भुलाने की बात नहीं, सदा संस्मरणीय रहेगा। पाण्डेय जी के साथ पत्र-व्यवहार तो बहुत बार हुआ। उनके कृपा पत्र मेरे

(२३)

स्वर्गीय पिताजी पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा के पास काफी तादाद में आते थे—कविताओं के लिये। पीछे मेरे ऊपर भी उनकी बड़ी कृपा रही। ऐसे सफल साहित्य-सेवी की पुण्य-स्मृति में 'स्मृति - ग्रंथ' प्रकाशित कर अपना कर्त्तव्य पालन किया जा रहा है। आज कल के राजनीतिक वातावरण में साहित्य-सेवियों का स्मरण करना वस्तुतः असाधारण बात है। मैं इस पावन कर्त्तव्य-पालन के लिए उसके सम्पादक और प्रकाशक महोदयों को धन्यवाद देता हूँ, साथ ही मैं आपने आदरणीय बन्धु स्वर्गीय पाण्डेयजी की विमुक्त आत्मा के प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

(१२)

डा० दीनदयालु गुप्त, डी० लिट्०, अध्यक्ष हिंदी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ

पंडित रूपनारायण पांडेय अच्छे कवि, सफल अनुवादक और कुशल सम्पादक थे। इन क्षेत्रों में आरंभ से ही उनकी ख्याति रही है। हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत और बँगला पर भी उनका अच्छा अधिकार था। हिन्दी तो वे इतनी सुन्दर लिखते थे कि उनकी अनूदित कृतियाँ मौलिक-सी रोचक हैं। पांडेय जी की हिंदी-सेवा सामयिक महत्व की होने पर भी साहित्य के विद्यार्थी को सदैव अध्ययन की प्रेरणा प्रदान करती रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

(१३)

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, ४६, कास्थवेट रोड, प्रयाग

स्वर्गीय रूपनारायण पांडेय के अनुवादों ने उस युग के हिन्दी सेवियों के मार्गदर्शक का कार्य किया था। पांडेय जी की लेखनी जिस शक्ति और साहस से प्रायः आधी शती चलती रही वह अब दुर्लभ है। पांडेय जी शरीर से चले गये पर उनके यश का शरीर अभी चल रहा है। काल के अनन्त पारावार में उनकी कीर्ति की ध्वजा युगों तक फहराती रहेगी। भगवान आपके इस संकल्प में सहायक हों। मेरी शुभ कामनायें आपके साथ हैं। आपका 'पांडेय स्मृति ग्रंथ' हिंदी-सेवियों का सम्बल बने।

(१४)

श्री भगवतीशरण सिंह, सूचना संचालक, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ

पं० रूपनारायण जी पांडेय पिछली पीढ़ी के अग्रणी साहित्य साधक थे। हिन्दी साहित्य तथा भाषा दोनों की अमूल्य सेवायें उन्होंने की हैं। अपने अनुवादों के द्वारा हिन्दी के पाठकों का अनुभव तथा संवेदन का क्षेत्र विकसित किया है। श्री द्विजेन्द्र लाल राय, शरत बाबू आदि बंगला के लेखकों को बहुत से लोग हिन्दी का ही लेखक समझते हैं, यह श्री पाण्डेय जी के अनुवादों के कारण ही। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि इन लेखकों को श्री पाण्डेय जी के हाथों से एक नया जन्म मिला; सच्चे अर्थों में वे एक नया और विस्तृत क्षेत्र पा गये।

ये कार्य ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। पांडेय जी के कृतित्व का मूल्यांकन इसी दृष्टिकोण से होना चाहिए।

मैं इस पुनीत अवसर पर उस महान लेखक के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

(१५)

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा, बिहारी निवास, कानपुर

आप स्वर्गीय श्री रूपनारायण जी पांडेय की पुण्य स्मृति में 'स्मृति ग्रंथ' प्रकाशित करने जा रहे हैं, इसके लिए हमारा धन्यवाद स्वीकार करें। यह नितान्त आवश्यक तथा उचित श्रद्धांजलि होगी। श्री पांडेय जी उस युग में हिंदी सेवा के लिए सन्नद्ध हुए थे जब न तो ऐसी सेवाओं का कोई आर्थिक मूल्य था और न लौकिक दृष्टि से कोई भविष्य। हिन्दी की वास्तव में रचना हो रही थी और उसको गढ़ने में बड़े बड़े धुरन्धर लोग लगे हुए थे। ऐसे रचना काल में जिन महापुरुषों ने योगदान दिया था, उनमें पांडेय जी प्रमुख सेवक थे।

मेरी तथा उनकी उम्र में इतना अन्तर था कि मैं उन्हें अपना मित्र नहीं, अग्रज कह सकता हूँ। मुझे हिन्दी साहित्य के सामने रखने में उनका

तथा उनकी 'माधुरी' का भी बड़ा भारी हाथ था। अतएव मैं उनका ऋणी हूँ और रहूँगा, मेरे ऐसे अनेक हिंदी सेवकों को भी उनके द्वारा बड़ा बल प्राप्त हुआ होगा। अतएव इस अवसर पर मैं उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। आप ऐसे सुविज्ञ सम्पादक की देखरेख में यह ग्रंथ अवश्य संग्रहणीय होगा।

(१६)

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाणी वितान (भवन), ब्रह्मनाल, बनारस—१

हिंदी भाषा जिस समय अपना प्रौढ़ रूप सँवार रही थी उस समय उसकी साज-सज्जा में जिन महानुभावों ने सारी शक्ति लगाकर योगदान किया, उनमें पांडेय जी भी एक थे। स्वयं उन्होंने कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों में कार्य किया, साथ ही अनेक भविष्णु प्रतिभाओं को उन्होंने प्रेरित-प्रोत्साहित भी किया। वे कर्ता, आलोचक और प्रेरक, तीनों रूपों में हिंदी भाषा और साहित्य की संवृद्धि करते रहे हैं।

(१७)

श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह, साठिया कुआँ, जबलपुर

स्वर्गीय पं० रूपनारायण पांडेय जी का 'स्मृति ग्रंथ' प्रकाशित करने की योजना का मैं अभिनन्दन करता हूँ। 'माधुरी' के संपादन काल में मेरा उनका काफी संपर्क रहा। उनकी लेखन शैली में एक अपनी विशेषता थी। संपादन में भी वे बड़े विचार और विवेक से काम लेते थे। मौलिक रचनाओं के साथ जब उन्होंने मातृभाषा हिंदी के भाण्डार को दूसरी भाषाओं के ग्रन्थरत्नों के अनुवाद से भरने का सफल प्रयास किया। उनके अनुवाद भी बड़े टकसाली हैं। उनमें लेखकों के मौलिक विचार ज्यों के त्यों उतारने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही उनकी शैली के कारण उनमें मौलिकता का आनंद आता है। मेरा अनुरोध है कि हिन्दी के लेखक उनकी लगन तथा श्रमशीलता का अनुकरण करें।

(१८)

श्री जयचंद विद्यालंकार, सिविल लाइंस, होशियारपुर

स्व० श्रीरूपनारायण पांडेय की हिन्दी-सेवा की याद में मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि। हिन्दी को बंगाल के साहित्य का रस पिलाकर उन्होंने पुष्ट किया और भारत के दो भाषा-क्षेत्रों का परस्पर आकर्षण यों बढ़ाकर देश की एकता को भी पुष्ट किया। आज कई दशाब्दियाँ बीत जाने पर हमें पांडेय जी की सेवा का स्वरूप स्पष्ट दिखायी देता है।

(१९)

श्री श्रीनाथसिंह, ६२ ममफोर्डगंज, इलाहाबाद

आज जब मैं यह पत्र लिख रहा हूँ स्व० रूपनारायण पांडेय की मधुर स्मृतियाँ मेरे मानस पटल पर खचित हो हो उठती हैं। मुझे वह दिन याद है जब सन् २८ या २९ में मुजफ्फरपुर (बिहार) में वे प्रथम हिंदी पत्रकार सम्मेलन के सभापति थे। उन्होंने कहा था 'हिन्दी पत्रकारिता का भविष्य उज्ज्वल है। आज के पत्रकार को भले ही कठिन संकट झेलने पड़ें, आगे की पीढ़ी के लिए उसे एक आदर्श छोड़ जाना चाहिए। पत्रकार को भय, लालच, व्यक्ति और व्यक्तिगत राग-द्वेष से ऊपर उठकर लेखनी चलानी चाहिए।' 'माधुरी' के द्वारा उन्होंने हिन्दी साहित्य जगत में जो माधुरी बिखेरी और युग परिवर्तन उपस्थित किया, उसका वर्णन आपके इस ग्रंथ में आएगा ही। इस अवसर पर मैं पांडेय जी के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

(२०)

डा० नगेन्द्र, एम ए, डी. लिट्., अध्यक्ष हिंदी विभाग, विश्वविद्यालय दिल्ली

"पांडेय-स्मृति-ग्रंथ" के संबंध में आपकी योजना निश्चय ही अत्यन्त स्तुत्य है। पं० रूपनारायण पांडेय ने अनेक प्रकार से हिन्दी भाषा और साहित्य की अमूल्य सेवा की है। उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना हम सबका कर्तव्य है। मैं इस उपयोगी आयोजन के लिए आपका साधुवाद करता हूँ।

(२१)

डा० सत्येन्द्र एम. ए , पी-एच. डी., डी.-लिट्., हिंदीविद्या.पीठ, विश्वविद्यालय, आगरा

'पांडेय - स्मृति - ग्रंथ' निकालने का जो निश्चय किया गया है, वह अभिनंदनीय है । माधुरी के यशस्वी संपादक स्व० पं० रूपनारायण पांडेय की स्मृति-रक्षा का यह प्रयत्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है । पं० रूपनारायण जी पांडेय ने हिन्दी की सेवा के लिए ही अपना जीवन अर्पित कर दिया था। वे एक सफल कवि, संपादक तथा सफल अनुवादक थे। उनके अनुवादों में इतनी स्वाभाविकता रहती थी कि उन्हें अनुवाद नहीं कहा जा सकता था, फिर भी मूल के भावों की पूरी पूरी रक्षा वे करते थे। पांडेय जी द्विवेदी युग के प्रबल निर्माता और दृढ़ स्तम्भ थे। ऐसी विभूति के लिए आपका यह आयेजन कम से कम आँसू तो पोंछ ही सकेगा। कोई यह तो नहीं कह सकेगा कि हिंदी वाले अपनी विभूतियों का आदर करना ही नहीं जानते । एक महान भावना से प्रेरित होकर यह प्रयत्न किया है। पर यह भी सत्य है कि उस स्वर्गीय विभूति की स्मृति के लिए इससे कुछ और महान् प्रयत्न होने की आवश्यकता है।

(२२)

आचार्य सद्गुरु शरण अवस्थी, ८/९ आर्यनगर, लखनऊ

स्व० पंडित रूपनारायण पांडेय का 'स्मृति ग्रंथ आप प्रकाशित करने जा रहे हैं, यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा उनका बहुत पुराना साथ था। वे मेरे ऊपर बड़ी कृपा करते थे। उन्होंने मेरे अनेक लेख 'माधुरी' में प्रकाशित किये और वे बाद में पुस्तकाकार छपे। 'कैकेयी' नामक मेरे एकांकी की उन्होंने इतनी प्रशंसा की कि मुझे एकांकी लिखने का बल प्राप्त हुआ। वे मेरे पथ-प्रदर्शक मित्र और शुभ चिन्तक थे। वे सरल, निरभिमानी गहरे चिंतक और कुशल लेखक थे। ईश्वर उन्हें शांति दे। आपने बड़ा ही स्तुत्य कार्य किया है।

(२३)

डा० कन्हैयालाल सहल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, बिड़ला कालेज, पिलानी

स्व० पंडित रूपनारायण जी पांडेय की स्मृति में आप 'पांडेय स्मृति-ग्रंथ' निकाल रहे हैं, यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। स्व० श्री पांडेय जी की साहित्य-सेवाओं को 'स्मृति-ग्रंथ' द्वारा प्रकाश में लाकर आप निश्चय ही एक महत्कार्य का अनुष्ठान करेंगे।

(२४)

डा० विजयेंद्र स्नातक, एम०ए०, पी-एच डी०, हिंदी विभाग, विश्वविद्यालय, दिल्ली

श्रीपंडित रूपनारायण पांडेय जी की रचनाओं से मेरा प्रथम परिचय माधुरी की सम्पादकीय टिप्पणियों के माध्यम से हुआ था, उसके बाद मुझे उनके बंगला अनुवाद पढ़ने का सुअवसर मिला। श्री डी० एल० राय के बंगला नाटकों का धारा प्रवाह एवं प्रांजल अनुवाद पढ़कर मैं पांडेय जी के प्रति आकृष्ट हुआ। द्विवेदी युगीन कवियों में भी पांडेय जी का स्थान था किन्तु उनका कृतित्व कवि रूप में उतना प्रकट नहीं हुआ जितना सम्पादक और अनुवादक के रूप में। पांडेय जी निस्संदेह द्विवेदी युग से छायावाद युग तक की समस्त साहित्यिक चेतना के प्रतीक कहे जा सकते हैं। उनकी पुण्य स्मृति में 'स्मृति-ग्रंथ' के प्रकाशन का आयोजन करके एक अनुष्ठान किया जा है।

(२५)

डा० प्रेमनारायण शुक्ल, एम. ए., पी-एच. डी., ९।६८ आर्यनगर, कानपुर

'पांडेय-स्मृति-ग्रंथ' के प्रकाशन का आयोजन करके आप बड़े ही पुनीत कार्य को सम्पादित कर रहे हैं। वस्तुत: स्व० रूपनारायण जी पांडेय भगवती भारती के उन वरद-पुत्रों में से थे जिन्होंने हिंदी-वाङ्मय की श्री संवर्धना में ही अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत किया। वे एक कुशल संपादक और कर्मठ साहित्यकार थे। उनके सम्पादन-काल में 'माधुरी' को हिन्दी मासिक पत्रिकाओं में अग्रिम स्थान प्राप्त हुआ था।

(२६)

श्री पांडेय जी का व्यक्तित्व महान था। वे परम स्नेही, सरल एवं उदारमना व्यक्ति थे। आज के इस स्वार्थपरायण, ईर्ष्यामय एवं आडम्बर पूर्ण जीवन के बीच उनकी निष्कपट आत्मीयता का मूल्य सहज ही आँका जा सकता है।

(२६)

डा० रामदत्त भारद्वाज, पी-एच. डी., १४।२९ शक्तिनगर, दिल्ली

स्व० पंडित रूपनारायण पांडेय असाधारण विद्वान्, गुणग्राही, साहित्य-मर्मज्ञ एवं बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे। मैंने अपने बाल्य-काल में जिस दिन उनका अनूदित भागवत देखा उसी दिन से मेरी असीम श्रद्धा उनके प्रति उत्पन्न हो गयी थी। उनके सम्पादन काल में मेरे अनेक लेख प्रकाशित हुए। मैं अपनी श्रद्धांजलि उन्हें अर्पित करने में परम गौरव का अनुभव करता हूँ।

(२७)

श्री कामताप्रसाद जैन, अलीगंज (एटा)

आप स्वर्गीय पांडेय जी का 'स्मृति ग्रंथ' प्रकट कर रहे हैं, यह जानकर हर्ष है। साहित्यरथियों की प्रेरक स्मृति को सजीव बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है। ऐसे प्रकाशनों से राष्ट्रीय चेतना भी जाग्रत रहती है। पं० रूपनारायण जी पांडेय मूर्तमान सत्यं-शिवं-सुन्दरं थे। उनकी सरसता, सहृदयता और साहित्य-सेवा कभी भुलाई नहीं जा सकती।

(२८)

श्री प्रभुदयाल मीतल, मीतल निवास, डेम्पीयर पार्क, मथुरा

पं० रूपनारायण जी पांडेय हिन्दी के उन स्तंभों में से थे, जिनकी सतत साधना ने हिंदी साहित्य को समृद्धि प्रदान की है। लेखक और संपादक के रूप में उनकी देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिंदी साहित्य के इतिहास में उनका नाम अमर रहेगा।

(२९)

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', शिवकुटी, नेपियर टाउन, जबलपुर

पूज्य पांडेय जी की सेवायें हिन्दी साहित्य के इतिहास में अविस्मरणीय रहेंगी। उन्होंने साहित्य में एक युग का निर्माण किया है—एक पीढ़ी तैयार की है। उनके द्वारा किये गये बँगला के अधिकारपूर्ण प्रांजल अनुवादों ने मेरे जैसे असंख्य कवियों और लेखकों को प्रेरणा प्रदान की है। 'माधुरी' के सम्पादक के रूप में उन्होंने हिन्दी की मासिक पत्रकार-कला में एक आदर्श उपस्थित किया है।

(३०)

श्री नरसिंहराम शुक्ल, सजनो प्रेस, इलाहाबाद

स्वर्गीय पांडेय जी मेरे गुरुजनों में थे। उनके समय में मैंने माधुरी में दर्जनों लेख लिखे जिन्हें उन्होंने अपनी पत्रिका में स्थान दिया और पुरस्कार भी दिलवाया जिससे मेरी आर्थिक दुःस्थिति में बड़ी सहायता मिलती थी। घर पर वे प्रेमपूर्वक मिलते थे, और ममत्वपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करते थे। वे उदार संपादक एवम् मेरे जैसे निरुपाय लेखकों के सही अर्थ में सहायक थे, उनका आलोचनात्मक दृष्टिकोण उदार था। वे लोगों पर आक्षेप नहीं करते थे। मैं इन थोड़े से शब्दों के साथ अपने उन गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ।

(३१)

डा० गोपीनाथ तिवारी, पी-एच. डी. हिंदी विभाग, विश्वविद्यालय, गोरखपुर

पांडेय जी ने जीवन भर हिंदी माँ की अथक सेवा की थी। वे माधुरी के उन्नयन में सदा लगे रहे। उनकी स्मृति-रक्षा के लिए 'स्मृति-ग्रंथ' के प्रकाशन का आयोजन निरसंदेह बहुत उपयोगी कार्य है।

(३१)

(३२)

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव, इंडियन प्रेस शाखा, जबलपुर

खड़ीबोली के कर्णधारों में मैं पूज्य रूपनारायण जी पांडेय को अति श्रेष्ठ मानता हूँ। सम्पादकत्व में पूज्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के बाद उनका ही स्थान है। यह धारणा साहित्यवाचस्पति पदुमलाल जी बख्शी (खैरागढ़राज, म० प्र०) की भी है। अनूदित साहित्य के लिए उनका जितना भी आभार माना जाय, कम है। गद्य-पद्य-रचना की उनकी मौलिक प्रतिभा भी ऐसी थी कि जिसे स्पर्श किया, स्वर्ण बना दिया। यद्यपि मेरी आयु ६१ वर्ष की है, परन्तु जब से साहित्यिक होश सँभाला, उनके कृतित्व का उपासक रहा। मैं यह भी सोचता हूँ कि इस युग में जो अपना ढोल नहीं पीटता-पिटवाता, उसको कोई नहीं पूछता। आपके समान सच्चे गुण-ग्राहक हैं, यह हिन्दी का सौभाग्य है।

(३३)

श्री दयानंद गुप्त, एडवोकेट, मुरादाबाद

श्री पांडेय रूपनारायण जी से मेरा प्रथम परिचय सन् १९३३ ई० में, जब मैं लखनऊ विश्वविद्यालय का छात्र था, हुआ था। उनके मधुर स्नेह एवं विद्वतापूर्ण सम्भाषण से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ था। फिर तो मेरा उनका सम्पर्क उत्तरोत्तर घनिष्ठतर होता गया। हिंदी-साहित्य-सेवा में मुझे उनसे प्रोत्साहन मिला जिसने मुझे माधुरी में कहानियाँ आदि लिखने के लिये बाध्य किया। फलस्वरूप मेरी पहिली कहानी 'पागल' 'माधुरी' में प्रकाशित हुई। फिर तो समय समय पर मैं 'माधुरी' के लिए लिखता रहा।

आज श्री पांडेय जी-से निःस्वार्थ साहित्य-सेवी हिंदी-जगत में बहुत कम हैं। उनके निधन से साहित्य-संसार में एक विशेष स्थान खाली हो गया है। श्री पांडेय जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते समय एक ऋण जैसी स्मृति आ जाती है।

(३४)

श्री चतुर्भुजदास चतुर्वेदी, वही गली, भरतपुर

श्री रूपनारायण जी पांडेय ने बड़ी सावधानी, चतुरता एवं विज्ञता से माधुरी का जो सम्पादन किया, वह प्रशंसनीय रहा। आज से करीब २५ वर्ष पूर्व मेरा उनसे मिलना हुआ था। पांडेय जी सरल स्वभाव तथा सादगी की मूर्ति थे और कई भाषाओं के जानकार होने पर भी अभिमान से दूर थे। मुझसे बड़े प्रेम से मिले। उन्होंने आग्रह करके मुझसे मेरा 'सुशील स्काउट' शीर्षक उपन्यास लिया था और पढ़कर बोले थे कि इस विषय पर यह पहली चीज है। 'माधुरी' के आवरण पृष्ठ के चित्र पर जो मेरा कवित्त छपा था उसकी प्रशंसा के उन्होंने पुल बाँध दिये थे और हँसकर कहा था—'चित्रकार से कवित्तकार के भाव कहीं अधिक हैं।'

(३५)

श्री श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'

श्रद्धास्पद स्व० पं० रूपनारायण पांडेय की अनुकम्पा मेरे कवि एवं व्यक्ति, दोनों पर रही। वह आचार्य 'सनेही' जी के अभिन्न मित्र थे। वह सफल अनुवादक, सुविख्यात सम्पादक एवं उन्मना कवि और हृदय के महान व्यक्ति थे। हिंदी साहित्य के अनेक सुनाम-धन्य साहित्यकारों को उन्होंने अपनी सहृदयता से प्रोत्साहित कर लिखना सिखलाया। वह यद्यपि नहीं रहे, पर उनकी सुकृतियाँ सदैव उनका संस्मरण करायेंगी।

(३६)

श्री प्रेमनारायण अग्रवाल, अजीत महल, इटावा

यह जानकर प्रसन्नता है कि आप स्वर्गीय पं० रूपनारायण पाण्डेय की स्मृति में एक 'ग्रंथ' निकाल रहे हैं। पाण्डेय जी हिंदी की सेवा में बहुत विख्यात हैं और उनके सहृदय स्वभाव ने अनेक नये साहित्यिक पुरुषों को आगे बढ़ाने में भारी सहयोग दिया है। आपका प्रयत्न स्तुत्य है, उनकी स्मृति रक्षा होनी ही चाहिये। हम आपके प्रयत्न में सफलता की कामना करते हैं।

———

संस्मरण और श्रद्धांजलि

पं० लोचन प्रसाद पाँडेय, बालपुर (बाया रायगढ़)

कविरत्न पं० रूपनारायण पांडेय से मेरा प्रथम परिचय तब हुआ जब वे लखनऊ के मासिक पत्र "नागरी प्रचारक" के संपादक थे। जौनपुर निवासी बाबू गोपाल लाल खत्री जो कि "नागरी प्रचारक" के प्रकाशक या संचालक थे हिन्दी के प्रति अगाध प्रेम रखते थे। पाँडेय जी की व्रजभाषा की कविताओं को पढ़कर हम लोग उन्हें प्रौढ़-वयस्क बोध करते रहे, जिज्ञासा करने पर खत्री जी से ज्ञात हुआ कि वे नवयुवक हैं। वह सन् १९०७ की बात है। धीरे-धीरे उनकी खड़ीबोली की सरस रचनाओं की धूम सी मच गई। उनकी "दलित कुसुम" कविता की ठौर-ठौर चर्चा होने लगी। "प्रभा" (खंडवा, म० प्र०) में प्रकाशित उनकी "वन-विहंगम" कविता पढ़कर सुप्रसिद्ध कवि पं० श्रीधर पाठक उनसे मिलने को उत्सुक हो उठे। अपने आशीर्वाद से उन्हें उपकृत किया।

क्या पद्य-रचना क्या गद्य-रचना प्रत्येक में वे अपनी प्रतिभा के चमत्कार प्रकट कर सहृदयों के चित्त हरने लगे।

कुछ वर्ष हिन्दी भाषा में उनके द्वारा अनुवादित बंगभाषा के नाटकों तथा उपन्यासों का प्रचार दिन-दिन बढ़ने लगा और वे "साहित्य निर्माता" की श्रेणी में ससम्मान समासीन कराये गए।

"माधुरी" के सफल तथा सहृदय सम्पादक के रूप में उनकी यथेष्ट ख्याति रही। हिन्दी भाषी उनके चिर कृतज्ञ रहेंगे।

उनकी "शुकोक्ति सुधासार" नामक श्रीमद्भागवत कथा हिन्दी की अमूल्य निधि है। उनके सम्पादन-काल में मिरजापुर निवासी भारतेंदु हरिश्चन्द्र-सखा सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन", सम्पादक "नागरी नीरद" तथा "आनन्द कादम्बिनी", पर मेरे द्वारा लिखित व्रजभाषा में "बदरीनारायणाष्टक" शीर्षक कविता "माधुरी" में निकली थी। उन्होंने मेरा "वनोपवन में राघव

की लंका" नामक लेख भी "माधुरी" में प्रकाशित करने की कृपा की थी। मेरा वह लेख 'पुरातत्वज्ञों का एक प्रशंसक' के नाम से निकला था। उसमें इंदौर के विद्वान लेखक सरदार कीवे महोदय के रावण की लंका के स्थिति-निर्धारण विषयक विचारों पर प्रकाश डाला गया था। उनकी धारणाओं के विरुद्ध में शास्त्रीय प्रमाण उपस्थित किये गए थे। मेरा एक अन्य लेख "मेघदूत में पुरातत्व" शीर्षक श्रीपांडेय जी ने १९३३ में माधुरी में प्रकाशित कर मेरे प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया था।

"'बाबू' शब्द का प्राचीनत्व" तथा "हिंदी में 'व्याघा' शब्द का प्रयोग" जैसी मेरी टिप्पणियों को भी उन्होंने 'माधुरी' में सहर्ष स्थान प्रदान करने की उदारता प्रकट की थी।

पाण्डेय जी संस्कृत भाषा के पंडित तथा उच्चकोटि के काव्य-मर्मज्ञ एवं हिन्दी के सुकवि थे। उन्होंने आजन्म हिन्दी की सेवा कर अपने जीवन में हम लोगों के लिए एक आदर्श रख छोड़ा है। भगवान उनकी आत्मा को चिर शांति प्रदान करें।

(२)

आचार्य श्रीशिवपूजनसहाय, अध्यक्ष राष्ट्रभाषा-समिति, सचिवालय, पटना

पंडित रूपनारायण पांडेय लखनऊ के रानीकटरा मुहल्ले के निवासी थे। अपनी आयु के पचहत्तरवें वर्ष में, १२ जून, १९५८ ई० को, अपने घर पर ही वे अचानक चल बसे। वर्तमान शताब्दी का चौथाई भाग उन्होंने पत्र-संपादन-कला की सतत साधना में ही बिताया था। नागरी-प्रचारक, निगमागम-चंद्रिका, इन्दु, कान्यकुब्ज, माधुरी आदि प्रसिद्ध मासिक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन उन्होंने जिस योग्यता और सफलता से किया, वह हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में चिर-स्मरणीय रहेगा। पांडेय जी जब काशी में कविवर श्रीजयशंकर प्रसादजी के घर पर रहकर भारत-धर्म-महामण्डल की मुखपत्रिका निगमागम-चन्द्रिका' और 'इन्दु' का सम्पादन करते थे, तब हम भी बनारस की दीवानी अदालत में हिंदी-लिपिक थे और साहित्यानुराग-वश प्रायः नागरी-प्रचारिणी सभा में जाया करते थे। वहीं पर सर्वप्रथम प्रसाद जी के साथ-साथ उनके भी दर्शन हुए थे। फिर उनसे परिचित

होने का भी सुयोग मिला और अन्त में उनके साथ साहित्यिक काम करने के सुदिन भी नसीब हुए। अपने सहकारी के प्रति उनकी सहानुभूति आदर्श थी।

उनका घरेलू जीवन बड़ा नियमित था। उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग स्वाध्याय और साहित्याराधन में ही किया। यही कारण है कि पत्र-सम्पादन-कार्य के अतिरिक्त वे अपनी मौलिक और अनूदित रचनाओं की राशि से हिंदी के साहित्य-भाण्डार की शोभा बढ़ा गये। उनकी बहुत-सी लिखित, अनूदित एवं सम्पादित पुस्तकें दूसरे सज्जनों के नाम से भी प्रकाशित हुई हैं। द्रव्योपार्जन के लिए विवश होकर उन्हें ऐसा करना पड़ता था; क्योंकि उनका व्यक्तिगत बजट बहुत लम्बा-चौड़ा था। अच्छे-से-अच्छे भोजन, वस्त्र, सुगन्ध आदि के वे बड़े शौकीन थे। मगही पान, जर्दा, किमाम और सुरती वे बनारस से भी मँगाते थे। गाजीपुर और कन्नौज से बढ़िया इत्रों का पार्सल डाक से आता था। संध्या समय भंग-भवानी का सेवन करने पर उत्तम मिठाइयों और रबड़ी-मलाई की आवश्यकता अनिवार्य थी। गोरा छरहरा बदन, सिर पर किश्तीनुमा टोपी या साफा, कभी झलमली धोती या चूड़ीदार पाजमा, पालिशदार जूता, कोट की जेब में घड़ी, हाथ में चिकनी छड़ी, दो-दो सुवासित रूमाल, मुँह में पान की गिलौरी, आँखों में सुरमा, खासे छैल-छबीले बनकर आइने के सामने मुस्कराते हुए खड़े होते थे और बाहर निकलने पर साथी-संगी के लिए अपने ही पैसों के साथ न्याय करते थे। जैसे शाहखर्च, वैसे ही मजाक-पसंद भी; बहुत ही अच्छी तबीयत पाई थी पांडेयजी ने।

संस्कृत और बँगला की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाओं के खरीदने में भी उनके काफी पैसे खर्च होते थे। कई ऐसी पत्रिकाओं के वे नियमित ग्राहक थे। उनके कितने ही लेखों और टिप्पणियों का सार-संकलन 'माधुरी' के विविध स्तम्भों में प्रकाशित करते थे। अँगरेजी के पत्रों से भी सारांश ग्रहण करने में उनका कौशल दर्शनीय था। अँगरेजी की पर्याप्त शिक्षा न पाने पर भी वे उसके लेखों का मर्म समझकर नोट तैयार कर लेते थे। श्रीमद्भागवत महापुराण का अक्षरशः हिंदी-अनुवाद (शुकोक्तिसुधा-सागर) उन्होंने बड़ी ललित शैली में किया था, जो विगत दूसरी दशाब्दी में ही बम्बई के निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित हुआ था। बंग-भाषा के विख्यात नाटककार श्रीद्विजेन्द्रलाल राय के सभी नाटकों का हिंदी-अनुवाद उन्होंने ही किया था। कई बंगीय उपन्यास भी उनके द्वारा अनूदित होकर प्रकाशित

हो चुके हैं। अनुवादों के अतिरिक्त उनकी बहुत-सी मौलिक पुस्तकें भी छपी हैं। उनके अध्ययन-कक्ष में पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं यथास्थान सजी-सजाई रखी रहती थीं। मेज-कुर्सी पर लिखने-पढ़ने में उन्हें आराम नहीं मिलता था। छोटे गद्दे पर मसनद के सहारे या छाती के नीचे तकिया लगाकर पढ़ते-लिखते थे। बैठने पर डेस्क का उपयोग करते थे। इसी कारण, माधुरी-कार्यालय में कभी-कभी एकाध घंटे के लिए आते थे, अधिकतर अपने घर पर ही एकांत में लेखों और प्रूफों का संपादन-संशोधन किया करते थे। संपादन-कार्य में उनका घोर परिश्रम आचार्य द्विवेदी जी का स्मरण कराता था। वास्तव में सम्पादकीय परिश्रम की दृष्टि से उनका स्थान पूज्य द्विवेदी जी के बाद ही था। हमने द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ के प्रकाशन-काल में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा में संचित द्विवेदीजी द्वारा संपादित लेखों को देखा था। यदि पांडेयजी द्वारा सम्पादित लेख भी आज कहीं संचित होते, तो अनुसन्धायकों को तुलनात्मक अध्ययन का अवसर मिलता। श्रमशील संपादक की कार्यकुशलता का प्रमाण संगृहीत रहने से शोधकर्त्ताओं को एक नई दिशा मिल सकती है।

पांडेयजी बड़े सुन्दर-सुडौल अक्षर लिखते थे। शीघ्रता में लिखने पर भी वे मोती ही पिरोते थे। लेख-संपादन और प्रूफ-संशोधन भी ऐसी सफाई से करते थे कि प्रेस को कभी कोई कठिनाई नहीं होती थी। कितने ही लेखों को आपाद-मस्तक रँग डालते थे, फिर भी लेखक की मौलिकता की नस पर नस्तर नहीं लगने पाता था। उनकी इस कला की प्रशंसा श्रीगणेशशंकर विद्यार्थीजी ने अपने 'प्रताप' में की थी। विद्यार्थी जी का प्रशंसा-पत्र पाना सहज न था, वे आचार्य द्विवेदीजी के सहकारी रह चुके थे और बड़ी संयत लेखनी के धनी भी थे।

पांडेयजी हिंदी के प्रसिद्ध कवि भी थे। उनकी 'कविरत्न' उपाधि सार्थक थी। उनकी 'वन-विहंगम' कविता हिंदी-जगत् में बहुत लोकप्रिय हुई। उनका एकमात्र पुत्र जब बाल्यकाल में ही काल-कवलित हो गया, तब उन्होंने द्विवेदीयुग की 'सरस्वती' में 'दलित कुसुम' शीर्षक कारुणिक कविता लिखी थी। उन्हीं दिनों उनकी 'हृदयेश्वरी' कविता की भी खासी चर्चा रही। पर, वे विनम्रता-वश अपने को कवि नहीं मानते थे। इसीलिए मित्रों के अनुरोध पर भी अपना कोई कविता-

संग्रह बहुत समय तक उन्होंने नहीं निकलने दिया। 'पराग' नामक उनका एक संग्रह बहुत दिन बाद लखनऊ से अवश्य प्रकाशित हुआ था।

बातचीत करते समय वे प्राय: आँखें मूँद-मूँदकर मुस्कराते-मुस्कराते बतियाते थे। अपने आरम्भिक जीवन की चर्चा करते समय कहा करते थे कि शैशव में ही पितृवियोग होने पर वृद्धपितामह के अविरल वात्सल्य-स्नेह ने ही जीवन-पथ प्रशस्त किया। पितामह संस्कृत के अच्छे पंडित थे; प्राचीन शास्त्रीय पद्धति से संस्कृत की शिक्षा दी थी; किंतु संसार-प्रवेश होने के पूर्व ही उनकी छत्रच्छाया भी हट गयी। इस प्रकार, पाण्डेयजी को स्वयं जीवन-निर्माण करना पड़ा। सांसारिक अनुभव उनके बड़े कटु थे। स्वावलम्बन के बल पर ही उन्होंने अपनी दुनिया सँवारी थी। यदि उनसे आत्मसंस्मरण लिखवाये गये होते, तो व्यावहारिक एवं साहित्यिक जीवन के लिए उनका मूल्य दिन-दिन बढ़ता जाता। जीवन के अन्तिम समय में अग्निपुराण के हिंदी-अनुवाद का साहित्यिक संस्करण तैयार करने के वे बड़े इच्छुक और उत्सुक थे, पर उनकी वह कामना उनके साथ ही सती हो गई! उनकी साहित्यपूत आत्मा को परमात्मा आत्मसात् करें।

(३)

आचार्य श्री कालिदास कपूर, हरदोई मार्ग, लखनऊ

द्विवेदी युग के साहित्यकार धीरे-धीरे अपने स्वर्गीय आचार्य से मिलने जा रहे हैं। आज उस यात्री का स्मरण करना है जिसका पड़ोसी होने का मुझे प्राय: पचास वर्ष तक सौभाग्य प्राप्त रहा, जो आचार्य द्विवेदी जी के स्वर्गीय होने पर हिंदी में मेरा पथ-प्रदर्शन करने लगा।

रूपनारायण जी पांडेय को मैं बाल्यकाल से जानता था। लखनऊ के सिरकटे नाले के एक ओर कटाई टोले में मेरा जन्म हुआ, तो पांडेय जी नाले के दूसरी ओर खेतगली के निवासी रहे। परन्तु उनसे मेरा निकट संपर्क सन् १९२१ से प्रारंभ हुआ जब खेतगली के निकट काली चरण विद्यालय का मैं प्रधानाध्यापक नियुक्त हुआ। हिंदी संसार के मानचित्र में कालीचरण विद्यालय अंकित हो चुका था क्योंकि द्विवेदी जी के सहयोगी और प्रतिद्वंद्वी बाबू श्यामसुन्दर दास इस

विद्यालय के प्रधानाध्यापक रह चुके थे, विद्यालय के ही प्रांगण में हिंदी साहित्य सम्मेलन का पंचम अधिवेशन हो चुका था, और श्यामसुन्दरदास जी के काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी के आचार्य होने पर उनका लखनवी आसन मुझे मिला था। आसन के दायित्व का निर्वाह मैं कर सका या नहीं, यह मेरे निर्णय की बात नहीं, परंतु प्रयत्न मैंने अवश्य किया। कुछ समय तक तो मुझे द्विवेदी जी का आशीर्वाद प्राप्त रहा; परन्तु शीघ्र ही उन्होंने 'सरस्वती' से अवकाश लिया; जिस कारण मैं उनसे दूर होने लगा और पांडेय जी मेरे निकट होने लगे।

स्थानीय नवलकिशोर प्रेस से 'माधुरी' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ और पांडेय जी के साथ प्रेमचंद जी पत्रिका के संपादन कार्य में लगे, तो पांडेय जी के प्रति मेरा आकर्षण और भी बढ़ा। मैं अब 'माधुरी' के लिए भी लिखने लगा।

मैंने पांडेय जी को संपादक की हैसियत से ही नहीं जाना, मुझे उनकी मौलिक कविताओं और अनुवादों के पढ़ने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। पांडेय जी संस्कृत के जितने अच्छे विद्वान थे, उतने ही बँगला के भी ज्ञाता थे। संस्कृत से अनूदित उनकी रचनाओं के पढ़ने का सौभाग्य तो मुझे प्राप्त हुआ नहीं, परंतु बँगला से अनूदित उनकी कुछ रचनाएँ मेरे पढ़ने में अवश्य आईं; अनुवादक का स्तर लेखक के समकक्ष पहुँच जाता है जब अनूदित ग्रंथ में मौलिक रचना से अधिक रस पाठक को मिलने लगे। हिंदी में अभिनय योग्य नाटक-साहित्य का अभाव है और तब तक रहेगा जब तक उसे अपना रंग-मंच नहीं मिलता। बँगला में यह अभाव नहीं और बँगला नाट्य-साहित्य में द्विजेंद्रलालराय को सर्वोच्च पद प्राप्त है तो हिंदी के सौभाग्य से पांडेय जी जैसे अनुवादक हिन्दी भाषी संसार को मिल गये जो अनूदित ग्रंथों में मौलिक रचनाओं का रस प्रचुर मात्रा में भर सके। द्विजेंद्रजी का एक नाटक अतुकांत पद्य में है। उस समय हिंदी में अतुकांत पद्य यथेष्ट चालू न था। पांडेय जी की 'तारा' मौलिक पद्य से ओज में किसी प्रकार कम नहीं है। छोटा-सा अंश उद्धृत किये बिना चैन नहीं मिलती—

सेनापति—रानी! जननी पुकारती जब स्वयं
ऊँचे स्वर से खड़ी-कौन तब मोह में

छिपा रहेगा ? किसको इतना मोह है
प्राणों का ? बस चलो, विकट हुंकार से
टूट पड़ें हम शत्रु-सैन्य पर । युद्ध में
जोलेंगे या प्राण वहीं देंगे—चलो ।

तारा०—तो फिर आओ, चलो; बुलाओ जोश से
सब सेना को । कहो, उच्च स्वर से कहो—
'डरो नहीं ।' तुम डरो नहीं—मैं साथ हूं ।

(जमीन पर घुटने टेककर)

माता ! चंडी ! शक्ति ! भक्त रक्षा करो ।
प्राणेश्वर के पास न अबतक आ सकूं ।
महाशक्ति ! दो शक्ति । सती निज नाथ का
करने को उद्धार आ रही युद्ध में ।

(प्रस्थान)

कालांतर में मुझे कुछ पाठ्य पुस्तकें लिखनी पड़ीं, तो मुझे पांडेय जी के सहारे की आवश्यकता और भी प्रतीत हुई, प्रांजल हिंदी लिखने में मुझे उनका सानी नहीं दिखा । उनके संशोधन से मैं बिलकुल निश्चिंत हो जाता ।

पांडेय जी जीवन के अन्त तक सक्रिय और प्रफुल्ल रहे । सेवा करते रहे, कराई नहीं । उनका जीवन धन्य रहा, तो उसका अन्त भी वैसा ही रहा जिसका आकांक्षी मैं भी हूं ।

(४)

डा० नवलबिहारी मिश्र, सीतापुर

आधी रात नींद खुल जाने पर, रेल के लंबे सफर में, तथा अन्य इसी प्रकार के अवसरों पर, कभी-कभी अनायास पुरानी स्मृतियां जागृत हो उठती हैं । मस्तिष्क के किसी अज्ञात कोने में न जाने कौन-कौन रहस्यमयी फाइलें सँजोई रक्खी हैं । न जानें किन परिस्थितियों में इनमें से एक के पन्ने खुल जाते हैं । बीसियों वर्ष पुरानी स्मृतियाँ जग उठती हैं । सिनेमा का सा चित्रपट सामने आ जाता है ।

यह सब कैसे होता है, इस रहस्य का भेद अब तक नहीं हो पाया।

अपने बाल्यकाल की बहुत सी बातें स्पष्ट रूप से याद हैं। मेरे परिवार के वातावरण में तीन बातें मुख्य थीं। घर तथा जमीदारी का प्रबंध, मुकदमेंबाजी तथा साहित्य-चर्चा। दूर दूर से पेशेवर कवि आते। कभी-कभी कई एक साथ आ जाते। परस्पर छंद सुनाने में होड़ें होतीं। सारा गाँव एकत्र होकर तमाशा देखता।

मेरे यहाँ दो साप्ताहिक पत्र आते थे—बंगवासी तथा श्रीवेंकटेश्वर समाचार। बहुधा जोर-जोर से पढ़कर सुनाये जाते। उन दिनों रूस-जापान युद्ध हो रहा था। मेरे परिवार में दो दल थे—एक रूसी पक्ष था और दूसरा जापानी।

थोड़ा सा अक्षर ज्ञान होने पर मैं भी समाचार पत्र पढ़ने का प्रयत्न करता था। और कुछ समझ में न आता था, पर कई विज्ञापन अब भी आँखों के सामने हैं। डाक्टर बर्मन, आतंकनिग्रह, लाल मणिवैद्य झीझकवाले की अपूर्व ताकत की दवा, सुखसंचारक कंपनी मथुरा तथा 'दद्रुगज केसरी' उनमें प्रमुख हैं।

यह बिलकुल स्मरण नहीं कि किशोरावस्था में रूपनारायण पांडेय का नाम कब तथा किस संबंध में सुना। शायद उनके द्वारा अनूदित कोई पुस्तक पढ़ी हो। शायद उनकी व्रजभाषा की कोई प्रारंभिक कविता देखने में आयी हो।

किशोरावस्था बड़ी कल्पनाशील अवस्था होती है। पांडेय जी को देखने का अवसर न मिलने पर भी मेरे मस्तिष्क में उनका एक काल्पनिक चित्र था। पांडेय जी प्रायः बंगला के उपन्यासों का अनुवाद करते थे। इसलिए मेरी कल्पना में उनका बंगाली रूप था। गौर वर्ण, भरा बदन, खूब काले चिकने तथा परिष्कृत बाल, बंगाली धोती, चादर ओढ़े हुए। यह कल्पना इतनी सजीव थी कि एक आध बार इधर-उधर उनके प्रकाशित चित्र देखकर भी मिटी नहीं।

रानीकटरा-लखनऊ में मेरे एक निकट संबंधी श्रीराधेनारायण वाजपेयी 'प्रजावैद्य' रहते थे। बहुधा मेरे घर पर आया करते। उनकी लच्छेदार बातों का एक अच्छा भाग रूपनारायण जी के संबंध में होता।

उस समय पांडेय जी द्वारा बंगला तथा संस्कृत से अनुवादित पुस्तकों की धूम थी। इधर-उधर से पैसे एकत्र करके हम लोग इण्डियन प्रेस प्रयाग से पुस्तकें वी० पी० द्वारा मंगवाया करते थे। उनमें से अधिकांश पर पांडेय जी का नाम

हुआ करता था। मुझे आश्चर्य होता था कि कोई एक व्यक्ति इतना काम कैसे कर सकता था। और काम भी ऐसा वैसा नहीं। भाषा इतनी सुन्दर तथा मँजी हुई कि तबियत फड़क उठती थी।

समय धीरे-धीरे बीतता गया। संयोग की बात कि यद्यपि एक आध वर्ष छोड़कर प्रायः लगातार १५ वर्ष का विद्यार्थी जीवन लखनऊ में ही बीता और यद्यपि इस बीच साहित्यकारों से अच्छा संपर्क रहा, फिर भी पांडेय जी के प्रत्यक्ष दर्शन का कभी अवसर न मिला।

इस बीच अपने अनुवाद कार्य के अतिरिक्त पांडेय जी का नाम माधुरी और सुधा के संबंध में बराबर सामने आता रहा।

'सुधा' अपना अल्पकालीन जीवन समाप्त करके बंद हो चुकी थी। माधुरी का भी यौवन उतार पर था। द्वितीय युद्ध के दौरान में कागज की कमी ने उसका रूप रंग बिलकुल ही गिरा दिया था। शायद उसके स्वामियों की रुचि भी इस ओर नहीं थी। फिर भी, रूपनारायण जी के संपादकत्व में वह जैसे तैसे चल ही रही थी।

एक दिन मैं किसी कार्यवश लखनऊ गया था। मेरा खयाल है सन् १९४३ या १९४४ रहा होगा। हजरतगंज से होकर गुजरा तो अकस्मात इच्छा हुई कि नवलकिशोर प्रेस चलूँ। इस प्रेस से हिंदी और संस्कृत की अनेक ऐसी पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जो अब दुष्प्राप्य क्या अलभ्य हो रही हैं। जानना चाहता था कि वे मिल सकती हैं अथवा नहीं।

प्रेस में कई कर्मचारी अलग अलग मेजों पर बैठे काम कर रहे थे। एक अपरिचित व्यक्ति से बातचीत हुई। पुस्तकों के विषय में जानकारी प्राप्त करके मैंने माधुरी के विषय में पूछा। मुझे बतलाया गया कि प्रेस के दोनों स्वामियों के बीच और सब बातों में तो मतभेद है, मतैक्य केवल एक बात पर है। वह यह कि माधुरी बंद कर दी जाय। कुछ चर्चा इस बात की भी हुई कि माधुरी के स्थान पर एक नयी पत्रिका 'वासंती' निकाली जाय। यह भी संयोग कहिए कि जिन महाशय से मैं बात कर रहा था, उन्हें मैंने एक साधारण क्लर्क समझा।

१९५० की बात है। हिंदी सभा सीतापुर का सातवाँ वार्षिकोत्सव डा०

दीनदयालु गुप्त की अध्यक्षता में हो रहा था। उद्घाटन कर्ता थे राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन। साथ ही अवधी साहित्य परिषद् का तीसरा अधिवेशन भी होना था।

मैं प्रबंध के कार्य में व्यस्त था। किसी ने बतलाया, श्री रूपनारायण पांडेय आ गये हैं।

पांडेय जी अवधी साहित्य परिषद् के मनोनीत सभापति थे। उनका स्वागत करने के लिए स्टेशन पर अनेक लोग गये थे। लौटकर मुझे बताया गया था कि इस गाड़ी से तो वे आये नहीं।

फिर कैसे आ गये? मैं और काम छोड़कर उधर दौड़ा। हिंदी सभा के निकट ही एक स्कूल में प्रतियोगी छात्रों के ठहरने की व्यवस्था थी। वहीं एक कमरे में फर्श पर एक सज्जन बैठे हुए थे। छरहरा शरीर। सफेद मोटे कपड़े की कमीज पर रुई की बंडी और उस पर बंद गले का लंबा कोट। दाँत काले।

क्या यही पांडेय जी हैं, जिनके विषय में बचपन से न जानें कैसी-कैसी कल्पनायें बना रक्खी थीं! न वह गौर वर्ण, न वे कढ़े हुए बाल, न वह बंगाली धोती!

लेकिन यह व्यक्ति तो परिचित सा जान पड़ता है। कुछ ही दिन पहले इन्हें कहीं देखा है। अरे, यही तो वे हैं, जिनसे नवलकिशोर प्रेस में बात हुई थी।

पांडेय जी अपना झोला लिए चुपचाप बैठे थे। मैंने परिचय दिया और प्रार्थना की कि "आप यहाँ कहाँ बैठे हैं। चलिए आप लोगों के ठहरने का स्थान मेरे घर पर है।"

बोले—"तो यहाँ क्या बुरा है?"

मैंने कहा—"यह तो लड़कों के ठहरने का स्थान है। आप शायद अब भी अपने को लड़का समझते हों, पर मेरे तो बुजुर्ग हैं।

बड़ी कठिनाई से उन्हें घर लाया। अपराह्न के समय अधिवेशन था। संपादकाचार्य श्री अंबिकाप्रसाद वाजपेयी के उद्घाटन भाषण के बाद, जब पांडेय जी के व्याख्यान का समय आया तो उन्होंने उठकर दो-चार शब्द कहे।

पांडेय जी की आँखों में काफी कष्ट था। बोलने में भी श्रम सा पड़ता

था। साँस फूलती थी। उनके बोलने तथा खड़े होने की भंगिमा से मुझे कुछ संदेह सा हुआ। पास बैठे हुए लखनऊ के अपने एक मित्र से मैंने पूछा—"पांडेय जी अफीम तो नहीं खाते?" उन्होंने मुस्कराकर स्वीकारात्मक सिर हिलाया।

पांडेय जी ने बड़े विनीत भाव से उपस्थित जनता को धन्यवाद दिया और कहा कि "आप लोगों की आज्ञानुसार उपस्थित हुआ हूँ। कई दिनों से नेत्रों में कष्ट था। फिर भी अपना वक्तव्य लिख लाया हूँ। आज कष्ट अधिक होने के कारण पढ़ न सकूँगा।"

\+ \+ \+ \+

ऐसे थे रूपनारायण जी। तेरह वर्ष की अवस्था से ही गृहस्थी का भार कंधों पर पड़ा। पंद्रह वर्ष की अवस्था से ही जो लिखना प्रारंभ किया तो आमरण लिखते ही रहे। कवितायें, अनुवाद तथा स्वतंत्र रचनाएँ कितने हजार पृष्ठों में होंगी, इसका अनुमान शायद किसी को न होगा। शायद उनकी रचनाओं का आंशिक संग्रह भी किसी ने नहीं किया। पांडेय जी बस लिखते रहे—लिखते रहे।

पांडेय जी के शरीर में मानो दो ही अंग सजीव थे—उनकी आँखें तथा उनकी उंगलियाँ। जो कुछ पढ़ा, अपने ही भरोसे पर, और संस्कृत, बंगला तथा हिंदी पर उनका समान अधिकार था।

गृहस्थी की रोटियों का प्रश्न था। मौलिक लिखने में समय लगता था। इसलिए पांडेय जी की मौलिकता का अधिक प्रस्फुटन देखने में नहीं आया। परंतु अनुवादों के रूप में ही पांडेय जी की देन ऐसी है, जिसका अनुमान करके ही रोमांच हो उठता है।

(५)

श्री गुरुभक्तसिंह 'भक्त', भक्त भवन, आजमगढ़

स्वर्गीय रूपनारायण जी पांडेय हिंदी के उन्नायकों में थे। द्विवेदी युग में उन्होंने हिंदी को सब प्रकार से समृद्ध करना चाहा था। वे बँगला की उत्तमोत्तम रचनाओं के हिंदी रूपांतर करने में सिद्धहस्त थे। द्विजेन्द्रलाल राय के

नाटकों का हिंदी रूपांतर उन्होंने किया था। ये नाटक हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्याल बम्बई से प्रकाशित हुए थे। जिस समय ये रूपांतर प्रकाशित हो रहे थे उस सम तक हिंदी नाटकों का कोई सुष्ठु मापदंड नहीं बन पाया था। उन अनुवादों हिन्दी वालों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया। 'प्रसाद' में नाटक रचना की मौलिक प्रवृत्ति थी, पर कौन कह सकता है कि उन्होंने इन अनुवादों से कोई प्रेरणा नहीं ली थी, रूपनारायण जी ने हिंदी में प्रसाद जी के साथ-साथ हिंदी के मात्रिक छंदों को सफलतापूर्वक अतुकांत रूप दिया था। यह उनकी 'तारा' से स्पष्ट है।

पांडेय जी सफल अनुवादक तो थे ही, मौलिक स्रष्टा भी थे। 'कमलाकर' नाम से वे छंद-रचना भी करते थे। उनकी फुटकर रचनाओं का एक संग्रह 'पराग' नाम से सं० १९८१ वि० में प्रकाशित हुआ था। उनकी रचनाएँ द्विवेदी युगीन रचनाओं के समान देशभक्ति की प्रेरणा से परिपूर्ण हैं। वे खड़ीबोली व ब्रजभाषा में समानरूप से सुन्दर रचना कर लेते थे। उन्होंने प्रसाद के ही समान कुछ चतुर्दश पदियाँ भी लिखी थीं।

'माधुरी' के संपादक के रूप में हिंदी जगत की जो सेवा पाण्डेय जी ने की थी, वह अविस्मरणीय है। उनके समय की 'माधुरी'—क्या साज सज्जा और क्या सामग्री-संकलन, सभी दृष्टियों से परम गौरवपूर्ण थी।

पाण्डेयजी से कई बार लखनऊ में मिलने का सुअवसर मुझे मिला था। उनकी सहृदयता, उनकी सभ्यता और व्यवहार-कुशलता से मैं बहुत प्रभावित हुआ था। ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को घमंड छू नहीं गया था। उन्हें साहित्य-सेवा की लगन थी और उसी में वे मस्त रहते थे। बनावट से वे कोसों दूर थे। सादगी के अवतार होते हुए भी वे सरस हृदय और विनोदप्रिय थे। हिंदी के भण्डार के भरने में तथा भाषा को परिष्कृत करने में उनका बड़ा हाथ रहा है। अतः वे कभी भी भुलाये नहीं जा सकते। मैं भी इस अवसर पर अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

(६)

श्रीयुत गणेशदत्त शर्मा 'इन्दु', आगर, मालवा

वह भी एक युग था, जिसमें प्रत्येक साहित्यानुरागी हिंदी भाषा की वाटिका को आत्मीयता से सँवारने-सँजोने में जी-जान से जुटा था। अर्थ-प्राप्ति के लिए नहीं, यशार्जन के निमित्त नहीं, नाम के हेतु नहीं, प्रत्युत, माँ भारती की सेवा-पूजन के लिए, आरती के लिए, उस युग का एक-एक साहित्य-भक्त जी-जान से लगा हुआ था। वह मतवाला तो था ही अपितु अपने कार्य में उतावला भी था, जो जल्द से जल्द हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा के गौरवपूर्ण आसन पर ससम्मान प्रतिष्ठित देखने को उत्सुक था। भारत की अन्य प्रांतीय भाषाओं का भण्डार भरा जा रहा था, हिंदी की ओर अन्य भाषा-भाषी अँगुली उठाकर इसका उपहास करते थे। बंगला मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में साहित्य-सृजन की होड़ लगी हुई थी तो हिंदी के प्रेम दीवाने, भूखों मरकर, अधनंगे रहकर, मरखपकर मातृभाषा के पाद-पद्मों पर पुष्पार्पण कर उसकी पूजा कर रहे थे।

उस युग को साहित्यकारों ने 'द्विवेदी-युग' कहकर संबोधित किया है। भारतेंदु युग के बाद यही युग था, जिसमें हिंदी के मूर्धन्य विद्वानों का जन्म हुआ। कितनों के नाम गिनावें, जिन्होंने बड़ी तन्मयता तथा ममता से हिंदी भाषा के भंडार में विविध अमूल्य रत्न भेंट किए। उस युग के साहित्य महारथियों में स्वर्गीय पंडित रूपनारायण जी पांडेय का नाम सगौरव लिया जाता है। पांडेय जी का मेरा बहुत पुराना साहित्यिक रिश्ता रहा है। सन् १९१४ से मेरा उनका पत्रव्यवहार आरंभ हुआ। तब वे ३० वर्ष के थे और मैं २० का। मेरी उनकी पहचान पहले पहल तब हुई जब मैंने एक मासिक पत्र 'बाल-मनोरंजन' का संपादन और प्रकाशन आरंभ किया था। हम जैसे आगे बढ़नेवालों की कार्य क्षमता और गतिविधि का लेखाजोखा लगाकर उन्होंने सब प्रकार की सहायता देकर प्रोत्साहित किया था। मेरे द्वारा सम्पादित सभी पत्रों में उन्होंने अपनी रचनाएँ भेजकर मेरे प्रति अपने अगाध स्नेह का परिचय दिया था। तत्कालीन जिन साहित्यस्रष्टाओं ने मेरी पीठ ठोंकी, उनमें आपका स्थान सर्वोपरि था। जब इच्छा हुई उनसे रचना की माँग की, और उन्होंने तुरन्त ही मुझे अपनी रचनाएँ

भेजकर गद्‌गद् किया। मैं अपने पत्र में उनकी रचना प्रकाशित कर अपने को बड़ा धन्य मानता था।

ऐसे उदारमना मनस्वी के साक्षात्कार की प्रबल-उत्कंठा ने लखनऊ में उनके दर्शन भी करा दिए। पत्र व्यवहार द्वारा जो भावनाएँ मन में अपना स्थान कर चुकी थीं, उनसे कहीं अधिक सुन्दर सबल भावनाओं का उनके दर्शन से उदय हुआ। शान्ति और उदारता को मैंने उनमें स्पष्ट देखा; विद्या तथा ज्ञान की सजीव मूर्त्ति का दर्शन कर मुझे परमानंद अनुभव हुआ; विनय एवं नम्रता के गुणों से परिपूर्ण पाया। उनके सामने बस एक लक्ष्य था और वह था साहित्य-सेवा। सचमुच पहले पहल के मिलन में मैंने उन्हें गतिमान, जागरूक साहित्य-देवता के रूप में देखा था।

सम्पादन कला के तो वे धुरन्धर थे ही, साथ ही साहित्य-प्रणयन में भी परमकुशल थे। 'माधुरी' मासिक पत्रिका के माधुर्य को साहित्य-क्षेत्र में उँडेलने का श्रेय श्रीपाण्डेयजी को ही है। उनके संपादन में प्रकाशित 'माधुरी' की समता करने वाला कोई भी मासिक मुझे आज स्वाधीन-भारत के उन्नतकाल में दिखाई नहीं पड़ता। उस युग की प्रकाशित होने वाली साहित्य-सामग्री की सम्पन्नता आज पत्र जगत में कहीं भी देखने को नहीं मिलती! माना, आज हिंदी पत्र पत्रिकाओं की अधिकता है, सम्पादन में विपुल धन व्यय किया जा रहा है, किंतु द्विवेदी युग जैसा गंभीर, विशाल और उदात्त साहित्य आज ढूँढ़े नहीं मिलता। कहा जा सकता है कि अब साहित्य की दिशा ही बदल गई है। साहित्य-सुरसरी की पावन धारा न जाने किस पथ की ओर आज बही चली जा रही है? पाश्चात्य शासन में पाश्चात्य साहित्य का हिन्दी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाया, परन्तु आज स्वशासन काल में हिन्दी पर विदेशी भाषाओं की छाप पूर्णतः परिलक्षित हो रही है। 'माधुरी' के अतिरिक्त श्री पाण्डेय जी द्वारा सम्पादित 'निगमागमचंद्रिका', 'इन्दु' और 'नागरी प्रचारक' माधुरी से कम नहीं कूते जा सकते। श्री पाण्डेय जी किसी भी पत्र-पत्रिका का सम्पादन करते हों, वे मुझे कभी नहीं भूले और स्वसम्पादित सभी पत्र मुझे भेजते रहे। उनके सम्पादित सभी पत्र आज भी मेरे संग्रहालय में हैं, जिन्हें देख-पढ़ कर मेरे मन में तत्कालीन साहित्य सेवाओं की मधुर स्मृतियाँ जागृत हो उठती हैं।

श्री पाण्डेयजी की साहित्य-प्रतिभा का प्रकाशन उनके अथक कार्यों से मिलता है। वे गद्य और पद्य दोनों लिखने में समानरूपेण सिद्धहस्त थे। पत्र पत्रिकाओं के सम्पादन के अतिरिक्त वे अपने समय की सभी लब्ध-प्रतिष्ठ पत्र पत्रिकाओं को अपनी रचनाओं द्वारा सुशोभित किया करते थे। जिस पत्र ने उनसे रचना की माँग की, यथासंभव उसे उन्होंने कुछ न कुछ अवश्य ही लिख भेजा। यह उनका आदर्श सौजन्य कहिए या परम औदार्य। उनकी सैकड़ों रचनाएँ तब की पत्र पत्रिकाओं में प्राप्य हैं।

इस प्रकार साहित्य सृजन में लीन श्री पांडेय जी ने पुस्तकें भी लिखीं। थोड़ी बहुत नहीं—लगभग सत्तर अस्सी! एक से एक बढ़कर। उनकी शांति कुटीर पुस्तक की ही प्रेरणा थी कि मैंने अपने मकान का नाम 'इन्द्र सदन' से बदलकर 'शांति कुटीर' रखा। उस युग के पुस्तक साहित्य में पांडेय जी की पुस्तकें अपना एक विशिष्ट स्थान रखती थीं और आज भी वे पाठकों के लिए ज्ञानवर्द्धक बनी हुई हैं। आपकी पुस्तकें किसी एक दो विषय पर नहीं, बल्कि अनेक विषयों पर हैं जो आपकी बहुज्ञता का प्रमाण बनी हुई हैं। सीता, पाषाणी, नूरजहाँ, दुर्गादास, अज्ञातवास, पृथ्वीराज, शिवाजी, बुद्धचरित, अशोक, पद्मिनी, परशुराम, अर्जुन, हनुमान आदि पच्चीसों ऐतिहासिक पुस्तकें पाठकों के सामने अतीत के सत्य तथा सजीव चित्र उपस्थित करने में आज भी सक्षम हैं। आपकी लेखनी से सदैव ठोस साहित्य का ही जन्म होता था।

आज श्रीरूपनारायण जी हममें नहीं हैं, परन्तु उनका साहित्य हमारे मनोमंदिरों में स्थित है। उनकी रचनाएँ उनका नाम हिंदी संसार में अमर बनाए रखने में पूर्ण सक्षम हैं। उनके स्मृतिदिवस पर मैं अपनी संस्मरणात्मक श्रद्धांजलि अर्पित करने में आज अपने को धन्य मान रहा हूँ। हिंदी-साहित्य-जगत उनका परम ऋणी है और सदैव रहेगा। वे अमर हैं और उनका नाम अमर रहेगा।

(७)

पं० राधेश्याम कथावाचक, बरेली

स्वर्गीय श्री रूपनारायण पाण्डेय से मेरा परिचय सन् १९१४ ईस्वी (लगभग

४५ वर्ष) से था। तब मैं 'सिद्धनाथ महादेव' (रकाबगंज, लखनऊ) के स्थान पर 'कथा' कहता था। एक दिन 'कथा समाप्ति' पर पाण्डेय जी मुझसे मिले। हँसता हुआ मुख, सरल स्वभाव, प्रेम जैसे उड़ेल रहे हों—ऐसी बातें। रानी कटरा, चौक (अपने मकान पर) 'भोजन' का निमन्त्रण मुझे दे गए।

लखनऊ में तब 'हिन्दी' का प्रचार शुरू ही हुआ था—'नवलकिशोर प्रेस' से 'हिन्दी' की कुछ पुस्तकें छपी थीं—विशेष रूप में तो 'तुलसी रामायण' ही, पर उसका 'अर्थ' लोग कठिनता से समझते थे। मेरी 'रामायण की कथा' द्वारा 'हिन्दी का प्रचार' होता है—यह पाण्डेय जी को 'अच्छा' लगा। उनकी इसी 'पसंद' के भीतर 'हिन्दी प्रेम का सागर' लहरें मार रहा था, उन लहरों के आगे मेरा भी सिर झुक गया। यही 'रानी कटरा' का 'प्रेम मिलाप' था।

पाण्डेय जी 'खर्चीले' स्वभाव के थे। रुपया 'जोड़ना' नहीं जानते थे। हिन्दी के साहित्यिकों का वह काल 'तपस्या' का था। 'मौलिक' पुस्तकें लिखने के लिए अधिक समय, एकाग्रता, एकान्त चाहिए—इसीलिए उन्होंने तब 'अनुवाद' हाथ में लिया। संस्कृत और बँगला का अच्छा ज्ञान होने के कारण (उन्होंने) इन्हीं भाषाओं की पुस्तकों का हिन्दी में उलथा (अनुवाद) करना आरंभ किया। मेरा खयाल है कि अनुवादकों में वे 'सब से आगे' थे। 'श्री प्रेमचन्द' के सम्बन्ध में हम लोगों का यह 'मत' था कि वे जब लिखने बैठते थे तो उनका 'कलम' रुकता ही न था; पर मेरी जहाँ तक जानकारी है—'श्री रूपनारायण' का कलम उनसे भी शीघ्र चलता था। वे यदि प्रेम में 'चन्द' थे—तो यह 'रूप' में 'नारायण'। 'चन्द' और 'नारायण' में जितना अन्तर है—वही इन दोनों में था। आगे चलकर तो दोनों 'माधुरी' में एक हो गए थे—'चन्द-नारायण' (चन्द्रनारायण)

बँगला के अनूदित नाटक मुझे 'पाण्डेय' जी की कृपा ही से पढ़ने को मिले। 'गिरीश बाबू' और 'द्विजेन्द्र बाबू' को हिन्दी नाटक प्रेमियों के सामने 'प्रकाश' में लाने का श्रेय 'पाण्डेय' जी को ही है।

इण्डियन प्रेस की 'हिन्दी महाभारत' में भी बड़ा हाथ 'पाण्डेय' जी का ही है।

'अनुवाद' के अतिरिक्त 'सम्पादन का भी कार्य बहुत किया उन्होंने।

इतने लेख लिखे थे उन्होंने कि उनका आज 'संग्रह' किया जाय तो एक नया 'पाण्डेय पुराण' बन जाय ।

उनकी इच्छा थी कि 'राधेश्याम प्रेस' (बरेली) से भी (राधेश्याम रामायण की तर्ज में) वे कुछ पुस्तकें लिखें । यह स्थान तो 'पद्य' में पुस्तकें लिखने का है । पाण्डेय जी कभी-कभी 'पद्यरचना' भी किया करते थे । उन्होंने—'राधे-श्यामी छन्द' समझना शुरू किया, एक पुस्तक लिखनी भी शुरू की—पर वह पूरी न हुई—'जीवन के दिन' पूरे हो गए ।

जाओ तपस्वी – हिन्दी माता के मन्दिर में तुमने जो तपस्या की—वह अमिट है, अमर है, उसका फल—वरदान—तुम्हारी परिश्रमी आत्मा को स्वर्ग में—शारदमाता के चरणों में प्राप्त हो यही तुम्हारे अकिञ्चन भक्तों की तुम्हें श्रद्धाञ्जलि है ।

(८)

डा० भगीरथ मिश्र, पी-एच-डी०, सहायक प्रोफेसर, विश्वविद्यालय, लखनऊ

पंडित रूपनारायण पांडेय, लखनऊ के प्राचीन और आधुनिक साहित्यकारों की परम्परा में बीच की कड़ी थे । प्राचीन काव्य-परंपरा की भाव-शैलीगत माधुरी को न केवल उन्होंने स्वसंपादित 'माधुरी' में सुरक्षित और प्रकाशित ही किया था; वरन् अपनी निजी कविता में भी उसे ओतप्रोत कर लिया था । इसका आभास तब मिलता था जब वे कभी मौज में आकर अपनी रचनायें या समस्या पूर्तियाँ सुनाते थे । खड़ीबोली के उनके अनेक ललित छन्दों में व्रजभाषा काव्य का माधुर्य और लालित्य छलकता था । इस प्रकार की शैली की रचनायें पांडेय-द्वयी—स्व० रूपनारायण पांडेय और श्री पं० लोचनप्रसाद पांडेय की निकला करती थीं जो अपनी विशिष्ट मधुरिमा से मंडित थीं । ये रचनायें द्विवेदी युग की कविता में नूतन प्रयोग का सूत्रपात करने वाली थीं । इसके साथ ही पांडेय जी सदैव नवीनतम काव्य प्रवृत्तियों को भी संरक्षण और प्रोत्साहन देते रहे । उनके युगीन संबंधों और वयोवृद्धता के संसर्गों से अभिभूत रहने वाला नया लेखक वर्ग उनकी इस उदार सहृदयता से परिचित नहीं था और न अनुमान

हीं लगा सकता था; परन्तु पांडेय जी काव्य को काव्य की दृष्टि से ही सदैव देखते थे, वाद और रूढ़ि के चश्में से नहीं।

पांडेय जी के सरल स्वभाव और निश्छल व्यवहार से प्रायः लोग उनकी गंभीर विद्वत्ता, व्यापक अध्ययन एवं सूक्ष्म काव्य-विवेक का भी अनुमान बहुत कम लगा पाते थे। परन्तु, जिसने उनके द्वारा संपादित माधुरी के विविध लेखों को पढ़ा है, वही समझ सकता है कि इन लेखों में उनका विशाल ज्ञान एवं उदात्त दृष्टिकोण सदैव प्रस्फुटित होता रहा है।

हिन्दी में अनुवाद-साहित्य के प्रसंग में पांडेय जी अग्रगण्य हैं और अधिकांश लोग उन्हें बँगला के अनुवादक के रूप में जानते हैं। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि वे बड़े द्रुत अनुवादक थे और अपने अनुवाद-कार्य-द्वारा उन्होंने हिन्दी के भंडार को समृद्ध बनाया। पर, मेरा कुछ ऐसा विचार है कि पांडेय जी आर्थिक कारणों से विवश होकर अनुवाद कार्य में व्यस्त रहे जिससे उनकी प्रतिभा और परिश्रम का उपयोग मौलिक रचनाओं के प्रणयन में न हो पाया। इस दृष्टि से लाभ की तुलना में हानि ही अधिक रही; क्योंकि जिन्होंने उनकी मौलिक रचनाओं को देखा या सुना है, वे उनसे उत्कृष्ट ग्रंथों की आशा करते थे, परन्तु पांडेय जी का मौलिक प्रकाशित साहित्य अनुवादित साहित्य की अपेक्षा काफी कम है।

पांडेय जी की गद्य रचनाओं में जहाँ व्यापक ज्ञान था, वहीं उनकी कविताओं में उक्ति चमत्कार, मनोरम कल्पना और सरस प्रवाह था। इधर के काव्य में ढूँढ़ने पर भी कम मिलने वाली स्मरणीयता की विशेषता उनकी कविता में प्रायः मिलती थी।

पांडेय जी साहित्य के पंडित थे। साहित्यिक आंदोलनों और साहित्यकारों से संबंधित न जाने कितनी कथायें उन्हें ज्ञात थीं जिन्हें वे प्रायः सुनाया करते थे। लिखित से अधिक उनका कथित साहित्य था जिसके वे भंडार थे और जिसे संकलित करने के लिए उनके ही जीवनकाल में किसी प्रयोग की आवश्यकता थी।

पांडेय जी का स्निग्ध संपर्क जिन्हें भी कभी प्राप्त हुआ है, वे कभी उसे भूल नहीं सकते। वे प्रचार और विज्ञापन से दूर रहने वाले साहित्यकार थे

और अपने पास विज्ञापन का एक प्रबल साधन रखते हुए भी उन्होंने अपने को अधिक विज्ञापित नहीं किया; यह उनकी विनम्र साहित्यनिष्ठा थी। फिर भी उनके न कहने से उनके कार्य की गरिमा तो कम नहीं होगी। वे अपने में दो युगों की संधि का महत्व समेटे हैं। ऐसे सरल साहित्यिक व्यक्तित्व को स्मरण कर आज भी हृदय भरा आता है।

(६)

श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, प्राध्यापक मिथिला कालेज, दरभंगा

द्विवेदी युग के साहित्यकारों में रूपनारायण पांडेय जी का जो गौरवपूर्ण स्थान है वह हिंदी साहित्य के इतिहास में अविस्मरणीय बना रहेगा। वे केवल एक कुशल गद्य लेखक ही नहीं, प्रतिभासंपन्न कवि भी थे; अपनी कविताओं में उन्होंने रससंवेदनशीलता का अच्छा परिचय दिया है। क्या विषय और क्या भाषा, दोनों ही दृष्टियों से उनकी कविताएँ सुपाठ्य एवं सरस हैं और पाठकों को तल्लीन करने की उनमें अपूर्व क्षमता है।

पांडेय जी ने बँगला के उपन्यासों एवं नाटकों के हिंदी में जो अनुवाद किये हैं वे केवल विशुद्ध परिमार्जित भाषा की दृष्टि से ही नहीं, औपन्यासिक एवं नाटकीय आदर्श की दृष्टि से भी उल्लेखनीय हैं। हिंदी के उपन्यासकारों एवं नाट्यकारों के लिए एक प्रकार से उन्होंने पथ-प्रदर्शन का काम किया था क्योंकि आगे चलकर उसका प्रभाव हिन्दी के मौलिक उपन्यासकारों पर विशेष रूप में पड़ा और कतिपय महदादर्शसंपन्न उपन्यासों की सफल रचना हुई। कवि एवं अनुवादक से भी बढ़कर पांडेय जी ने 'माधुरी' पत्रिका के यशस्वी संपादक के रूप में ख्याति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की। हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं में उन दिनों 'माधुरी' का एक विशिष्ट स्थान था। मुझे स्मरण है कि 'माधुरी' के अंकों की प्रतीक्षा मैं कितनी उत्कण्ठा के साथ किया करता था और उसके विविध विषय समन्वित साहित्यिक लेखों को पढ़कर मैं कितना आह्लादित होता था। 'माधुरी' में समय-समय पर मेरी कुछ रचनाएँ भी प्रकाशित हुई थीं।

'माधुरी' के स्तम्भों में पांडेय जी ने अनेक नवीन विषयों का समावेश किया था और उसे सब प्रकार से साहित्यगुण-संपन्न बनाया था।

उनके जैसे सहृदय साहित्यकार एवं रसविदग्ध जन का स्मरण एवं गुण-कीर्तन तो होना ही चाहिये—'वाग्जन्मवैकल्यमसह्य शल्यं गुणाधिके वस्तुनि मौनताचेत्'—श्रीहर्ष।

उनकी पावन स्मृति में आप 'रसवंती' का विशेषाङ्क निकाल रहे हैं यह सर्वथा प्रशंसनीय है। यह एक विशुद्ध साहित्यिक कार्य है। अपने यशस्वी साहित्यकारों के प्रति इस प्रकार आंतरिक श्रद्धा के अर्घ्य प्रदान करके ही हम अपने को धन्य बना सकते हैं। मुझे आशा एवं विश्वास है कि 'रसवंती' का आगामी 'पांडेय-स्मृति-अंक' हिन्दी संसार में यथेष्ट समादर प्राप्त करेगा। अपने इस आयोजन में मेरा सात्विक एवं सन्नद्ध सहयोग स्वीकार करें।

(१०)

श्री जी० पी० श्रीवास्तव, गंगाश्रम, गोंडा

हिंदी में सबसे पहली मौलिक कहानी जो मैंने पढ़ी थी और जो मुझे इतनी सुन्दर जँची कि मुझे अब तक याद है वह थी पूज्यवर श्री रूपनारायण पांडेय की। वह कहानी "इन्दु" में निकली थी और उसका नाम शायद 'क्लर्क जीवन' या ऐसा ही कुछ था।

यह बात है लगभग १९१० की जब मुझपर भी लेखक बनने की सनक सवार थी और उसी की धुन में हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी की रचनाएं बराबर पढ़ा करता था ताकि अपनी लेखनी के लिए कहानी-कला का मर्म मैं भी कुछ समझ जाऊं। मगर अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी रचनाओं में मुझे वह आनन्द नहीं मिलता था जो मुझे अन्य भाषाओं की रचनाओं में प्राप्त होता था। क्योंकि हिंदी लेखकों को मौलिकता, स्वाभाविकता, सरसता और सरलता से न जाने क्यों चिढ़ थी। उस पर भाषा की उत्तमता पंडिताई बघारने में समझी जाती थी और विचारों की उच्चता उद्देश्य की दुन्दुभी बजाने में, यह भी परलोक के

रहा, में जिनके मारे न भाव हृदय तक पहुँच पाते थे और न चरित्रों ही में कुछ जान आती थी, कम से कम मेरी दृष्टि में। यह रोग अब कुछ घटा या बढ़कर एकदम तपेदिक के दर्जे पर पहुँच गया है, ईश्वर जाने या जानें हिन्दी के कर्ता-धर्ता; क्योंकि मुझे तो सावन के अन्धे की तरह हरदम हरियाली ही सूझा करती है।

हाँ तो वह कहानी क्यों मुझे पसन्द आई, इस पर जब मैंने विचार किया तो देखा कि सबसे पहली बात उसके आकर्षण की उसकी भाषा में थी जो ढोंगी नहीं, बल्कि बिल्कुल स्वाभाविक थी जैसी हम-आप बोलते हैं। दूसरी यह कि चरित्र सजीव थे और घटनायें प्रतिदिन घटनेवाले इसी संसार की थीं। विवरण भी इतना प्यारा था कि हृदय में आपसे आप उत्सुकता के साथ सहानुभूति उभारता जाता था।

तभी से मैं पूज्य पांडेय जी का भक्त हो गया और वह मेरे ऐसे प्यारे लेखक हो गये कि मैं उनकी रचनाओं को ढूंढ़-ढूंढ़कर बड़े चाव और बड़ी श्रद्धा से बराबर पढ़ने लगा।

लगभग १९३० में जब वह 'माधुरी' के सम्पादक थे और मैं अपनी पुस्तक 'कागज़ी करतब' या खेल रेखागणित के प्रकाशन के संबंध में 'गंगापुस्तक माला' कार्यालय, लखनऊ गया था तब पांडेय जी के दर्शनों का मुझे पहले पहल सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरा नाम सुनते ही वे हंस पड़े और मैं भी मुस्कुरा पड़ा। बातचीत तो बहुत कम हुई; मगर हँसी और मुस्कराहट में हम दोनों के हृदय के बाँध खुल गये और ऐसा जान पड़ा कि हम दोनों जन्म के साथी हैं। इस मिलन में दोनों को खुशी तो बेहद हुई मगर यह जानकर मुझे पश्चाताप भी हुआ कि पांडेय जी लखनऊ के निवासी थे और मैं लखनऊ ही में १९१३ तक पढ़ता रहा फिर भी उनके दर्शनों का सौभाग्य इससे पहिले कभी प्राप्त न कर सका।

उक्त मिलन मेरे लिए इस कारण और भी महत्वपूर्ण था कि जैसे ही मैं पूज्य पांडेय जी से मिलकर लाटूश रोड पर निकला वैसे ही पूज्यवर श्री प्रेमचंद जी के दर्शनों का भी लाभ हो गया। वह भी मेरा प्रथम मिलन था। उनसे भी बातें बहुत कम और राह चलते हुईं। कहने को ये दोनों मिलन बहुत ही सरसरी तौर

के हुए फिर भी मेरे हृदय पर इनकी छाप इतनी गहरी लग गयी कि जब कभी इन दोनों महानुभावों के नाम मेरे कानों में गूंजते हैं, मेरे हृदय में श्रद्धा और भक्ति उमड़ उठती है।

इसके बाद लगभग १९५२ में पूज्यवर श्री पांडेय जी की अमूल्य वार्ता मैंने अपने उपन्यास 'लतखोरी लाल' पर लखनऊ रेडियो से सुनी। इस वार्ता में उन्होंने 'लतखोरी लाल' का जैसा बखान किया है वैसा मैं उसे स्वप्न में भी नहीं समझता था। सच पूछिए तो उन्होंने अपनी उस अपूर्व वार्ता से मेरे 'लतखोरी लाल' को सदा के लिए अमर कर दिया है। इसके लिए मेरी आत्मा उनके नाम को सदा जपती-रहेगी।

(११)

आचार्य विनयमोहन शर्मा, राजकीय डिगरी कालेज, रायगढ़

स्व० पंडित रूपनारायण पाण्डेय ने हिन्दी की विविध रूपों में सेवा की है। उन्होंने बँगला की प्रतिनिधि कृतियों का हिन्दी में सफल अनुवाद कर हिन्दी-भाषियों का सात्विक मनोरंजन किया और हिन्दी-लेखकों को उपन्यास-लेखन-तंत्र से अवगत करा उन्हें अनुप्रेरित किया। उनके अनुवाद हिन्दी-भाषा की प्रकृति के अनुरूप होने के कारण मौलिक उपन्यास का आनन्द प्रदान करते हैं।

वे द्विवेदी युग के यशस्वी कवि रहे हैं। उनके सम्पादन में 'माधुरी' की जो धूम मची थी, वह मुझे आज भी याद है। हिन्दी के कई पुराने लेखक-संन्यासी उसमें नई उमंग से पुनः लिखने लगे थे और कई नए लेखक तथा कवियों को उसने जन्म दिया था। 'माधुरी' के पश्चात् कई भारी भरकम पत्रिकाएँ निकलीं, पर वे उसके स्तर को नहीं छू सकीं। यह सब उनके सम्पादन-कौशल का चमत्कार था।

पांडेय जी ने कई को कीर्तिवान् बनाया, पर स्वयं कीर्ति के पीछे कभी नहीं दौड़े। एक स्वाभिमानी साहित्यकार का जीवन उन्होंने व्यतीत किया। हिन्दी उनके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकती। ऐसे कर्मठ साहित्य-तपस्वी की स्मृति में शतशः प्रणाम।

(१२)

पं० रामनरेश त्रिपाठी, कोइरीपुर, जौनपुर

मेरे सहृदय मित्र पंडित रूपनारायण पाण्डेय (स्व०) की याद दिलाकर आपने मुझे सुखी किया है । पाण्डेय जी तो अपना जीवन सफल कर गये, उनके लिये शोक मनाने का तो अब प्रसंग ही नहीं है ।

पांडेय जी मेरे साहित्यिक मित्र थे । १९१५ में जब मैं पहले-पहल इलाहाबाद में रहने के लिये गया, तब दारागंज में प० चन्द्रशेखर शास्त्री (स्व०) के घर पर ठहरा था । तब पाण्डेय जी भी दारागंज में रहते थे । वहीं मेरी उनकी मुलाकात पहले-पहल पंडित जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, वैद्य-पंचानन के मकान के सामने हुई थी । उसके बाद इलाहाबाद और लखनऊ में कभी प्रेस में, कभी घर पर, हमारा मिलना होता रहा । कविता-कौमुदी के दूसरे भाग में उनका भी जीवन-चरित्र और कुछ कविताओं के नमूने मैंने दिये हैं । वे बड़े सहृदय कवि थे । उनकी वन-विहंगम कविता सवैया छंद के एक नये रूप में निकली थी; वह छंद मुझे बहुत प्रिय लगा था ।

पाण्डेय जी ने अपना सारा जीवन हिन्दी की सेवा में लगा दिया । वे बड़े परिश्रमी थे । उनका परिश्रम उनकी लिखित और अनुवादित पुस्तकों की संख्या ही से प्रकट है । उनके साथ साहित्य या साहित्यिकों की चर्चा चलती, तब उनकी स्मरण शक्ति और विनोद-प्रियता से मन ऐसा मुग्ध हो जाता था कि समय की सुध ही भूल जाती थी ।

उनके देहावसान का समाचार पाकर मुझे दुःख हुआ था; पर अब दुःख नहीं है । क्योंकि उनके मित्रों ने उनके यश को जीवित रक्खा है । कवि का तो यश ही शरीर है ।

मैं अब सुलतानपुर में नहीं रहता; अपने जन्म-ग्राम कोइरीपुर (जौनपुर) में महायात्रा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।

बहुत आगे गये, जो हैं वो अब तैयार बैठे हैं ।

(१३)

श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र, निर्मल, १६७ कटरा, इलाहाबाद

पंडित रूपनारायण पांडेय आधुनिक साहित्य के महान साधक और निर्माता थे। हिन्दी को प्रत्येक दृष्टि से समृद्ध बनाने में उन्होंने जितना त्याग और तपस्या की उसकी कीमत आज का हिन्दी का इतिहासकार—जो ईमानदारी और सचाई से इतिहास लिखे, ही आँक सकता है। पांडेय जी खड़ीबोली के युग-स्तम्भ थे। ऐसी जबरदस्त, शुद्ध, प्रांजल और व्याकरणसम्मत भाषा लिखने वाले हिन्दी जगत में इने ही गिने हैं। जिस व्यक्ति ने जीवन में हजारों पृष्ठ लिख डाले हों, जीवन में हिन्दी की सेवा ही जिसका आदर्श रहा हो, ऐसे व्यक्तित्व की इस स्वतंत्र भारत में कितनी कदर है यह हमारे ऐसे मुक्तभोगी और पांडेय जी के परम मित्र ही जानते हैं। मेरा पाण्डेय जी का संबंध सन् १९२१ ई० से था। उन दिनों वह 'महाभारत' का हिन्दी अनुवाद कर रहे थे। बाद को वह इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित भी हुआ था। बंगला की पचासों पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी प्रचार-प्रसार तथा निर्माण में उनका योगदान स्तुत्य है। द्विवेदी-युग के वह प्रमुख स्तम्भ थे। स्वभाव के बड़े निश्छल, प्रसन्नचित, मौजी तबीयत के और निस्पृह व्यक्ति थे। जीवन में सैकड़ों बार भेंट हुई लेकिन वही प्रेम, वही स्नेह, वही आत्मीयता; कभी भी यह अनुभव नहीं हुआ यह कोई गैर हैं। उनकी मृत्यु से सचमुच हिन्दी में जो स्थान रिक्त हुआ है उसकी पूर्ति तो हो ही नहीं सकती। पद-लोलुपता तो उनमें छू तक नहीं गयी थी। बड़े-बड़े सम्मेलनों में वह एक दर्शक की हैसियत से सम्मिलित होते थे। उस महान व्यक्ति ने कभी अपनी महानता का अनुभव ही नहीं किया।

ऐसा गौरवपूर्ण व्यक्तित्व हिन्दी से उठ गया, किंतु हिन्दी संसार की ओर से उनकी स्मृति में अभी कुछ नहीं हो रहा है। आप का प्रयास स्तुत्य है। मुझे विश्वास है कि 'रसवंती' के 'पांडेय स्मृति अंक' द्वारा हिन्दी जनता को स्वर्गीय साहित्यकारों की स्मृति-रक्षा के लिए एक नवीन जीवन प्राप्त होगा और नया मार्ग भी प्रशस्त होगा।

(१४)

श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', एम० ए०, ३, हार्डिञ्ज रोड, पटना-१

स्वर्गीय पं० रूपनारायण पांडेय एक अनुभवी पत्रकार, कुशल लेखक और रससिद्ध कवि थे। हिंदी-साहित्य के निर्माण एवं उत्तरोत्तर विकास के निमित्त उन्होंने जो कुछ और जितना किया उस पर एक इतिहास लिखा जा सकता है। अनुसंधान और शोध-कार्य में लगे हुए आचार्यों और विद्यार्थियों का ध्यान यदि इस ओर आकृष्ट हुआ—और यह आवश्य होना चाहिए—तो यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जायगा कि हिंदी-पत्रकारिता के सजाने, हिंदी-कविता के सँवारने एवं हिंदी-उपन्यास के सिंगारने में पांडेय जी ने युग-नायक का काम किया।

कविता के क्षेत्र में पाण्डेय जी इतिवृत्तात्मक युग की देन थे। परंतु गहराई में जाकर अध्ययन करने से स्पष्ट हो जायगा कि प्राचीन के स्थान पर नवीन आदर्श के स्थापन में भी वे आगे ही गये। छायावाद के आदि-प्रवर्तकों में उनको बहुत ऊँचा स्थान स्वतः दिया जायगा। ऐसा मैं बहुत सोच-समझ कर लिख रहा हूँ।

'माधुरी' के आदि संपादक के रूप में पाण्डेय जी से मेरा प्रथम परिचय हुआ था। 'माधुरी' के आरंभ का इतिहास वर्तमान हिंदी-साहित्य के स्वर्ण-युग का इतिहास है जिसके निर्माण की प्रत्येक पंक्ति में पाण्डेय जी ने अपना साहित्यिक व्यक्तित्व बिखेर दिया था। संपादक रू० ना० पा० से नवयुवकों को बेहद प्रोत्साहन मिला। मुझ पर उनकी विशेष कृपा थी और उनका आशीर्वाद मुझे बराबर मिलता रहा। उनसे मैंने बहुत कुछ सीखा। उनकी स्मृति में मेरी पूजा के फूल अर्पित हैं।

(१५)

डा० अंबा प्रसाद 'सुमन', एम. ए., पी-एच. डी., काव्य कुटीर, कृष्णपुरी, अलीगढ़

द्विवेदी युगीन साहित्यकार स्व० पं० रूपनारायण जी पाण्डेय उन साधकों और तपस्वियों में से थे जिनकी हृद्देशोद्‌भूता स्रोतस्विनी की पूत पावनी शीतल

धारा से हिन्दी-साहित्य की वाटिका सुरम्य श्यामल एवं मंजुल बनी है। साहित्य के मन्दिर में वे पुजारी सदा अभिनन्दनीय रहेंगे जिन्हें नये विचारों की अभिव्यक्ति के लिए साधनामय अवसर प्राप्त हुआ है। उनसे भी अधिक वन्दनीय वे हैं जिनके मानस से उन्नत विचारों के स्रोत उमड़ा करते हैं और सबसे अधिक भाग्य-शाली और पुण्यात्मा वे हैं जो अपने जीवनकाल में ही अपनी साधना के पादपों को पल्लवित, पुष्पित तथा फलित देखकर सच्चे आत्मानन्द की अनुभूति प्राप्त करते हैं। श्री रूपनारायण जी पाण्डेय वस्तुतः ऐसे ही भाग्यशाली पुण्यात्माओं में से एक साहित्यात्मा थे जिन्होंने अपनी साधना के मधुर फलों को प्रत्यक्ष रूप में चखा था।

एक लेखक और संपादक के सम्बन्ध के नाते मेरा प्रथम परिचय पांडेय जी से सन् १९४९ ई० में हुआ था, जब कि वे 'माधुरी' मासिक पत्रिका के संपादक के रूप में हिन्दी-जगत की सेवा कर रहे थे। मेरे मित्र श्री रघुवंशरत्न गौड़ (खैर, जिला अलीगढ़ के निवासी) के पिता स्व० पं० बद्रीप्रसाद गौड़ ने बिहारी सतसई की एक विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी थी जिसे श्री रघुवंशरत्न गौड़ ने मुझे देकर कहा था कि यह टीका किसी पत्र में क्रमशः प्रकाशित होनी चाहिए। उसी टीका के प्रकाशन के सम्बन्ध में श्री पाण्डेय जी से मेरा पत्र-व्यवहार चला था। उनके पत्रों के माध्यम से ही मैं साहित्यकार पाण्डेय जी के भावपूर्ण सरस हृदय के मनोरम स्वरूप से परिचय प्राप्त कर सका था। वास्तव में उनका साहित्यिक चरित्र बड़ा ऊंचा था जिसकी आधारशिला सत्यता और कर्मशीलता थी। आज साहित्य की सेवा का लेबिल तथा साइनबोर्ड लगाकर शोषक वणिग्वृत्ति-वाले व्यापारियों की हिन्दी-संसार में कमी नहीं है। ऐसे लोगों के प्रति पाण्डेय जी के विचार बड़े उग्र थे।

हिन्दी के सुकवि तथा अनुवादक के रूप में पाण्डेय जी का नाम सदा अमर रहेगा। बंगला भाषा के नाटकों और उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी के नाटककारों और उपन्यास-लेखकों को जिस साहित्यिक उच्चता की ओर बढ़ने के लिए पाण्डेय जी ने प्रेरणा प्रदान की वह सदैव हमारे लिए वन्दनीय एवं अभिनन्दनीय है। द्विवेदी मंडल से बाहर रहते हुए जिन महान् विभूतियों ने हिन्दी-काव्य की भूमि को रसाप्लावित किया, उनमें स्व० पाण्डेय

जी का नाम अमर तथा गौरवमय है। उनकी रसमयी भावुक लेखनी का काव्यात्मक 'पराग' सदा हिन्दी-साहित्य के उपवन को सुरभित करता रहेगा। 'माधुरी' का संपादन करते हुए जो साहित्य-सेवाएँ पाण्डेय जी की समर्थ लेखनी द्वारा हुई हैं, उन्हें हिन्दी-जगत् कभी भूल नहीं सकता।

एक प्रकार से अनुवादक का कार्य मूल लेखक के कार्य से भी अधिक कठिन और गुरुतर होता है। अनुवादकर्ता को दो भाषाओं की प्रकृति और प्राणों से पूर्ण परिचय प्राप्त करना होता है। उनके शिरा-संस्थानों की अवगति के साथ-साथ हृदय-गति का ज्ञान अनुवादक के लिए आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है। इस दृष्टि से श्री पाण्डेय जी उच्चकोटि के सफल अनुवादक थे। ऐसे महान् साहित्यकार की स्मृति में 'रसवन्ती' के परिवार ने जो यह साहित्यिक अनुष्ठान किया है, वह वास्तव में सच्ची कर्तव्यपरायणता का प्रतीक है। इस अवसर पर उस स्वर्गीय आत्मा की पुण्य स्मृति में मैं अपनी श्रद्धांजलि सादर समर्पित करता हूँ—

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरा-मरणजं भयम्॥

मेरी आत्मा का अटल विश्वास है कि साहित्य की धरित्री पर स्व० पाण्डेय जी का सारस्वत स्रोत सदैव प्रवहमान रहते हुए अमरत्व को प्राप्त करता रहेगा।

(१६)

श्रीनीलकण्ठ तिवारी, एम्. ए. श्रीपत भवन, वाडिया स्ट्रीट, तारदेव, बम्बई ७

स्वर्गीय श्रद्धेय पांडेय जी की साहित्यिक देन का लेखा-जोखा तो विद्वान लेखक अपने लेखों में करेंगे ही; मैं अपनी ओर से उनके प्रति अपनी सच्ची भावना प्रकट करता हूँ जो अभी तक मिट नहीं पायी।

लगभग उन्नीस वर्ष हुए, जब मैं लखनऊ में था। मेरा श्रद्धेय पांडेय जी से जब-तब सम्पर्क होता रहता था। उन दिनों उत्तर प्रदेश के कवि-सम्मेलनों में यों तो मैं लोक-प्रिय कवि हो चुका था, परन्तु कवि के नाते मैं उदीयमानों

में ही था। और उदीयमान कवि को भी प्रोत्साहन मिलता रहना चाहिये और खासकर जब प्रोत्साहन किसी माने हुए साहित्यकार से मिले तो फिर क्या कहना ! मेरा यह परम सौभाग्य था कि पांडेय जी जैसे धुरंधर विद्वान और प्रसिद्ध "माधुरी" के ख्यातमामा संपादक न केवल मेरी कविताएँ "माधुरी" में प्रकाशित करते रहे बल्कि बहुत अच्छा लिखते हो, बराबर लिखते जाओ, कहकर मुझे बराबर प्रोत्साहन भी देते रहे। यह उनकी विशालहृदयता का प्रमाण है। उनमें मैंने जितनी गंभीरता पायी उतनी सादगी थी और सौजन्य भी। कतिपय बड़े साहित्यकारों की तरह उनमें अहं जन्य अलगाव की भावना और गर्व की भाव-मुद्रा लेश-मात्र भी नहीं थी। विद्वता और नम्रता का ऐसा संयोग दुर्लभ है, परन्तु उनमें ये दोनों सहज-सुलभ थे। उनकी आन्तरिक और बाह्य सादगी में पूर्ण सामञ्जस्य था। वे विद्वान थे, किन्तु निरभिमान थे, वे बहु भाषा-भाषी थे किन्तु मृदु-भाषी थे, वे सिद्धहस्त साहित्यकार थे किन्तु निर्विकार थे, वे समर्थ संपादक थे किन्तु मेरे जैसे नये लेखकों के प्रेरक भी। अतएव सौजन्य के अवतार हिन्दी के निष्ठावान् साहित्यकार स्वर्गीय आदरणीय श्री रूपनारायण पांडेय के स्मृति-चरणों में मैं अपनी भावना के ये फूल अर्पित करता हूँ और आशा करता हूँ कि उनके आदर्श व्यक्तित्व के सम्पर्क में आने वाले सज्जन उनसे प्रेरणा पाकर, अपने जीवन को उच्चतर बनाने का प्रयत्न करेंगे।

(१७)

डा० रामचरण महेन्द्र एम. ए., पी-एच. डी, आचार्य राजकीय कालेज, सरदार शहर

हिन्दी में अनुवादित नाटकों के क्षेत्र में सर्वाधिक कार्य करने वाले श्री रूपनारायण पाण्डेय कविरत्न का नाम बड़े आदर से लिया जायगा। महावीर प्रसाद द्विवेदी-काल में कुछ व्यक्ति संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद कर रहे थे। पं० सत्यनारायण ने संस्कृत से, लाला सीताराम ने अंग्रेजी से, श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने फ्रांसीसी नाट्यकार मोलियर की कृतियों के अनुवाद प्रस्तुत किये, प्रेमचन्द जी ने जान गाल्सवर्दी के कुछ नाटकों के अनुवाद किये, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने बेल्जियम के प्रसिद्ध कवि मारिस मेटरलिंक की नाटिकाओं के अनुवाद किये। पाण्डेय जी ने बंगला नाटक-साहित्य

से हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत करने का क्षेत्र अपने लिए चुना और बंगला के अनेक विख्यात नाटकों का ऐसा भावपूर्ण अनुवाद किया कि वे बिल्कुल मौलिक से प्रतीत होते हैं। अनुवादक की श्रेष्ठता का ज्ञान हमें तब लगता है जब हम उसके भाव, भाषा, शैली सब पर हिन्दी का पूर्ण अधिकार देखते हैं।

उदाहरण के लिए पाण्डेय जी द्वारा अनुवादित "बुद्ध-चरित" नाटक ही ले लीजिए। लेखक ने मूल नाट्यकार की भावनाओं और विचारों की रक्षा करते हुए इस नाटक में दिखाया गया है कि राजसी सुख भोग की लालसाओं को लात मार कर अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए संसार के सारे सुखों को तिलांजलि दे कर महात्मा बुद्धदेव किस प्रकार आत्म चिन्तन और वैराग्य में लीन हुए थे। मूल ग्रन्थकर्त्ता के ज्ञान, शिक्षा, उपदेश, पवित्रता, शान्ति तथा प्रेम से पूर्ण भावनाओं को अनुवादक ने सचाई से प्रस्तुत कर दिया है।

"पतिव्रता" बंगला के सुप्रसिद्ध नाटककार स्वर्गीय गिरीशचन्द्र घोष के नाटक का सफल अनुवाद है। इसमें एक भले आदमी का पथ-भ्रष्ट होना और फिर उसकी पतिव्रता पत्नी के प्रभाव से सुधरना बड़ी खूबी से चित्रित किया गया है। "आहुति अथवा जयपाल" का भी ऐसा अनुवाद पाण्डेय जी ने किया है कि पढ़ते समय नाटक मौलिक प्रतीत होता है। और "कृष्णाकुमारी" बंगला के सर्वश्रेष्ठ काव्य "मेघनाथ-वध" के रचयिता महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त के सबसे सफल ऐतिहासिक नाटक "कृष्णाकुमारी" का सुन्दर अनुवाद है। इनके अनुवादों का भाषा प्रवाह इतना सहज स्वाभाविक है कि वे बंगला से अनुवादित नहीं प्रतीत होते; उनमें मौलिक ग्रन्थों का आनन्द आता है।

श्री रूपनारायण पाण्डेय में एक सफल नाट्यकार के गुण थे। वे छोटे-छोटे एकांकी भी लिखा करते थे। कथोपकथन लिखने में वे सिद्धहस्त थे और उनमें सर्वत्र सजीवता पायी जाती है।

उनके मौलिक एकांकी मार्मिक हैं। प्रहसनों के क्षेत्र में तो पाण्डेय जी बेजोड़ थे। उनका समग्र जीवन साहित्य सेवा में व्यतीत हुआ था। सम्पादन क्षेत्र का उन्हें व्यापक अनुभव था; जीवन के उत्थान-पतन उन्होंने स्वयं देखे थे। जीवन के वे अनुभव उनके नाटकों में देखे जा सकते हैं। साहित्य-संसार में

होने वाली धाँधली का सजीव और यथार्थवादी चित्र उनके एकांकी "समालोचना-रहस्य" में देखा जा सकता है। उसमें हास्य-व्यंग्यमय शैली में लेखक ने एक सम्पादक दफ्तर का चित्र प्रस्तुत किया है जो दिखावटी, स्वार्थी और झूठे सम्पादकों का व्यंग चित्र है। उनके "गुरु-वाक्य" नामक प्रहसन में भी मर्म पर व्यंग्य किया गया है। स्थिति और शब्द, दोनों प्रकार का उच्च कोटि का हास्य है। श्री रूपनारायण पाण्डेय जी के प्रहसनों की विशेषता यह है कि लेखक उपदेशक या सुधारक नहीं बना है। घटनाओं का विकास स्वयं होता चला गया है और कोई स्पष्ट उपदेशप्रद निष्कर्ष निकालने का प्रयास लेखक ने नहीं किया है। पाण्डेय जी उच्च कोटि के प्रहसन लेखक थे, इसमें सन्देह नहीं।

(१८)

श्री गंगाप्रसाद मिश्र, एम० ए०, आचार्य राजकीय कालेज, बस्ती

लगभग तीस वर्ष पहले की बात है—कहानी का क ख ग अभी आया ही था, एक दो कहानियाँ कान्यकुब्ज कालेज मैगजीन और कान्यकुब्ज मासिक पत्र में प्रकाशित हुई थीं। अपनी कहानियों को किसी अच्छी पत्रिका में प्रकाशित देखने की इच्छा हुई। स्वभावतः दृष्टि लखनऊ से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिकाओं सुधा और माधुरी की ओर गयी। अमीनाबाद में रहने के कारण सुधा का कार्यालय निकट ही था। एकाध कहानियाँ उसमें प्रकाशित भी हुईं परन्तु समय इतना लगा कि मन ऊब गया। माधुरी का कार्यालय नवलकिशोर प्रेस हजरतगंज में था। सन् १९३० के लगभग किशोरों अथवा नवयुवकों के लिए हजतरगंज उतना निकट नहीं था, जितना अब है। अपनी कहानी लेकर माधुरी कार्यालय गया और दे आया। कहानी स्वीकृत हुई है अथवा नहीं, यह जानने के लिए जब कार्यालय में पुनः गया तो यह ज्ञात हुआ कि कहानी पांडेय जी के पास है, मैं उन्हीं से उसके संबंध में जान लूं। याद नहीं पड़ता है कि उसके पहले माधुरी-सम्पादक पं० रूपनारायण पांडेय के दर्शन मैंने कभी किये थे।

पांडेय जी के कवि रूप से मेरा परिचय बहुत पहले हो चुका था। कविता पाठ के लिए पुरस्कार में पांडेय जी का कविता-संग्रह 'पराग' मिला था। उसकी

देश-सेवा और देश-भक्ति सम्बन्धी अनेक कविताएँ मैंने अमीनुद्दौला पार्क में होनेवाली कांग्रेस की मीटिंग में अपार जन समूह के बीच में पढ़ी थीं और तालियों की गड़-गड़ाहट से प्रशंसा पायी थी। उन कविताओं की एकाध पंक्ति अब भी मस्तिष्क में गूँजती रहती है:—

देश-सेवा

क्यों पूज्य हैं शिवाजी क्यों मेजिनी बड़ा है ?

लंदन में वृद्ध दादा किसके लिये लड़ा है ?

× × ×

मर जैयो भले हित देस के पर शत्रुओं पीठ दिखैयो नहीं।

पांडेय जी के सामने धड़कते हुए दिल से जाकर प्रणाम किया। यह बतलाने पर कि मैं अमुक कहानी का लेखक हूँ और उसी के संबंध में जानने को आया हूँ, पांडेय जी ने मुझसे बैठने को कहा। मेरी कहानी की प्रशंसा में जो शब्द उन्होंने कहे न तो वह मुझे अब ठीक से स्मरण ही हैं न उनके लिखने के लिए यह उपयुक्त स्थान ही है। फिर भी उन शब्दों का मेरे साहित्यिक जीवन में महत्व है। प्रेरणा के इसी प्रकार के कुछ शब्दों ने ही तो मन में वह लगन पैदा कर दी, जिससे विशेष आर्थिक लाभ हुए बिना भी कुछ न कुछ लिखता रहा हूँ। वह पांडेय जी का प्रथम परिचय था। वह कितने बड़े साहित्यिक थे, हिन्दी में उनका क्या स्थान था, इस सम्बन्ध में बिलकुल सही नक्शा चाहे उस समय मेरे दिमाग में न रहा हो, परन्तु मेरे लिए वह पूज्य थे। उस प्रथम परिचय में ही जिस प्रकार उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया उससे लिखने के लिए मेरा साहस बढ़ा वह तो अलग बात है मैंने उनको अपने बहुत निकट पाया, जिनसे अपनी बात निःसंकोच कही जा सकती है। वयोवृद्ध साहित्यिकों में यह चीज मुझे उसी मात्रा में प्रेमचंद जी में मिली थी। पांडेय जी बोलते स्वयं कम थे, दूसरों की बात खूब सुनते थे इसलिए उनके सामने अपनी कहने का साहस बढ़ता था। दरबारदारी करने का जीवन में अवसर कम मिला, स्वावलंबी विद्यार्थी था, परन्तु पांडेय जी की विशेषता यह थी कि जो उनके जितना भी सम्पर्क में आता था उसे वह उतना ही प्रोत्साहित करते थे।

लखनऊ के जितने भी नवयुवक साहित्यिक थे, उन्हें पांडेय जी ने बराबर प्रेरित तथा अनुप्राणित किया। डाक्टर रामविलास शर्मा, श्रीयुत अमृतलाल नागर कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह, डाक्टर रामरतन भटनागर 'हसरत', डाक्टर प्रेमनारायण टंडन और लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' की आरम्भिक रचनाएँ माधुरी में ही प्रकाशित हुई थीं और पांडेय जी से इन्होंने काफी प्रेरणा पायी है। साहित्य में नयी योजनाओं का पांडेय जी स्वागत करते थे और यथाशक्ति सहायता भी करते थे। रामरतन भटनागर हसरत के सम्पादन में पांडेयजी ने बहुत ही सुन्दर कहानी अंक माधुरी का निकाला था। पं० बलभद्र दीक्षित पढ़ीस के निधन के पश्चात डाक्टर रामविलास शर्मा के सहयोग से माधुरी का 'पढ़ीस अंक' जिस प्रकार का निकला था, वह आज भी स्मरण आता है। पांडेय जी का सबसे बड़ा गुण यह था कि वह अपने को सर्वज्ञ न समझते थे, इसलिए नयी से नयी धाराओं और प्रवृत्तियों को माधुरी में स्थान मिलता था। इन नवयुवक साहित्यिकों के सहयोग से प्रकाशित विशेषांकों की सफलता का एकमात्र कारण यह था कि पांडेय जी उस कार्य में बेमतलब टाँग कभी न अड़ाते थे जिसे वह यह जानते थे कि दूसरा उनसे अधिक जानता है।

लेखकों को पारिश्रमिक देने के संबंध में माधुरी की क्या नीति थी, पांडेय जी का इस सम्बन्ध में क्या मत था, इस विषय में मैं बिलकुल अन्धकार में हूँ। सम्भव है, दूसरे नवोदित लेखकों को माधुरी से पारिश्रमिक मिलता रहा हो; मैंने माधुरी से कभी कुछ नहीं पाया। आरम्भ में तो कहानी का प्रकाशित होना ही अपना सौभाग्य समझता था, बाद में एकाध बार साहस करके दबी जबान से उनसे कहा परन्तु इसका परिणाम कुछ निकला नहीं। कुछ काफी बड़े-बड़े आलोचनात्मक निबन्ध और अच्छी कहानियों पर भी जब माधुरी से कुछ न पा सका तो धीरे-धीरे माधुरी से मेरा सम्पर्क कम हो गया। कहानी अंक के सम्पादन से सम्बन्धित पारिश्रमिक को लेकर श्री रामरतन भटनागर पाण्डेय जी से बहुत असंतुष्ट हो गये थे। इस संबंध में दोषी पांडेय जी थे अथवा माधुरी के संचालक पारिश्रमिक के लिए धन ही कम देते थे, यह मेरे लिए आज भी रहस्य है।

पांडेय जी के द्वारा मुझे आर्थिक लाभ न हो सका परन्तु इसके कारण उनके प्रति मेरी श्रद्धा कभी कम न हुई। मेरे तोतले साहित्यिक को जो बल

उन्होंने प्रदान किया था उस पर कुबेर का कोष न्योछावर कर सकूं, इस विवेक की कभी कमी नहीं रही। सम्पादक के रूप में पाण्डेय जी ने जो कार्य किया, सैकड़ों कवियों लेखकों को प्रेरणा प्रदान की, वह स्तुत्य है। अनुवादक के रूप में पांडेय जी का कार्य हिंदी में अनुपम है। बँगला की अनगिनती पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद करके बंगला के साहित्य को जिस प्रकार पाण्डेय जी ने हिंदी भाषा-भाषियों के लिए सुलभ कर दिया, वह ऐसा उपकार है जिससे हिंदी के पाठक कभी उऋण नहीं हो सकते। यह तो ठीक ही है कि बँगला से इतने अधिक परिमाण में अनुवाद किसी एक व्यक्ति ने नहीं किये परन्तु बँगला-साहित्य की आत्मा का मूल रूप में दर्शन करवाने का जो उपकार पांडेय जी ने किया है वह अनुपम ही है।

कवि, अनुवादक, लेखक और संपादक के रूप में पांडेय जी ने परिमाण तथा गुण, दोनों ही दृष्टियों से जो काम किया है वह निश्चय ही महान है। आजकल पग पग पर थक जाने वाले, चार पंक्तियाँ लिखकर ही महाकवि और महान साहित्यकार बन जानेवाले नवयुवक यदि एकबार यही देखने का कष्ट करें कि पांडेय जी ने कितना कार्य किया है तो यह ज्ञात होगा कि उतना कार्य करने के लिए हममें से अनेक को कई जन्म धारण करने पड़ेंगे।

(१६)

श्री उमादत्त सारस्वत, बिसवां, सीतापुर

'माधुरी' में मेरी सर्वप्रथम जो कविता छपी थी, उसका शीर्षक था 'बाल-विधवा।' उस समय पंडित मातादीन जी शुक्ल 'माधुरी' के संपादक थे। संयोग-वश वही 'बाल-विधवा' शीर्षक कविता प्रयाग के साप्ताहिक 'भारत' में भी प्रकाशित हो गयी। शुक्ल जी को कदाचित् यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने मुझे लिखा कि "कृपया 'माधुरी' में प्रकाशनार्थ भेजी हुई रचनाओं को अन्यत्र न भेजा कीजिए।" उनके पत्र की भाषा कुछ ऐसी थी, जिसमें प्रकट होता था कि वे मुझसे रुष्ट हो गए हैं और वास्तव में वे मुझसे अप्रसन्न हो भी गये। फलतः 'माधुरी' के लिए जो कविताएँ मैं भेजता था, उनकी स्वीकृति तो आ जाती थी; परन्तु 'माधुरी' में उनको स्थान नहीं मिलता था। कई महीने इसी प्रकार व्यतीत हो

गये। सम्भवतः दो ही चार महीने बाद पंडित रूपनारायण जी पांडेय जब 'माधुरी' के संपादक नियुक्त हुए तो मैं बहुत प्रसन्न हुआ। केवल इसीलिए मुझे नहीं प्रसन्नता हुई कि 'माधुरी' के सम्पादक एक दूसरे सज्जन हो गये हैं; अतः अब मेरी रचनाएँ 'माधुरी' में प्रकाशित हुआ करेंगी; वरन् मेरी प्रसन्नता का वास्तविक कारण यह था कि मैं स्व० पाण्डेय जी के नाम से भली-भाँति परिचित था। उनकी बँगला से अनूदित कई पुस्तकें पढ़ चुका था। विद्यार्थी जीवन में ही 'अहो कुसुम कमनीय कहो क्यों फूले नहीं समाते हो'—उनकी कविता मुझे कंठाग्र हो गयी थी।

ऐसा कुछ स्वाभाविक नियम है कि जिसके नाम से जितना ही अधिक हम परिचित होते जाते हैं, उससे उतनी अधिक आत्मीयता बढ़ती जाती है, भले ही उसका कभी साक्षात्कार न हुआ हो। तभी तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रूप' से 'नाम' को अधिक महत्वपूर्ण कहा है। उन्होंने 'रूप' को 'नाम' के अधीन माना है:—

'देखिय रूप नाम आधीना।
रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना।
× × ×
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे।
आवत हृदय सनेह बिसेषे।'

सम्भवतः यही कारण था जिससे मैं पं० मातादीन जी शुक्ल की अपेक्षा स्व० पांडेय जी की ओर अधिक आकर्षित हुआ। उनके नाम से परिचित होने का ही यह प्रभाव था।

हाँ, तो मैंने आदरणीय पांडेय जी को एक पत्र लिखा और उसमें उनसे शिकायत की कि मेरी दो या तीन कविताएँ 'माधुरी' में प्रकाशित होने के लिए स्वीकृत हो चुकी हैं, परन्तु मालूम नहीं वे, पर्याप्त समय व्यतीत हो जाने पर भी, प्रकाशित क्यों नहीं हो रही हैं? क्या मैं आशा करूँ कि वे कविताएँ अब प्रकाशित हो जायँगी? तीसरे ही दिन श्रद्धेय पांडेय जी का स्नेहपूर्ण पत्र आ गया। उन्होंने लिखा:—

प्रिय सारस्वत जी,

आपकी रचना (छन्द) 'माधुरी' के इसी अंक में छप चुकी है। बेशक आपकी रचनाओं को कभी ही प्रकाशित हो जाना चाहिए था। विलम्ब के लिये क्षमा।'

जहाँ तक मुझे स्मरण है लाल रोशनाई से वह पत्र लिखा गया था। इसके बाद उनके कई पत्र आये। उनमें से अधिकांश यद्यपि 'स्वीकृति-पत्र' ही होते थे, तथापि उनके शब्दों में कुछ ऐसा आकर्षण होता था, जिससे मेरे मन में स्वतः उनके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी। उनके सम्पादन-काल में मेरी पचासों कविताएं 'माधुरी' में प्रकाशित हुई।

एक बार मैंने उन्हें लिखा कि आप मेरी कविताएँ ज्यों की त्यों छाप देते है, उनमें कुछ संशोधन तो कर दिया कीजिए। उसके उत्तर में उन्होंने लिखा कि "अनावश्यक रूप से किसी की रचना में हेर-फेर करना मुझे पसन्द नहीं है, हाँ, जहाँ आवश्यकता होगी, वहाँ मैं स्वयं इसका ध्यान रखूँगा।" उनके पत्रों के एक-एक शब्द से प्रेम झलकता हुआ मालूम होता था।

'वर्तमान कवि-सम्मेलन' शीर्षक मेरा एक व्यंग्यात्मक लेख 'माधुरी' के किसी अंक में प्रकाशित हुआ था। उस पर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। 'स्वीकृति-पत्र' में उन्होंने लिखा कि आजकल के कवि-सम्मेलनों का असली चित्र आपके लेख में दृष्टिगोचर होता है।

स्व० पाण्डेय जी से नवोदित कवियों एवं लेखकों को बड़ा ही प्रोत्साहन मिलता था। संभवतः घनाक्षरी-सवैया छन्द उन्हें अधिक प्रिय थे। 'माधुरी' में उनके समय में जितनी कवितायें प्रकाशित होती थीं, उनमें घनाक्षरी-सवैयों की संख्या भी काफी होती थी।

'माधुरी' का परिचयांक निकालकर श्री रूपनारायण पाण्डेय ने हिन्दी की जो सेवा की है, वह अत्यन्त श्लाघ्य है। उसके पहले भी हिन्दी-साहित्यकारों के कई परिचयात्मक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके थे। कलकत्ते के 'काव्यकलाधर' ने भी उसी समय एक बृहत् परिचयांक निकाला था, जो सचित्र भी था। परन्तु जहाँ तक सुन्दरता एवं प्रामाणिकता का प्रश्न है, उसमें 'माधुरी' का परिचयांक सर्वश्रेष्ठ था।

एक हिन्दी-सेवक होने के नाते मैं अनेक सम्पादकों के सम्पर्क में आया हूँ। ऐसे-ऐसे भी सम्पादक मिले हैं, जिन्होंने पत्रोत्तर देना भी अपनी शान के खिला़ समझा है। जब मैं नवयुवक था और 'छपास' के रोग से बुरी तरह से पीड़ि था, उस समय कुछ सम्पादकों का दुर्व्यवहार देखकर हृदय रो उठता था। प्रोत्साहन देने की कौन कहे, उल्टे हतोत्साह ही वे लोग करते थे। किन्तु हमारे पाण्डेय जी में गर्व छू तक नहीं गया था। वे नये लेखकों पर सदैव ही कृपा-दृष्टि रखते थे; उनको प्रोत्साहित करते थे तथा उनकी रचनाओं को 'माधुरी' में आदरपूर्वक स्थान देते थे। पत्रोत्तर तो वे अविलम्ब ही देते थे।

स्व० पाण्डेय जी की सादगी का क्या कहना है! मैंने एक बार लखनऊ में जब उन्हें देखा तो मुझे विश्वास ही नहीं हुआ कि वे माधुरी-सम्पादक पं० रूपनारायण जी पाण्डेय हैं। उनका व्यक्तित्व बहुत ऊँचा था। जो लोग उनसे मिलते थे, वे उनके भक्त हो जाते थे। नम्रता की तो वे साक्षात् मूर्ति ही थे। ऐसे निरभिमानी विद्वान वास्तव में बहुत कम देखने में आते हैं।

पाण्डेय जी ने 'माधुरी' के द्वारा हिन्दी की जैसी सेवा की है, वह सदैव ही स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी। सच तो यह है कि पाण्डेय जी ने ही उस समय 'माधुरी' के गिरते हुए स्तर को ऊँचा किया था। बहुत-से नये लेखकों तथा कवियों को वे प्रकाश में लाये। श्री भुशुंडि जी, श्री निशंक जी तथा मछरेहटा के श्री अखिलेश जी इत्यादि न मालूम कितने नये साहित्यकारों का परिचय पाण्डेय जी ने 'माधुरी' के माध्यम से ही हिन्दी-ससार को कराया।

मैंने भी जो कुछ थोड़ी-बहुत हिन्दी की सेवा की है, उसका श्रेय भी 'सनेही जी' के बाद स्व० पाण्डेय जी को ही है। मैं उनसे कभी उऋण नहीं हो सकता। उनके प्रति मेरे हृदय में जो अटूट श्रद्धा है, उस पर मुझे गर्व है।

श्री रूपनारायण जी पाण्डेय आज हमारे बीच में नहीं हैं। परन्तु उन्होंने जो मार्ग हिन्दी साहित्यकारों को दिखलाया है, उस पर चलकर हम आगे बढ़ सकते हैं। उनकी आत्मा हिन्दी-सेवकों को सदैव प्रकाश देती रहेगी, ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है। स्व० पाण्डेय जी उन साहित्यकारों में थे जो वितण्डावाद अथवा 'प्रोपैगैण्डा' से कोसों दूर रहते हैं। वे एकान्त साहित्य-सेवी थे। वे पदलोलुपता

के भूखे नहीं थे और न कभी वे उसके चक्कर में पड़े। किसी सम्मेलन के सभापतित्व के लिये जब कोई उनका नाम प्रस्तावित करता, तो वे घबरा उठते थे। उनके मुख पर एक बेचैनी-सी दृष्टिगोचर होने लगती थी। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का लोहा प्राय: सभी विद्वान मानते थे।

ऐसे धुरन्धर विद्वान की सेवाओं से हम उऋण तभी हो सकते हैं, जब हम 'माधुरी' के समान ही कोई ऐसी पत्रिका निकालें जो प्राचीन, मध्यकालीन तथा अर्वाचीन सभी प्रकार के साहित्य का प्रतिनिधित्व करती हो।

कहने को तो स्वयं लखनऊ मे ही आज भी कई मासिक पत्रिकायें निकल रही हैं; परन्तु उनमें वैसा साहित्य कहाँ देखने को मिलता है, जैसा स्व० पाण्डेय जी की 'माधुरी' में निकलता था। आज की पत्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क को पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है; केवल 'चाय-बिस्कुट' पर ही पाठकों को सन्तोष कर लेना पड़ता है।

अन्त में मैं स्व० पं० रूपनारायण जी पाण्डेय के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह हम लोगों को ऐसी बुद्धि तथा शक्ति दे, जिससे हम परमादरणीय स्व० पाण्डेय जी की उज्ज्वलतर कीर्ति को उज्ज्वलतम रूप प्रदान कर सकें।

(२०)

श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय, रामघाट मार्ग, उज्जैन

श्री पाण्डेय जी का नाम मैंने अपने विद्यार्थी-जीवन में सन् १९११-१२ में सुना था। उन दिनों "सरस्वती" ही हिन्दी की एकमात्र प्रथम श्रेणी की मासिक पत्रिका थी और हिन्दी में इने-गिने ही कवि तथा लेखक थे। उस समय पाण्डेय जी "कमलाकर" या इसी से मिलते-जुलते नाम से कविताएं लिखा करते थे। उनकी एक कविता श्री पं० लोचनप्रसाद जी पाण्डेय द्वारा संकलित "कविता-कुसुम-संग्रह" नामक पुस्तक में पहली बार पढ़ने में आयी थी और उसी ने मुझे उनके प्रति अत्यंत प्रभावित किया था। कदाचित उसका शीर्षक "बन विहंगम"

था ! वह पुस्तक अब अप्राप्य है और मेरे पास वाली प्रति किसी सज्जन ने पढ़ने के नाम-पर लेकर लौटाने की कृपा नहीं की; अस्तु ।

इसके बाद १९१८ में जब मैं "हिन्दी चित्रमय जगत" के संपादनार्थ पूना पहुँचा, तब मैंने हिन्दी के गण्यमान्य कवियों की सेवा में अपनी कृपा प्रसादी भेजने के लिए निवेदन किया; उस समय श्री पाण्डेय जी ने अत्यंत विनम्रता-पूर्वक लिखा था कि 'अब पद्य की अपेक्षा गद्य रचनाओं के प्रणयन में ही विशेष रूप से प्रवृत्त हूँ । विशेषकर 'बंगला' उपन्यास एवं श्री द्विजेन्द्र जी के नाटकों के अनुवाद कर रहा हूँ । ग्रंथरत्नाकर कार्यालय से उनका प्रकाशन हो रहा है । फिर भी यदि अवसर प्राप्त हुआ तो 'चित्रमय जगत' के लिए अवश्य कुछ भेजूंगा, क्योंकि 'सरस्वती' के बाद नियमित रूप से निकलने वाले पत्रों में जगत 'का ही दूसरा नम्बर आता है ।' किंतु दैवगति से 'जगत' उनकी कोई रचना प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त न कर सका ।

इसके पूर्व संभवतः पाण्डेय जी भारत धर्म महामण्डल (काशी) की 'निगमागम चन्द्रिका' का संपादन कर चुके थे । किंतु उनका यथार्थदर्शन तो लखनऊ की 'माधुरी' के संपादक के रूप में ही हुआ । यह कदाचित् १९२२ या २३ की बात है । उन दिनों बरेली के पं० राधेश्याम जी कथावाचक ने 'भ्रमर' नाम का छोटा-सा मासिक-पत्र प्रकाशित करना आरंभ किया था, और मुझे उसके संपादन का कार्य सौंपा गया था । 'माधुरी' के प्रथमाङ्क में प्रकाशित श्रद्धेय बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त की आह तेरी माधुरी; वाह तेरी माधुरी' वाली रचना को लेकर साहित्य क्षेत्र में बड़ी चुहलबाजी हुई थी । और उस रचना के संबंध में पाण्डेय जी को स्पष्टीकरण करते हुए बहुत ही परेशान होना पड़ा था । उसी समय 'भ्रमर' के होलिकाङ्क में प्रकाशित 'नशे की झोंक में'—शीर्षक विनोद पूर्ण लेख में 'भ्रमर' के साथ 'माधुरी' की मँगनी का प्रस्ताव भी एक मनचले लेखक ने कर डाला था । किंतु पाण्डेय जी को वह मजाक पसंद नहीं आया; अतएव उनसे क्षमा-याचना करनी पड़ी थी और तब कहीं जाकर वे शांत हो सके थे ।

इसके बाद १९२४ के दिसम्बर में कलकत्ते से लौटते हुए मैं [illegible] साहित्यिक सज्जनों के दर्शनार्थ लखनऊ ठहर कर प्रायः सभी साहित्यकारों के

घर पहुँचा था। उसी समय श्रद्धेय पाण्डेय जी के "खेतगली" वाले मकान में पहली बार प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे। वे अपनी छोटी-सी बैठक में तिपाई के सहारे कुछ लिख रहे थे। जैसे ही मैं पहुँचा और प्रणाम किया कि मेरा नाम सुनते ही तत्काल उठकर गले लगा लिया और गद्‌गद् हो गये। लगभग घंटा भर विविध विषयों पर चर्चा होती रही और उनका आतिथ्य स्वीकार कर विदा ली। उस समय मैंने अनुभव किया कि पाण्डेय जी के सीधे सादे और सौम्य स्वरूप में कितने महान् साहित्यिक तपस्वी की आत्मा छिपी हुई है। उनकी वह किंचित् तिरछी गरदन किये हुए मधुर-मुस्कान वाली मूर्ति आज ३५ वर्ष के बाद भी मेरे दृष्टिपथ में विद्यमान है।

तत्पश्चात् १९२५ में जब मैंने देहरादून से 'सुदर्शन' साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया; तब भी पाण्डेय जी की ओर से अत्यंत उत्साहवर्धक पत्र प्राप्त हुआ था और उन्होंने 'माधुरी' में उसकी बड़े ही अच्छे रूप में समालोचना प्रकाशित की थी। उसी वर्ष कानपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर दूसरी बार पाण्डेय जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। किंतु प्रथमतः भ्रमवश मैं श्री पं० जगदीश झा 'विमल' (बिहार) को ही रूप-सादृश्य के कारण पाण्डेय जी समझ कर बातें करने को अग्रसर हुआ कि उसी समय सामने से पाण्डेय जी आते दिखायी दिये। जब मैंने उनसे अपने भ्रम में पड़ जाने की बात कही; तो वे मुसकुरा दिये; और फिर तो ३ दिन तक उनके साथ बहुत ही आनन्दमय साहित्यिक चर्चा एवं प्रसंगों का लाभ मिलता रहा।

इसके बाद लगभग ८-९ वर्षों तक विशेष सम्पर्क न रहने पर भी 'माधुरी' में पाण्डेय जी के संपादन काल में तथा बाद भी मेरे कई लेख छपते रहे। किंतु एक बार मेरे ३ लेख 'माधुरी' के लिए स्वीकृत होकर भी कई महीनों तक जब प्रकाशित न हो सके; तब मैंने उपालंभ-युक्त एक पत्र 'वर्धा' (लिपिसुधार समिति कार्यालय) से लिखते हुए पाण्डेय जी से व्यंग्य किया कि 'आप हिन्दी की एक सर्वश्रेष्ठ पत्रिका के संपादक हैं, अतएव आप जैसे बहुत बड़े आदमी से मुझ जैसे नगण्य कलमसेवी को पत्र की आशा रखना ही क्यों चाहिए ? फिर भी अपनी स्वीकृत रचनाओं के विषय में स्मरण दिलाने की धृष्टता कर रहा हूँ। संभव है इस निवेदन की ओर आप का ध्यान आकर्षित हो जाय, और आप

उत्तर देने की कृपा करें।' इसका उत्तर वापसी डाक से देते हुए पाण्डेय जी ने लिखा कि 'आपने यह कल्पना ही कैसे कर ली कि मैं बहुत बड़ा सम्पादक बन जाने से आप जैसे आत्मीय स्वजनों के उत्तर नहीं दूंगा। मेरी अस्वस्थता के कारण ही पत्र का उत्तर देने में विलंब हुआ है और अगले मास से लगातार आपके तीनों लेख प्रकाशित हो जायेंगे। आप अपने उस हार्दिक स्नेह भाव में किञ्चित-मात्र भी अन्तर न पडने देकर पूर्ववत् ही मुझे अपना समझते रहें।'

इस प्रकार पाण्डेय जी का स्नेहभाजन रहते हुए मैंने अपने को परम सौभाग्यशाली समझा है। मेरे हृदय में उनकी वह सौजन्यभरी मूर्ति आजीवन विराजमान रहेगी। मैं इस अवसर पर अत्यंत स्नेहसिक्त श्रद्धाभक्ति के पुष्प उनकी स्मृति में अर्पण करता हुआ, परमात्मा से प्रार्थी हूँ कि वह उन साहित्यिक-तपस्वी की अमर आत्मा को अक्षय शांति प्रदान करे और हमारे साहित्य-प्रेमी बन्धुओं के हृदय में उनकी साधना से उचित प्रेरणा प्राप्त होती रहे। साथ ही उनकी समस्त रचनाओं के परिचय एवं संकलन-सहित (उनकी) एक प्रामाणिक जीवनी प्रकाशित करने का भी प्रयत्न किया जाय।

कविरत्न श्री पं० रूपनारायण जी पाण्डेय की निम्नलिखित रचनाएँ अवलोकन करने का मुझे सौभाग्य हुआ है। वैसे उनके द्वारा अनुवादित रचनाओं की संख्या तो ५०-६० से अधिक हो सकती है—

(१) श्री शुकोक्ति सुधा सागर (श्रीमद्भागवत् का सरल अनुवाद)

(२) महाभारत के कुछ खंड (सरल हिन्दी अनुवाद)

(३) आँख की किरकिरी (श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'चोखेर वाली' का अनुवाद

(४) मेवाड़ पतन }
(५) शाहजहाँ } श्री द्विजेन्द्र लालराय के नाटकों के अनुवाद

(६) उस पार

(७) क्षत्रपति शिवाजी (श्री मनोमोहक गोस्वामी के नाटक का अनुवाद

(८) श्री शरदचन्द्र चट्टोपाध्याय के कुछ उपन्यासों के अनुवाद

पाण्डेय जी की लेखन शैली अत्यंत सरल, स्पष्ट एवं लिखावट बहुत सुन्दर

थी। इतनी पुस्तकें लिख डालने वाला व्यक्ति ऐसे सुन्दर अक्षरों में कैसे लिखता होगा ! उनका वह आदर्श हम जैसों के लिए अनुकरणीय हो सकता है।

(२१)

पं० अखिलेश त्रिवेदी, मछरेहटा, सीतापुर

हिंदी जगत् के जिन महामहिम मनीषियों ने अपनी पीयूषपूर्ण लेखनी द्वारा सत्साहित्य का सर्जन किया है; उनमें सम्पादकाचार्य कविरत्न पं० रूपनारायण जी पांडेय 'कमलाकर' का शुभ नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्रीपांडेय जी का शुभ जन्म आश्विन शुक्ल द्वादशी संवत् १९४१ वि० को रानीकटरा, लखनऊ में पं० रामचरण जी के घर हुआ था। आप गंगासो के पांडेय और मूल निवासी गंगासो के ही थे; किंतु रानीकटरे में स्थायी रूप से अपना निवास-स्थान बना लिया था। रानीकटरा मुहल्ले से लगी हुई एक पतली गली खेतगली में दक्खिन रुख को छोटा सा दुमंजिला घर बना है जिसके बाहर सीमेंट से रूपनारायण पांडेय लिखा हुआ है। इसी मकान की अपनी बैठक में जीवन के अन्तिम क्षण तक इन्होंने हिन्दी माता की अनवरत आराधना की थी।

आज से पचास वर्ष पूर्व जिस समय श्री पांडेय जी ने हिंदी संसार में पदार्पण किया था, उस समय खड़ीबोली अपनी जड़ जमा रही थी। भारतमित्र, भारतजीवन, हिन्दी बंगवासी, श्रीवेंकटेश्वर समाचार और बिहारबन्धु आदि कुछ समाचार पत्रों का ही बोलबाला था। कालाकांकर का दैनिक 'हिन्दुस्तान' भी बन्द हो चुका था। मासिक पत्रों में एक मात्र 'सरस्वती' की अच्छी ख्याति थी। बाबू देवकीनंदन खत्री और गोस्वामी किशोरीलाल जी के उपन्यासों के अतिरिक्त उपन्यास-क्षेत्र में भी कुछ नहीं था।

श्री पं० रूपनारायण जी पांडेय की प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत में हो रही थी और ये १३ वर्ष के भी न हो पाये थे कि सहसा इनके कोमल कन्धों पर गृहस्थी का भार आ पड़ा। साहित्य के प्रति इनके हृदय में अनुराग उत्पन्न हो चुका था। अतः इन्होंने अपनी प्रतिभा तथा ईश्वर का अवलम्ब ले संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद करना निश्चय किया। शुकोक्तिसुधा-सागर नाम से श्रीमद्भागवत का हिन्दी अनुवाद

इन्होंने अपनी १७ वर्ष की आयु में किया था। उन्हीं दिनों इनका परिचय कैसरबाग निवासी बाबू कालीप्रसन्न सब-जज से हुआ था और उनकी प्रेरणा से इन्होंने 'कृत्तिवास' रामायण के बाल तथा लंकाकाण्ड का पद्यानुवाद किया था जो प्रकाशित भी हुआ था। बँगला का अभ्यास कर इन्होंने सब-जज महोदय के पुस्तकालय की समस्त बँगला पुस्तकों को भी पढ़ डाला था। बंकिम बाबू के हास्य से ये बहुत प्रभावित हुए थे और 'चौबे का चिट्ठा" शीर्षक देकर इन्होंने उनके लेखों का अनुवाद किया था। तत्पश्चात् 'आँख की किरकिरी' नाम से इन्होंने महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'चोखेरवाली' का बहुत उत्तम अनुवाद किया था।

श्री पाण्डेय जी ने लगभग ८१-८२ पुस्तकें प्रणीत की थीं; जिनमें से द्विजेंद्रलाल राय, बंकिमचंद, शरत् बाबू, रवींद्रनाथ ठाकुर के नाटक, उपन्यास आदि के अनुवाद प्रमुख हैं। संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद भी आपने अधिक किया था। महामना मालवीय जी ने आपके श्रीमद्‌भागवत के अनुवाद की अधिक प्रशंसा की थी। इंडियन प्रेस से प्रकाशित महाभारत के १२ पर्वों का अनुवाद भी आपने ही किया था।

श्री पांडेय जी हिन्दी संसार के सम्मुख लेखक, कवि, संपादक, नाटककार तथा अनुवादक के रूप में आते हैं। 'पराग' में ये पुरानी और नवीन परिपाटी पर चलनेवाले सुकवि हैं। 'पद्मिनी' तथा 'पृथ्वीराज' में ये सफल नाटककार के रूप में प्रकट हुए हैं। इंदु माधुरी और सुधा का संपादन कर आपने सम्पादन कला का आदर्श प्रस्तुत किया था।

श्री पांडेय जी ने सर्वप्रथम १६ वर्ष की अवस्था में लखनऊ से 'नागरी प्रचारक' नामक पत्र का संपादन किया था। इसे नागरी प्रचार के उद्देश्य से बाबू गोपाललाल ने निकाला था, परंतु शोक है, उसकी एक भी कापी किसी पुस्तकालय में दृष्टिगोचर नहीं होती। तदुपरान्त कृष्ण एवं निगमागम चंद्रिका का भी संपादन किया था, किंतु इंदु और माधुरी के संपादक के रूप में इनका नाम साहित्य के इतिहास में अवश्य अमर रहेगा। श्री पांडेय जी ने माधुरी द्वारा अनेक लेखक उत्पन्न किये। हिन्दी पत्रिकाओं में एकमात्र माधुरी ही ऐसी पत्रिका थी, जिसमें उदीयमान लेखकों को स्थान मिलता था। बीच में ७ वर्ष छोड़कर माधुरी के जन्म काल से अन्त काल तक इनका उससे अटूट सम्बन्ध रहा था।

सफल सम्पादक तथा अनुवादक होने के अतिरिक्त पाण्डेय जी एक सरस और रसज्ञ कवि भी थे। आपकी पहली कविता सन् १९१३-१४ ई. की सरस्वती में छपी थी, जिससे प्रभावित होकर आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इन्हें प्रतिमास कविता भेजते रहने के लिए लिखा था। एक बार इनकी 'तपोबल' कविता सरस्वती में मुद्रणार्थ गई थी। श्री द्विवेदी जी ने उसमें कुछ परिवर्तन कर दिया था; तब से श्री पांडेय जी ने उसमें लिखना बंद कर दिया था। ऐसा मुझसे उन्होंने एक बार रात्रि की बैठक में बताया था। हिंदी संसार में सर्वश्री महाकवि पंडित नाथूराम शर्मा शंकर, पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय हरिऔध तथा पं० रूपनारायण जी पांडेय—ये ही तीन महानुभाव ऐसे हैं, जिन्होंने द्विवेदी जी के प्रभाव से पृथक रहकर अपनी सरस्वती की अविरल धारा प्रवाहित की। 'पराग' नामक इनकी कविताओं का एक सुन्दर संग्रह प्रकाशित हुआ है, पर उसमें इनकी सब रचनाओं का समावेश नहीं हो सका। अगणित रचनाएँ समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं, जिनकी प्रतिलिपि भी इनके पास नहीं थी। इधर आपने सौ, सवासौ नवीन रचनाएँ भी की थीं। इन्होंने नायिका भेद का एक ग्रन्थ 'रसज्ञरंजन' भी लिखा था; परंतु इन्होंने उसे प्रकाशित नहीं कराया। इस ग्रंथ को श्री पांडेय जी ने मुझे दिखाया था।

श्री पांडेय जी से मेरी भेंट सर्वप्रथम अक्तूबर १९२८ ई० में इनके मकान रामनिवास पर रानीकटरा में हुई थी। मैं साहित्य महारथी माननीय श्री पं० कृष्ण बिहारी जी मिश्र, गन्धौली का परिचय-पत्र लेकर गया था। श्री पांडेय जी के प्रथम दर्शन में ही मुझे वर्षों की आत्मीयता जान पड़ी। आप अत्यन्त सरल, विनम्र किंतु स्वाभिमानी और शान्तिप्रिय सज्जन थे। आडम्बर आपको छू तक नहीं गया था। इस सादे आवरण के भीतर इतना गम्भीर ज्ञान भरा है, इतनी उद्भट विद्वत्ता निहित है, इतना अध्ययन एकत्र है कि जल्दी-जल्दी इस बात का अनुभव करना कठिन हो जाता था कि उनका और हमारा दस वर्षों तक गुरु शिष्य जैसा संबंध रहा। वे मुझे माधुरी में रचनाएँ भेजने के लिए बराबर प्रेरणा देते रहते थे। इस संबंध में उनके एक पत्र की प्रतिलिपि नीचे दी जाती है जो उन्होंने समालोचक प्रवर श्री पं० कृष्णबिहारी मिश्र के नाम लिखा था—

सं० २८२३ लखनऊ

१२-१०-१९४०

प्रिय मिश्र जी प्रणाम !

अखिलेश जी की कविता मिली। दिसम्बर में छपेगी। दुर्भाग्यवश कल मैं आफिस न आया था। इस कारण अखिलेश जी से भेंट न हुई। फिर कभी देखा जायगा। कविता वह बराबर भेजते रहें, मैं छापूंगा। आपकी कोई रचना नहीं मिली। दीपमालिका पर कुछ लिखिए न। विशेष कृपा।

भवदीय

रूपनारायण पांडेय

श्री पांडेय जी ने मुझे गद्य - रचना के लिए भी प्रोत्साहित करके मेरी भाषा का परिष्कार किया था। इसका प्रमाण उनके प्रेषित एक दर्जन से अधिक पत्रों का संग्रह है जो मेरे पास सुरक्षित हैं। वे मुझे कितना चाहते थे, इसका प्रमाण उनका नीचे लिखा हुआ पत्र है—

लखनऊ

२७-१२-१९४९

प्रियवर अखिलेश जी, आशीर्वाद।

आज अनूप जी और कृष्णबिहारी जी के यहां के एक साहबजादे आये थे, अवधी सम्मेलन के सभापतित्व के लिए। स्वीकार तो मैंने कर लिया है, पर भाषण के लिए कुछ सामग्री आपको जुटानी होगी। आप पहले के अधिवेशनों के अवधी पर भाषण (अगर छपे हों—न छपे हों तो उनकी मूल कापी) मेरे पास भेजवा दीजिए। अथवा कुछ अवधी के कवियों और उनके ग्रंथों का परिचय ही भेजिए। उसी आधार पर मैं अपना भाषण तैयार कर लूंगा। जैसा भी हो, उत्तर शीघ्र रानीकटरा के पते पर दीजिएगा। मैं राह देखूंगा।

आपका

रूपनारायण पांडेय

मैंने पूज्य पांडेय जी का पत्र पाते ही अवधी वाङ्मय सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री उनकी सेवा में भेज दी थी; जिसे पाकर उन्होंने निम्नांकित पत्र मुझे लिखा था—

लखनऊ
५-१-१९५०

प्रिय अखिलेश जी, आशीर्वाद !

आपकी भेजी हुई सामग्री यथा समय मिल गई। कृपा के लिए धन्यवाद। मैं इसका उपयोग करूँगा। सीतापुर में तो आपके दर्शन अवश्य ही होंगे। आपके छन्द छपने को दे दिये हैं। मधुवन पर टिप्पणी भी लिखूँगा।

आपका
रूपनारायण पांडेय

श्री पांडेय जी बड़े ही मिलनसार, मिष्टभाषी, निरभिमान, सहृदय सज्जन थे। सन्तोष और धैर्य उनकी अमूल्य निधि थे। आत्मश्लाघा और आत्म प्रदर्शन से ये कोसों दूर भागने थे। ये मूकभाव से साहित्य-सेवा में ही अपने जीवन की सार्थकता मानते थे। इन्हें सच्चे अर्थों में साहित्यिक तपस्वी कहा जा सकता था।

श्री पांडेय जी प्रवासभीरु भी बड़े ही थे, लखनऊ छोड़कर कहीं आना-जाना इन्हें पसन्द नहीं था, बड़ी कठिनता से दो-चार बार साहित्य-समारोहों में सम्मिलित होने बाहर गये होंगे। लखनऊ आनेवाले अनेक साहित्य-सेवी सज्जन इनके दर्शनार्थ पहुँचते थे।

ये महानुभाव सबसे प्रेमपूर्वक मिलते भी थे। इनमें भाषा संशोधन की अपूर्व योग्यता थी। इनकी शुद्ध की गई कापी देखने से पता चल सकता है कि भाषा में थोड़ा हेर-फेर कर देने से वह कितनी सजीव हो जाती है।

श्री पांडेय जी संस्कृत श्लोकों का उच्चारण भी मधुर स्वर से करते थे, जिसको सुनकर अन्य भाषा-भाषी भी मंत्रमुग्ध हो जाते थे। इनके अनेक शिष्य हैं। इन्होंने अनेक सम्मेलनों का सभापतित्व भी किया था तथा मानपत्रादि भी प्राप्त किये थे। शोक है कि काल ने विगत वर्ष १२ जून १९५८ ई० को उनका अन्त कर दिया। आज उन्हें दिवंगत हुए एक वर्ष हो गया है। अतएव उनकी प्रथम वर्षी पर हम यह श्रद्धांजलि उनकी सेवा में समर्पित करते हैं।

बड़े गौर से सुन रहा था जमाना।
तुम्हीं सो गये दास्ताँ कहते-कहते॥

(२२)

डा० लक्ष्मीनारायण टंडन 'प्रेमी', एम० ए०, एन० डी०, राजाबाजार, लखनऊ

जो लोग मिलनसार प्रकृति के होते हैं तथा साथ ही व्यवहार-कुशल भी, वे अच्छे सम्पर्क तथा सम्बन्ध बनाए रखने के लिए आपस में यदा-कदा मिलते रहते हैं—विशेषकर उन महापुरुषों से जिनसे भाग्यवश उनका परिचय हो जाता है। मुझमें इस गुण का अभाव है। अत्यन्त संकोची प्रकृति का होने के कारण मैं बिना अति आवश्यकता के किसी के यहाँ नहीं जाता, विशेषकर किसी महापुरुष के यहाँ। अल्पभाषी होने के अपने अवगुण से मैं परिचित हूँ। जब किसी के यहाँ मुझे जाना पड़ता है तो मुझे यही चिंता व्याकुल किए रहती है कि आखिर मैं दो-चार शिष्टाचार के प्रश्नों के अतिरिक्त और बोलूँगा क्या, वार्त्तालाप क्या करूँगा? इसीसे लखनऊ का निवासी होते हुए भी मैं श्रद्धेय पं० रूपनारायण पाण्डेय जीसे बहुत कम मिल सका।

डा० ओमप्रकाश मित्तल, रीडर ऐण्ड हेड, डिपार्टमेंट आफ टी० बी०, कानपुर मेडिकल कालेज की पुस्तक 'क्षय रोग : कारण और निवारण' का मैंने हिंदी में अनुवाद किया और उसे छपा रहा था। पुस्तक के सम्बन्ध में श्रद्धेय पाण्डेय जी की सम्मति लेने के सम्बन्ध में मुझे उनके निवास-स्थान पर १६ जून १९५७ को जाना पड़ा। पहुँचने पर एक लड़का मुझे बैठके में दिखा। मैंने उससे कहा कि मैं पाण्डेय जी से मिलने आया हूँ। लड़का घर के भीतर चला गया और जरा देर बाद आकर बोला 'वह पूजा पर हैं। आपको बैठके में बैठने को कहा है।' मैं बैठ गया और सोचने लगा यह कैसा महापुरुष है जिसने मेरा नाम तक न पुछवाया और प्रतीक्षा करने को कह दिया? इससे उनकी इस प्रकृति का आभास होता है कि जो भी छोट-बड़ा उनसे मिलने आता होगा, वह किसी को भी निराश न करते होंगे।

लगभग पन्द्रह मिनट बाद पाण्डेय जी आधी धोती पहने तथा आधी धोती ओढ़े आए और आरामकुर्सी पर बैठते हुए बोले 'अरे भाई! तुम हो। लड़के से नाम क्यों नहीं बतला दिया। कहो अब कैसे हो? बहुत दिनों के बाद तुम्हें देखा। पर तुम्हारे बारे में यदा-कदा पूछ लिया करता था लोगों से।' मैं

आश्चर्य कर रहा था उनकी स्मरण-शक्ति तथा पहचानने और न भूलने की क्षमता पर। उनके घर पर उनसे मैं केवल एक बार और मिला था और वह भी १९४१ में अर्थात् १६-१७ वर्ष पूर्व। मैं सन् ४२ में भयंकर रोग में शैया-शायी हो गया और उसके बाद मेरी-उनकी मुलाकात नहीं हो सकी थी। १६ वर्ष में चेहरे-मोहरे में कितना अंतर हो जाता है और वह भी एक लम्बी बीमारी पाए एक अस्वस्थ मनुष्य में। किन्तु तो भी प्रथम दृष्टि में उन्होंने मुझे पहचान लिया और कितनी अच्छी तरह से, जब कि व्यक्तिगत मुलाकातें केवल २-३ से अधिक न हुई होंगी। हाँ, मेरे कई लेख तथा कवितादि अवश्य वह मेरे रोग-काल में अपनी माधुरी में छापते रहे थे। मुझे एक लेखक के रूप में वह अवश्य जानते थे तथा यह भी कि रोग के पूर्व मैं स्थानीय कालीचरण इंटर कालेज में एक अध्यापक था।

मेरा विचार है कि वह अवश्य ७० से ऊपर रहे होंगे। वृद्धावस्था कुछ तो अपनी छाप उन पर डाल ही चुकी थी किन्तु इस आयु में भी अपने देव-तुल्य शरीर और आयु के लिहाज से उत्तम स्वास्थ्य को देखते हुए श्रद्धा से स्वयं मस्तक नत हो जाता है देखनेवाला का। मैं सोच रहा था कि इस भारी-भरकम शरीर में शिशु-सा कोमल तथा स्नेह-पूर्ण हृदय है। माथे पर चंदन की बिंदी, पैरों में खड़ाऊँ और धोती में उनका कलेवर बहुत आकर्षक लग रहा था। इन सब बातों को लिखने में तो कुछ समय लग रहा है किन्तु ये सब विचार एक क्षण में बिजली की भाँति मेरे मस्तिष्क में कौंधे थे। प्रणाम तथा साधारण शिष्टाचार की बातों के बाद उन्होंने कहा, 'कहो कैसे कष्ट किया? बिना विशेष आवश्यकता के तो तुम्हारा स्वास्थ्य तुम्हें कहीं आने-जाने न देता होगा।' यह कहकर हँसे। उनके गंभीर चेहरे पर वह स्मित हास्य एक देखने की वस्तु थी। मेरे कहने पर कि 'इसी पुस्तक के लिए आपकी सम्मति लेने आया हूँ', उन्होंने अपनी सम्मति मुझे दी और कहा 'देख लो भाई! कुछ और घटाना-बढ़ाना हो तो बता दो।' मैंने सधन्यवाद उनका पर्चा जेब में रख लिया।

इसके बाद इधर-उधर की बातें होती रहीं लगभग आध घंटे। पूछा, 'कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई? प्रकाशकों से पैसा मिल जाता है?' आदि और

फिर अपनी बातें बताते रहे । कितना सरलचित्त, निष्कपट पुरुष है यह । मैं सोचता जाता था और उनकी बातें सुनता जाता था । पुस्तक का नाम तथा प्रकाशक का नाम तो मुझे याद नहीं रहा, पर वह अपने किसी संस्कृत के ग्रंथ के अनुवाद के सम्बन्ध में कह रहे थे कि'..................सज्जन ने मुझसे............ बृहद ग्रंथ का अनुवाद कर देने को कहा । घर-गृहस्थी, अस्वास्थ्य तथा समयाभाव के कारण मैं अनुवाद का काम कुछ दिनों के पश्चात् प्रारम्भ कर सका । उस बीच उनके कई तकाजे आए । जब मैं कुछ अंश अनुवाद कर चुका तो मैंने उन्हें सूचना दी । एक लम्बी चुप्पी के बाद मेरे दूसरा पत्र लिखने पर उन्होंने उत्तर दिया कि आपने ठीक से उत्तर नहीं दिया था अत: मैंने एक अन्य सज्जन से उक्त संस्कृत ग्रंथ का अनुवाद करने को कह दिया था । अब यदि उन्होंने भी प्रारंभ कर दिया होगा तो बड़ी कठिनाई पड़ेगी । संभव है वह 'अनुवादक' रूप में अपना ही नाम रखना चाहें या अपना और आपका दोनों का । पर जो भी हो आप अनुवाद पूरा कर जाइए ।' मुझे एक विश्वस्त सूत्र से पता चला कि जिस सज्जन का प्रकाशक जी ने जिक्र किया था वह प्रकाशक के निकट सम्बन्धी भी हैं तथा वह उन्हें किसी कारण-वश लाभ पहुंचाना चाहते हैं ।

मैंने क्षोभपूर्वक कहा 'आप ऐसे वयोवृद्ध साहित्यिक महारथी के साथ ऐसा व्यवहार करने में उन्हें संकोच नहीं हुआ ?'

उन्होंने हंसते हुए कहा 'यह हिंदी-संसार की बातें हैं । यहाँ सब संभव है । हाँ तो मैंने प्रकाशक जी को लिख दिया कि मेरी मौलिक तथा अनुवादित पुस्तकें लगभग १०० के निकट होंगी—अत: मेरा नाम छपे या न छपे, उसकी विशेष लालसा मुझे नहीं है । पर मेरा पारिश्रमिक मुझे ठीक मिलना चाहिए । उसका उन्होंने ऐसा गोल जवाब दिया कि मैं उस पत्र का सिर-पैर कुछ नहीं समझ पाया ।

मैंने कहा 'जब आप के से भारत-प्रसिद्ध साहित्यिक के साथ प्रकाशक यह कर सकते हैं तो हम छुट-भइयों की तो बात ही करना व्यर्थ है । मेरा विश्वास है कि बँगला के ग्रंथों के प्रथम अनुवादक संभवतः आप ही रहे हैं ।'

उन्होंने कहा 'बँगला उपन्यासों के आज तो अनेक अनुवाद हैं । किन्तु इस दिशा में पहला कदम मेरा ही था, मेरे अनुवादों तथा अन्य अनुवादों में भेद

एक बँगला भाषा जाननेवाला ही ठीक से समझ सकता है। बँगला तथा संस्कृत ग्रंथों का ही अनुवाद मैंने अधिकतर किया है।'

मैं सोच रहा था कि मेरे सामने हिंदी-साहित्य के इतिहास का एक जीता-जागता सशरीर अंश है जो एक कवि, आलोचक, प्रसिद्ध संपादक, उच्च श्रेणी का लेखक तथा अमर अनुवादक है। जब वह वर्तमान हिंदी-साहित्य की प्रगति तथा हिंदी-प्रकाशकों से असंतुष्ट है तो इससे अधिक पीड़ा की बात क्या हो सकती है?

मैंने पूछा 'आजकल जो चतुर्दिश हिंदी की प्रगति हो रही है उसके सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?'

थोड़ी देर वह चुप रह कुछ सोचते रहे फिर गंभीरतापूर्वक बोले—'क्या उत्तर दूं तुम्हें इसका, समझ में नहीं आता। प्रगति अवश्य ही हो रही है पर उससे मेरी आत्मा को संतोष नहीं है। जैसी बढ़िया आजकल लेखकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की आ गई है, उससे निराशा ही होती है। यह सत्य है कि आज के अनेक अधकचड़े लेखक और कवि कल कहीं दिखाई भी न देंगे पर तो भी जो कूड़ा-करकट का ढेर वह लगाए जा रहे हैं, उस एकत्रित ढेर को हटाने में कुछ शक्ति और समय का अपव्यय तो होगा ही। आज हमें ठोस चीजें कम मिल रही हैं—ऐसा नहीं है कि मिल नहीं रही हैं—पर उनकी तुलना में व्यर्थ की चीजें ही अधिक मारी-मारी फिरती दिखाई देती हैं। कभी-कभी तो देखने में ऐसी पुस्तक आ जाती है कि आश्चर्य में पड़कर सोचना पड़ता है कि यह आज का ही युग है कि लेखक को साहस पड़ सका ऐसी पुस्तक छपवाने का। पर एक बात है कि ऐसों को भी प्रकाशक मिल जाते हैं। यह सब सोचकर दुख इसलिए होता है क्योंकि हिंदी राष्ट्र-भाषा है अब।'

फिर कुछ चुप रहकर बोले 'हम लोग तो अब डाली के पके आम हैं—न जाने कब टपक पड़ें। अब तो तुम्हीं सब नवयुवकों को करना है। बातचीत में बहुत समय तुम्हारा चला गया, जल्दी में तो नहीं थे।'

मैंने विनम्रभाव से कहा 'आपसे कुछ मिनट बातचीत करने का अवसर

मिला, यह मेरा सौभाग्य था। मैंने आपका बहुमूल्य समय लिया इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।'

पाण्डेय जी ने कहा 'बहुत खुशी हुई तुमसे इतने दिनों के बाद मिलकर और स्वस्थ देखकर। कभी इस ओर आया करो तो मिल लिया करो।'

मैंने नमस्कार करते हुए कहा 'अवश्य ही मैं आज्ञा का पालन करूँगा।'

मैं उस समय नहीं जानता था कि यह मेरी उनसे अंतिम भेंट है तथा मैं उनके यह अंतिम दर्शन कर रहा हूँ, क्योंकि कुछ समय बाद अखबार में उनके स्वर्गवास का समाचार छपा।

(२३)

डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, एम. ए , पी-एच डी., डी. लिट्. विश्वविद्यालय, लखनऊ

पं० रूपनारायण पांडेय से कवि के रूप में मेरा परिचय उस समय हुआ जब मैं अंग्रेजी स्कूल की आठवीं कक्षा में पढ़ता था। उनकी रचना 'आह अचल आँधी आ गई तू कहाँ से। विपत्ति घन घटा सी छा गई तू कहाँ से' ने सहसा अपनी ओर मुझे आकर्षित कर लिया। इतनी सरल भाषा में इतने सुन्दर भावों की सरलतम अभिव्यंजना ने मुझ पर जादू का काम किया। मैं बाल्यावस्था से ही कवि पाण्डेय जी का भक्त हो गया। प्रत्येक बार जब नवीन कक्षा की नवीन हिंदी पुस्तकों को देखता तो सबसे पहले पं० रूपनारायण पाण्डेय की रचना खोजता; परन्तु हर बार निराश हो जाना पड़ता। आज जब संस्मरण लिखने का दायित्व ग्रहण किया तो सब पुरानी स्मृतियाँ सजीव हो उठीं। सोचता हूँ कि अन्य कवियों, महाकवियों और लेखकों की तुलना में पांडेय जी ने इतना क्यों प्रभावित किया तो एक ही कारण समझ में आता है और वह है उनकी शैली की सरलता, सहजता और कृत्रिमता से विहीन होना। पांडेय जी की शैली की यह विशेषता उनके व्यक्तित्व का भी प्रधान गुण था। अँग्रेजी की कहावत 'स्टायल इज दि मैन' पाण्डेय जी के ऊपर अक्षरश: चारितार्थ होती है। बाल्यावस्था से ही मैं सरलता और सहजता का समर्थक रहा हूं। गंभीरता का वाह्याडम्बर और गाउन पहनकर दूसरों को बलात प्रभावित करने का निष्फल प्रयत्न करनेवालों के प्रति मुझे जन्मजात

घबराहट का अनुभव होता रहा है। इसी प्रवृत्ति के कारण पांडेय जी से दूर रहने पर भी मैं सदैव अपने को उनके निकट पाता और जानता रहा।

स्वर्गीय पांडेय जी से मेरी किंचित घनिष्ठता सन् १९४३ ई० से हुई। इस समय मैं हिंदी में बी. ए. आनर्स परीक्षा उत्तीर्ण करके एम. ए. द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी के रूप में 'हास्य के सिद्धांत तथा हिंदी साहित्य में हास्य रस' पर शोध प्रबंध प्रस्तुत कर रहा था। अपने प्रबंध के संबंध में उनसे कई बार मिला। उनकी सहायता के लिए कृतज्ञता प्रकट करने के लिए इससे उपयुक्त और कौन अवसर आएगा? जितनी बार उनसे भेंट की उनकी सज्जनता, सरलता और उदारता से अभिभूत हो गया। इस समय तक अनेक प्रकार के विद्वानों के सम्पर्क में आ चुका था। इनमें से कुछ विद्वत्ता के अहंकार से चूर विश्वविद्यालय के प्राध्यापक थे, कुछ "हम चुनी दीगरे नेस्त' की भावना से व्यथित कवि थे, कुछ महत्वाकांक्षा के ज्वर से पीड़ित लेखक थे और कुछ व्यर्थ ही कीचड़ उछालने वाले सम्पादक थे। पर पांडेय जी से मिलने पर हर बार आनन्द की भावना से ओतप्रोत हो जाता। बड़े स्नेह से बैठाल कर, ध्यान के साथ बात को सुनना और फिर अपने मौलिक सुझाव देकर वे हर बार आत्मीयता का परिचय देते रहते। कभी-कभी आश्चर्य चकित रह जाता कि इतना बड़ा संपादक, इतना सफल कवि, इतना कुशल अनुवादक और कथाकार इतना विनम्र कैसे है? सन् १९४३ के अक्तूबर का तीसरा सप्ताह था। मैं अपने शोध प्रबंध का एक परिच्छेद 'हास्य का वैज्ञानिक अध्ययन' पांडेय जी को सुनाने के लिए नवलकिशोर बिल्डिंग्ज, हजरतगंज में जा पहुँचा। पांडेयजी कार्य में व्यस्त थे। मस्तक पर चश्मा रखकर बात करने लगे। उस समय स्मरण आए विश्वविद्यालय के वे विद्वान जो एकाग्रता और तारतम्यता नष्ट होने के भय से आगन्तुकों और दर्शनाभिलाषियों को घण्टों प्रतीक्षा कराते रहने में ही गौरवान्वित और भाग्यशाली समझते हैं। अस्तु मैंने अपना प्रयोजन निवेदित किया। सहर्ष मेरा निबंध सुनने के लिए उद्यत हो गये और मैं निबंध सुनाने लगा। सुनाने के पश्चात् सराहना करते हुए उन्होंने उसे 'माधुरी' में प्रकाशित करने के लिए ले लिया। कालांतर में वह निबन्ध 'माधुरी' में प्रकाशित हुआ और साथ ही मुझे १२) का पारिश्रमिक भी मिला। यह संभवतः मेरे जीवन का प्रथम अवसर था जब मुझे कहीं से पारिश्रमिक मिला था। मुझे आश्चर्य हुआ सम्पादक पाण्डेय की, नवीन

लेखकों को प्रोत्साहित करने की नीति पर। कारण कि इसके पूर्व और पश्चात् हिंदी के सम्पादक, पत्रकार और प्रकाशकों ने मेरा डटकर शोषण किया था।

दूसरा संस्मरण सन् १९४९ का है। 'माधुरी' बंद हो चुकी थी। उसके स्थान पर 'वासन्ती' निकालने का आयोजन हो रहा था। इस समय तक मुझे विश्वविद्यालय में प्राध्यापक की हैसियत से कार्य करते हुए डेढ़ दो साल हो चुके थे। एक दिन पाण्डेय जी का बड़ा खफीफ पत्र मिला कि 'वे मेरे दर्शनों के लिए आकांक्षी हैं'। मैं लगभग चार बजे उनके कार्यालय में पहुचा। देखा (नवल किशोर प्रेस की) किसी पुस्तक के प्रूफ देख रहे हैं। मुझे देखकर चश्मा नाक पर चढ़ा लिया और 'वासन्ती' की योजना बताने लगे। बीच-बीच में मेरी सम्मति और राय के लिए रुक जाते। मुझे संकोच होता था। अंत में उन्होंने कहा—तो 'वासंती' के लिए तुम्हारा लेख............। बिना तुम्हारे लेख........।' यह सब सुनकर मैं संकोच के भार से दबा जा रहा था। सोचने लगा कि मेरे जैसे नये लेखक की बिसात ही क्या जो 'वासन्ती' मेरे लिए स्थगित रहेगी। पाण्डेय जी की महानता के अनुकूल ही था, जो उन्होने ये शब्द कहे। अहंकार तो उनमें छू भी नही गया था। बच्चों की तरह सरल हँसी बात-बात में फूट पड़ती थी। गम्भीरता का दम्भ कभी उन्होने धारण ही नहीं किया।

दिसम्बर १९५४ की बात है। मैं विश्वविद्यालय से लौट रहा था। पाण्डेय जी हजरतगंज में बस स्टैंड के पास खड़े बस की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं उन्हें देखकर रुक गया। उन्हें काफी हाउस में चाय पीने के लिए आमंत्रित किया। प्रसन्नता के साथ मेरे साथ हो लिए। परन्तु 'बिल' की अदायगी के समय लाख रोकने पर भी न रुके। उनके एक वाक्य 'मैं तुमसे बड़ा हूँ' ने मुझे मर्यादा की शृंखला में बाँध कर मौन कर दिया। यह उनका वात्सल्य था।

आज जब 'रसवन्ती' ने उनके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए विशेषांक में लिखने के लिए आज्ञा दी, तो सैंकड़ों संस्मरण जाग उठे। 'रसवन्ती' धन्य है जिसने ऐसा पुण्य और महत्व पूर्ण कार्य अपनाया। आज फिर पाण्डेय जी के निधन और उनके अभाव की बात खटकने लगी। उनके जीवन के अंतिम दस वर्ष प्रायः प्रूफ ही देखने में बीते। सोचता हूँ कि यदि जीविका की समस्या इतनी विषम न होती और विश्वविद्यालयों के हिंदी के अध्यक्षों द्वारा ग्रहण

होने वाले वेतन का दशांश भी उन्हें घर बैठे मिलता रहता तो वे कितना महत्व-पूर्ण कार्य कर डालते। सरकार ने उन्हे कभी एक पैसे की सहायता नहीं दी। हिंदी समिति ने उनकी किसी पुस्तक पर पुरस्कार नहीं दिया। विश्वविद्यालयों ने उन्हे कभी सम्मानित नही किया। यह सब इसलिए कि उनके पास सौजन्य और स्नेह के अतिरिक्त दूसरों को देने के लिए कुछ नही था। यह आदान-प्रदान का युग है। पाण्डेय जी नही रहे। उनकी कथाएँ शेष रह गई हैं। वे हमे सिखा गए हैं कि 'मौन होकर, सर झुकाकर काम किए जाओ'। उनकी यश गाथा पीछे रह गई और आत्मा परमात्मा में मिलकर एकाकार हो गई। महासागर में जल की एक बूँद मिलकर तदाकार हो गई। कबीर ने कहा था:—

हेरत हेरत हे सखी रहा कबीर हेराइ।
बूँद समाना समुंद में सो कत हेरा जाइ ॥

इसी प्रकार नामदेव ने कहा था:—

"जल में तरंग तरंग में जल है, कहन सुनन को दूजा"

गीता के शब्दों 'वासांसि जीर्णानि·······विहाय' में वे ब्रह्माकार हो गए। मृत्यु सबके जीवन का अंत है। वे भी नही रहे।

(२४)

श्रीयुत लक्ष्मीनारायन भारतीय, सर्व सेवा संघ, ३०२ सी, कालबा देवी, बंबई २

हिंदी मासिक पत्रों के इतिहास में 'माधुरी' का स्थान ऐसा अमिट है कि इतने बरसों के बाद भी उसकी याद ताजी हो उठती है। स्व० श्री पांडेय जी के रूप में 'माधुरी' एवं 'माधुरी' के रूप में श्री पांडेय जी अमर हो गये हैं। उस जमाने की पत्रिकाओं में जिन इनी-गिनी पत्रिकाओं ने साहित्य क्षेत्र में अद्भुत लोकप्रियता प्राप्त की थी, उसमें माधुरी का स्थान अग्रगण्य था और उसके पीछे श्री पांडेय जी की अविचल निष्ठा, एकांत सेवा, साहित्य की धुन एवं उनकी हिंदी-नागरी के प्रति अनन्य श्रद्धा खड़ी थी। परिणामतः दोनों एकाकार हो गये थे। आज ऐसा समर्पणभाव दुर्लभ हो गया है। उस स्थिति में श्री पाण्डेय जी का व्यक्तित्व और भी अधिक उज्जवल हो उठता है।

मेरा उनके साथ गहरा संबंध तो न था, और भेंट भी शायद एकाध बा
ही हुई थी, परंतु असंख्य मुलाकातों में से वह एक बार की ही मुलाकात आ
भी तरोताजा बनकर सामने आती है। उनकी वह सौम्य एवं धुन में रमी हु
मूर्ति का चित्र जब सामने आता है, उनकी वह मधुर वाणी, जो अधिक मुख
नहीं दिखायी दी थी, जब याद करता हूँ, उनकी वह लगन एवं उत्साह ज
स्मृति में जाग्रत हो उठता है, तब लगता है कि काश एक बार फिर उनके
मनोरम दर्शन हो जाते। मेरी क्या बातचीत हुई थी, यह तो याद नहीं है। बस
उनकी मूर्ति ही याद है। कुछ-कुछ स्मरण आता है कि साहित्य-सेवा एवं पत्रका
रिता पर ही कुछ बातें हुई थीं। दर असल, वे बातें याद रहें भी कैसे, जब कि
बातों से ज्यादा ध्यान उस मूर्ति पर ही लगा हुआ हो। पहली मुलाकात में यही
तो हुआ करता है, जब व्यक्ति उस की ओर श्रद्धा भरी भावना से आता है।

अपने खून का पानी करके श्री पांडेय जी ने 'माधुरी' का संवर्धन किया था, इस विषय में शायद ही किसी का मतभेद हो। साहित्यिक क्षेत्र में सतत निष्ठापूर्वक सेवा करने का व्रत लेकर उन्होंने अनोखी मिसाल प्रस्तुत कर दी थी। अनेक नव लेखकों-कवियों को प्रोत्साहन देना, साहित्यिक प्रवृत्तियों को चलाना, समालोचनादि के क्षेत्र में तटस्थवृत्ति धारण करके समीक्षण करना, सुन्दर से सुन्दर सामग्री का चयन करना इत्यादि कई ऐसी विशेषताएँ उनमें थीं, जो आज भी चमक उठती हैं।

स्व० पाण्डेय जी की स्मृति के निमित हम अपने पत्रकार बंधुओं से विनय पूर्वक कहना चाहेंगे कि अगर एक नहीं, तो कुछ पत्रिकाओं को तो मिलकर ऐसी साधना का मार्ग ढूंढ़ना चाहिए, जिससे हमारे पत्र एक शक्ति बन जायँ, उनकी टिप्पणियाँ विदेशी-विभाषीय प्रतिष्ठित पत्रों के सदृश मान्यता-प्राप्त हो जायँ, नये-नये प्रश्नों के हल प्रस्तुत किये जायँ, तथा एक-एक युग की प्रतीक एवं निर्माता बनकर ये पत्रिकाएँ नव निर्माण करें तथा नयी पीढ़ी को प्रोत्साहन देने की दिशा में आगे बढ़ें।

(२५)

श्री लक्ष्मीशंकर मिस्त्री 'रमा', रमानिवास, हटा (दमोह), मध्यप्रदेश

'भारतीय विद्या भवन' बंबई से निकलनेवाली जनवरी सन् १९५८ की मासिक 'भारती' में जब मैंने आचार्य शिवपूजन सहाय का लिखा 'एक आदर्श साहित्य सेवी' शीर्षक लेख श्री रूपनारायण पांडेय जी के स्वर्गवास के विषय में पढ़ा तब मैं अवाक् होकर निस्तब्ध रह गया। पांडेय जी का शरीरपात हो गया, इसमें कोई अनहोनी बात नहीं है; बहुत लोग मर चुके हैं, आज जो वर्तमान हैं वे भी मरेंगे, पर कई मरने वाले ऐसे होते हैं जिनका मरना पानी पर की लकीर के समान थोड़ी देर के लिए होता है, उनके मरने के बाद थोड़े आदमी, थोड़ी देर रो-धो लेते हैं फिर अपने कार्य में लग जाते हैं। कई ऐसे होते हैं जिनकी मृत्यु पत्थर की लकीर के समान समाज के हृदय पर अंकित हो जाती है वे जिस स्थान को खाली करते हैं वह स्थाम सदा खाली ही रह जाता है। हमारी समझ में पांडेय जी इसी प्रकार के साहित्यिक पुरुष थे। मैं जानता हूँ कि ऐसे साहित्यिक पुरुष की मृत्यु नहीं होती। श्री पांडेय जी हिंदी भारती के एक निष्ठावान भक्त एवं उपासक थे। हिंदी हित की उत्कृष्ट एवं उदात्त भावना उनके हृदय-स्थल में सदैव ही लहराती रहती थी। इसी भावना से प्रेरित और प्रभावित होकर उन्होंने एकनिष्ठ और एकाग्रचित्त से साहित्य-साधना की थी। उनकी अटूट तथा अपरिमित लगन ही साहित्य साधना का रहस्य था, वह एक साधनाशील साहित्यकार और भावुक चितेरे थे।

संपादन कार्य में आपकी दक्षता आचार्य द्विवेदी जी की याद दिलाती है। इनका समस्त जीवन विशेषकर साहित्य सेवा ही में बीता। परमात्मा से विनय है कि वह इस साहित्यकार की पवित्र आत्मा को स्वर्ग में शांति दें।

(२६)

श्री जयशंकरनाथ मिश्र, 'सरोज', सांकरी टोला, चौक, लखनऊ

पिछले वर्ष गर्मियों में दक्षिण भारत की लगभग एक मास की यात्रा समाप्त करने के बाद जब मैं कलकत्ते पहुँचा, तब एक साहित्यिक मित्र ने

पं० रूपनारायण जी पाण्डेय के आकस्मिक निधन का समाचार दिया। कानों को उनकी बात पर पहले तो विश्वास ही न हुआ, पर अंत में समाचार-पत्रों में लू लगने के कारण उनकी असामयिक मृत्यु का समाचार पढ़कर उसे सत्य मानना ही पड़ा। श्रद्धेय पाण्डेय जी के निधन का समाचार कुछ ऐसा प्रभाव और विषाद की छाया मन पर डाल गया है, जो आज एक साल बीतने पर भी ताजी है और जब-जब हिन्दी साहित्य की प्रगति का लेखा-जोखा करने का अवसर आयेगा, तब-तब ताजी बनी रहेगी।

लखनऊ से मैं ता० २५ मई को अपनी दक्षिण भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक यात्रा पर रवाना होने के दो दिन पहले पूज्य पाण्डेय जी से मिला था। अपनी साहित्यिक अभिरुचि के लिये जिन महान् आत्माओं का मैं चिर-ऋणी रहूँगा उनमें पूज्य पाण्डेय जी का भी एक स्थान है। चौक में रहने के कारण, जब कभी किसी कविता या लेख में कुछ शंका होती थी, मैं पूज्य पाण्डेय जी को जिन्हें मैं प्रायः 'दादा' कहा करता था, जा घेरता और जब वह उसे सुनकर ठीक कर देते तो मन को अतीव प्रसन्नता होती और यदि कहीं उन्होंने उत्साह बढ़ाने को कुछ प्रशंसा कर दी तो मैं अपने आपको साहित्यिकों की श्रेणी में मानने लगता था। उनका दरवाजा हर प्रकार के छोटे-बड़े साहित्य-प्रेमी के लिए सदा उन्मुक्त रहता था। कभी-कभी तो तरंग आने पर वह स्वयं अपनी नोटबुक खोलकर अपनी रचनायें भी सुनाने लगते थे, पर ऐसा उसी अवस्था में करते जब अंतरंग जुड़ता था। विद्यार्थी-जीवन में मैं उनको दूर से देखा करता था और यह जानकर कि वह 'माधुरी' के सम्पादक हैं उनके प्रति हृदय में असीम श्रद्धा उत्पन्न होती थी क्योंकि हिन्दी-साहित्य के प्रति मेरी अभिरुचि को जाग्रत करने से 'माधुरी' और 'सुधा' का बड़ा हाथ रहा है। यह मोह इतना बढ़ा कि मैं प्रायः कबाड़ियों के पास से नखास बाजार में केवल 'माधुरी' और 'सुधा' के अंक खरीदने जाता था। वे अंक आज भी मेरे पास हैं और उन्हें देखकर अब पहले से भी अधिक संतोष होता है। पाण्डेय जी के सम्पादकीय विचारों से उनके व्यक्तित्व और प्रतिभा का परिचय मिलता है।

स्वर्गीय पाण्डेय जी हिन्दी के उच्चकोटि के सम्पादक, अनुवादक एवं कवि थे, पर इन सबसे बड़ी बात उनमें थी, उनकी सादगी और निरभिमानता।

उनकी ६६वीं वर्षगाँठ मनाने का आयोजन हम लोगों ने 'शतदल' के तत्वावधान में किया था। जब पाण्डेय जी को उसकी सूचना दी गई तो पहले तो वह किसी भाँति आयोजन में जाने को तैयार न हुए, पर अंत में बहुत अनुरोध करने पर सहमत हुए। उन्हें प्रचार और आत्मस्तुति से घृणा थी। उस समय मैंने उनका जीवनवृत्त लिखा था। मेरे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर उन्होंने बड़े धैर्य से दिया। साधारण परिवार में जन्म लेकर और आर्थिक कठिनाइयों के बोझ मे दबे रहकर, उन्होंने हिन्दी की सेवा करने का जो व्रत उस समय लिया, उसे अंत तक निभाया। इस बीच उनकी ख्याति संस्कृत और बंगला के अनुवादक के रूप में सारे देश में फैल गई थी। स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद जी ने उन्हें 'इन्दु' के सम्पादन का निमंत्रण दिया था और आजीवन वह पाण्डेय जी के परम मित्रों में रहे। इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, काशी महामंडल काशी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई, निर्णयसागर प्रेस बम्बई और अंत में लखनऊ से प्रकाशित होनेवाली पत्रिकाओं 'माधुरी' और 'सुधा' के लिये आपने कार्य किया। इस बीच आपका संबंध देश के उच्चकोटि के साहित्यिकों से हुआ और सर्वत्र आपकी विद्वता और लगन की प्रशंसा की गई।

आपकी प्रौढ़ लेखनी से प्रभावित होकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, बा० श्यामसुन्दरदास और मिश्रबंधुओं ने सदा आपकी सराहना की।

स्वर्गीय पाण्डेय जी बँगला साहित्य से अत्यधिक प्रेम करते थे और इसी कारण उन्होंने बँगला के अनेक प्रसिद्ध नाटकों, उपन्यासों और काव्यग्रंथों को हिन्दी में अनूदित किया, और इन अनुवादों में मूल ग्रंथों की मौलिकता को नष्ट न होने दिया। उनके द्वारा लिखित मौलिक तथा अनूदित ग्रंथों की संख्या लगभग ७५ है, जिनमें उनकी प्रौढ़ लेखनी, भाव-तन्मयता और प्रतिभा का स्पष्ट दर्शन होता है।

रानीकटरा स्थित अपने मकान की एक छोटी कोठरी में बैठकर वह होल्डर और निब के सहारे कभी-कभी तो रात-रात भर साहित्य-साधना में लीन रहते थे। मृत्यु के कुछ समय पूर्व उन्होंने बँगला की एक प्रसिद्ध पुस्तक का अनुवाद करना आरम्भ किया था, जो संभवतः अधूरा ही रह गया है।

(६२)

पाण्डेय जी के निधन से लखनऊ के तरुण साहित्यकारों के मार्ग-प्रदर्शक का लोप तो हो ही गया है, साथ ही हिन्दी के एक सफल सम्पादक, विद्वान और निस्पृह साहित्य-सेवी को भी हानि हुई है। पाण्डेय जी का व्यक्तित्व भारतेन्दु और द्विवेदी युग की सम्मिलित शक्ति और प्रतिभा का प्रतीक था। आज जब शृंखला की अनेक कड़ियाँ छिन्न-भिन्न थीं, पाण्डेय जी का अस्तित्व और उनका प्रभाव एक विशेष रूप का द्योतक था। दलबंदी आत्मस्तुति और प्रोपेगैंडावाद के साहित्यिक कवि के बीच पाण्डेय जी कमलवत् स्थित थे।

'वह नहीं रहे' यह वाक्य अमिट है, पर साथ ही यह भी अमिट है कि साहित्य-साधना की जो दिव्य-ज्योति वह हम लोगों के हृदय में जगा गये हैं, वह निरंतर जल रही है और जलती रहेगी।

(२७)

आचार्य केदारनाथ गुप्त, एम० ए०, ६३७, दारागंज, इलाहाबाद

स्वर्गीय पं० रूपनारायण जी पाण्डेय का मेरा अत्यन्त पुराना परिचय था। वे जब इलाहाबाद में रहते थे तब उनके प्रायः दर्शन होते थे। वे बड़े ही मिलनसार और विनोदप्रिय सज्जन थे। वे हिन्दी-साहित्य के उच्च कोटि के लेखक और बँगला भाषा के सफल अनुवादक थे।

शोक है कि उनका निधन कम ही अवस्था में हो गया और राष्ट्रभाषा हिंदी उनकी आगामी सेवाओं से वंचित हो गयी। भारतवर्ष के हिन्दी लेखकों में इस बात की बड़ी ही कमी दिखलाई पड़ती है, वे लिखने-पढ़ने की ओर अधिक ध्यान देते हैं और स्वास्थ्य की ओर कुछ भी नहीं। यदि वे थोड़ा-सा भी ध्यान अपने स्वास्थ्य की ओर दें तो वे हमेशा तन्दुरुस्त रहें और उनका जीवन भी दीर्घ हो जाय।

मेरा अपना अनुभव है और साथ ही विश्वास भी कि नियमित सन्तुलित भोजन, नियमित व्यायाम, नियमित ब्रह्मचर्य, नियमित प्राकृतिक जीवन और नियमित ईश्वरोपासना से कोई भी व्यक्ति कम से कम सौ वर्ष तक स्वस्थ जीवन

व्यतीत कर सकता है। ईश्वर हमारे हिन्दी लेखकों में स्वास्थ्य की भावना उत्पन्न करे ताकि वे योरोपियन लेखकों की तरह स्वस्थ और दीर्घजीवी हों और राष्ट्रभाषा हिन्दी के कोष को उत्तरोत्तर अपनी कृतियों से भरते रहें।

(२८)

श्री शुभकार्यनाथ कपूर, एम. ए., महेंद्र टोला, खैराबाद, सीतापुर

पूर्ण रूप से स्मरण नहीं, किन्तु इतना स्मरण है, तब जनवरी का अंतिम सप्ताह था। ठंड काफी थी। ग्यारह बज जाने पर भी भगवान् भास्कर फीके से लग रहे थे। रविवार का दिन था। ठीक ग्यारह बजे पंडित रूपनारायण पाण्डेय ने इन्टरव्यू देने को कहा था। जब मैं पहुँचा तो रुहिया-बंडी पहिने वे धूप में खड़े किसी से बात कर रहे थे। अभिवादन के पश्चात् वे मुझे लिये हुए अपने कमरे में चले आये। हँसकर उन्होंने पूछा, कहो ठंड कैसी है ?

'ठंड तो है ही' मैने उसी प्रकार हँसते हुए उत्तर दिया।

'भाई, अब ठंड बरदास्त नहीं होती', कम्बल ओढ़ते हुए उन्होंने बैठते हुए कहा। 'अब बुढ्ढा जो हो गया हूं' यह कह कर वह पुनः हँसे। उनके संकेत करने पर मैं सामनेवाली कुर्सी पर बैठ गया था। कुछ इधर-उधर की बातों के पश्चात् मैं काम की बात पर आ गया। मैंने प्रश्न किया—'आपने साहित्य-क्षेत्र में कब प्रवेश किया' ?

'ठीक स्मरण नहीं रहा कि साहित्य-क्षेत्र में मैं कब आया। वैसे मुझे इतना स्मरण है कि मेरे अध्ययन के साथ-साथ रचना-कार्य भी चलता रहा। वैसे सत्रह वर्ष की अवस्था में मैंने भागवत का हिन्दी अनुवाद किया। एक वर्ष बाद बाबू गोपाललाल खत्री के साथ 'नागरी प्रचारक' पत्र निकाला। शायद यह चार-पाँच वर्ष तक चला था।' उन्होंने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया।

'आपका बचपन से ही संस्कृत के प्रति अनुराग कैसे हो गया' मेरा अगला प्रश्न था !

'संस्कृत तो मेरे घर की भाषा थी। मेरे पितामह पंडित रामाधार पांडेय तथा पंडित शिवराम पाण्डेय संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् और पंडित थे। उन्हीं की

प्रेरणा से मेरा अनुराग बचपन से ही संस्कृत की ओर हुआ। प्रारम्भ से ही मैंने संस्कृत का अध्ययन किया और उसकी कई परीक्षाएँ उत्तीर्ण भी कीं। पारिवारिक परिस्थितियों से विवश होकर मैं अधिक परीक्षाएँ तो न उत्तीर्ण कर सका किन्तु मेरा संस्कृत साहित्य का अध्ययन निरंतर चलता रहा।' कुछ रुक कर उन्होंने पुन: कहा 'संस्कृत के साथ-साथ बंगला, फारसी तथा अंग्रेजी भी मैंने सीख ली थी। अत: उनका साहित्य भी पढ़ लिया करता था।'

'आपने मौलिक रचना न करके अनुवादों की ओर ही क्यों ध्यान दिया।' मेरा प्रश्न था।

'इसके दो कारण थे' उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया। 'प्रथम, मौलिक रचना करने में देर लगती है, और तब पैसा नहीं मिलता था। मुझे पैसे की आवश्यकता थी। अनुवादों से मुझे पैसा मिलता था और वे हो भी शीघ्र जाते थे। साथ ही उस समय हिन्दी में उच्चकोटि के कथा-साहित्य की आवश्यकता थी। अत: मैंने अनुवाद के द्वारा ही हिन्दी-सेवा करना अपना प्रथम कर्तव्य समझा।'

'इतने पत्रों के सम्पादक होकर आपने हिन्दी के पत्रों के विषय में क्या धारणा बनायी ?'

'नागरी प्रचारक', 'निगमागम चंद्रिका', 'इंदु', 'सुधा,' 'माधुरी' आदि कितनी ही पत्रिकाओं का मैंने सम्पादन तो अवश्य किया, किन्तु सम्पादन व कला के विषय में मेरे अनुभव बड़े कटु हैं। आज तो हिन्दी-संसार में पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ है। नित्य एक निकलती है तो दूसरी बन्द होती है। आज पत्र वही चल पाता है जो किसी ग्रुप-विशेष से सम्बन्धित हो। मुझे तो यह देखकर दु:ख होता है कि माँ भारती के पावन मंदिर में भी यह घृणित गुटबंदी चल रही है। आज वही संपादक योग्य सम्पादक है जो किसी साहित्यिक गैंग का लीडर है। यही कारण है कि आज इस गुटबन्दी से दूर रहनेवाला साहित्यकार जनता के सामने नहीं आ पाता। किसी भी साहित्य के लिए यह अच्छी बात नहीं है' इतना कहकर पांडेय जी गम्भीर हो गए।

मैंने पुन: प्रश्न किया, " 'सुधा' एवं 'माधुरी' के संपादन-काल में आप किन उद्देश्यों को लेकर चले थे ?"

'दो उद्देश्य थे मेरे सामने—प्रथम हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि और दूसरा नये लेखकों को प्रोत्साहन देना। मैं रचना को देखता था, किसी व्यक्ति-विशेष या नाम को नहीं। जहाँ तक मुझसे सम्भव हो सका, मैंने नवीन लेखकों को सदैव प्रोत्साहित किया।'

मैंने तुरन्त दूसरा प्रश्न किया, 'नये लेखकों को आपने किन रूपों में प्रोत्साहित किया?'

'मैंने आपसे अभी कहा कि मैंने रचना देखी, व्यक्ति या नाम नहीं। मैंने अपने विरोधी विचारों को भी सम्मानपूर्वक छापा। एक बात और। मैं साहित्य के किसी भी वाद या धारा के पीछे नहीं दौड़ा। किसी वाद की भी रचना क्यों न हो, यदि वह जनता के लिए उपयोगी हुई, तो मैंने अवश्य उसे प्रकाशित किया।'

'आज के नवीन लेखकों के विषय में आपके क्या विचार हैं?'

'आज का लेखक बिना प्रयत्न और संघर्ष किए ही महान् लेखक बन जाना चाहता है। आज नये लेखकों में पीछे चलने की भावना कम और आगे चलने की प्रकृति अधिक है। आज सभी साहित्यिक नेता बनना चाहते हैं। कोई किसी वाद का प्रणेता बना हुआ है तो कोई किसी गुट-विशेष का नेता। इससे आज बड़ी अस्तव्यस्तता छा गयी है। यह साहित्य के लिए अच्छा भी नहीं है। हमारे युग में ऐसी बात न थी। मैं तो नये लेखकों से यही कहूँगा कि वे श्रम और साधना का संबल ग्रहण करें।'

मेरा अन्तिम प्रश्न 'आपकी भविष्य में क्या योजना है?' सुनकर वे हँस पड़े। उन्होंने हंसते हुए उत्तर दिया, 'मेरी सभी योजनाएँ अब समाप्त हो गयीं। बस, अब मैं चलने की योजना बना रहा हूँ। बस, अब एक-आध साल में मेरी यह योजना कार्यान्वित होनेवाली है। अब मैं अधिक नहीं घसिट पाऊँगा, ऐसा मुझे कुछ भान होने लगा है।' इतना कहकर वे खुलकर हंस पड़े। उस समय मैं वह हँसी सुन कर दहल गया था। मुझे क्या पता था कि वह मनीषी सचमुच अपनी भावी योजना को प्रत्यक्ष देख रहा था। कुछ माह भी नहीं व्यतीत हो पाये थे कि पांडेय जी ने अपनी वह भावी योजना कार्यान्वित कर दी। आज भी

उनका वह अट्टहास जब मुझे स्मरण हो जाता है, मैं काँप उठता हूँ। मुझे विश्वास हो गया है कि साहित्यकार भविष्यद्रष्टा होता है।

(२६)

श्री गणेशदत्त सारस्वत, एम० ए०, एल० टी०, बिसवाँ (सीतापुर)

उन दिनों मैं लखनऊ के लिए नया ही था। अभी हाल में ही उच्चशिक्षा प्राप्त करने के विचार मे इस नगरी में आया था, और परिचितों की संख्या सीमित ही थी। साहित्य के प्रति मेरी अभिरुचि प्रारम्भ से ही थी। अतएव राजधानी के साहित्यिक वातावरण का सान्निध्य प्राप्त करना मेरे लिए गौरव का विषय था। किंतु, नगर से सर्वथा अपरिचित होने के कारण विवश था। दैवयोग से कुछ ही दिनों के बाद 'माधवी' के यशस्वी सम्पादक श्री गिरिजादयाल 'गिरीश' से भेंट हो गयी। उनके व्यवहार ने मुझे इतना अभिभूत कर लिया कि मैं प्रायः उनके निवास-स्थान पर जाने लगा। साहित्य-विमर्श के दौरान में मुझे लखनऊ के साहित्यिकों के विषय में पर्याप्त ज्ञान हो गया था। एक दिन 'गिरीश' जी ने मुझसे स्थानीय किसी साहित्यिक संस्था के तत्त्वावधान में आयोजित 'कविसम्मेलन' में चलने का आग्रह किया। अन्धा क्या चाहे, दो आँखें। मैं तुरन्त तैयार हो गया। जिस समय मैं मण्डप में पहुँचा, 'कविसम्मेलन' प्रारम्भ हो चुका था। सभापति के स्थान पर गम्भीर एवं सौम्य प्रकृति के एक सज्जन विराजमान थे। गौरवर्ण, उन्नत ललाट, आजानुबाहु, श्वेत तथा स्वच्छ धोती-कुर्ता पर शाल धारण किए हुए, आँखों पर चश्मा लगाए हुए—मानों पाण्डित्य साकार हो उठा था। उनमें कुछ ऐसा आकर्षण था जो प्रत्येक को अपनी ओर खींच लेता था। सम्मेलन यंत्र-चालित-सा चल रहा था किंतु मैं उन्हीं के सम्बन्ध में विचार-मग्न था। सोच रहा था, ये कौन सज्जन हो सकते हैं। किंतु निर्णयात्मक निष्कर्ष तक न पहुँच सका। 'गिरीश' जी से इस संबंध में पूछना भी चाहा किन्तु शान्ति-भंग के भय से मौन ही रहा। इसी बीच सभापति महोदय ने मेरा नाम पुकारा। मेरे लिए लखनऊ का वह प्रथम कवि-सम्मेलन था, अतएव कुछ भय भी लग रहा था। मैंने 'कोकिल' शीर्षक चार छंद सुनाए जिन्हें श्रोताओं ने पसंद किया या नहीं किंतु, सभापति महोदय

उन छन्दों से काफी प्रसन्न लग रहे थे। मेरा हृदय उनकी प्रशंसा प्राप्त कर प्रफुल्लित हो गया। कवि-सम्मेलन के समाप्त हो जाने के पश्चात् मैंने 'गिरीश' जी से सभापति महोदय के संबंध में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया 'क्या तुम पं० रूपनारायण पाण्डेय को नहीं जानते ? 'माधुरी' के सम्पादक के रूप में इनकी ख्याति तथा इनका कर्तृत्व लखनऊ के लिए ही नहीं वरन हिंदी-संसार के लिए एक गौरव का विषय है।' 'माधुरी' का नाम सुनते ही मुझे उसके आकार-प्रकार, वस्तु-विषय तथा कलेवर-सज्जा का स्मरण हो आया। साथ ही, उसके किसी अंक के उस पृष्ठ का स्मरण हो आया जिस पर संपादकीय स्तम्भ में यह प्रकाशित हुआ था 'एकादशी व्रत का महात्म्य यदि हमारे पूर्वजों ने निर्धारित न किया होता तो सम्भवतः 'माधुरी' का प्रकाशन न हो पाता'। यह पंक्ति पत्रिका के लिए उनके त्याग की स्पष्ट परिचायक है। आज यद्यपि 'माधुरी' पारिवारिक कलह की बेदी पर बलि हो चुकी है; किंतु, फिर भी, साहित्य-साधना के क्रम में किया गया पांडेय जी का त्याग एवं तपश्चर्या सर्वथा अमर है।

लगभग एक सप्ताह पश्चात् मुझे पांडेय जी का पुनः दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब मैं पता लगाते-लगाते उनके निवास-स्थान पर पहुँचा, वे घर पर ही थे। उन्होंने मुझे अन्दर बुला लिया। यथोचित अभिवादन के उपरांत मैंने परिचय दिया। मेरे मौन हो जाने पर समाचार पत्र में दृष्टि गड़ाए हुए ही उन्होंने मुझसे कहा—अच्छा उस दिन आप ही ने 'कोयल' पर छंद सुनाए थे। कविता सुन्दर थी। यदि इसी तरह अभ्यास करते रहे तो बहुत सम्भव है कुछ दिनों में अच्छा लिखने लगो। पाण्डेय जी का यह वाक्य मेरे लिए कितना स्फूर्तिदायक था, इसकी कल्पना-मात्र से ही हृदय आज गद्‌गद् हो जाता है। जब कभी सोचता हूँ उस महानात्मा के विषय में जिसकी प्रेरणा से मेरे-जैसे तुच्छ अगणित प्राणी हिंदी में कुछ लिख सकने का दावा करते हैं, तो मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है।

उन दिनों मेरे सर पर प्रकाशन का भूत सवार था। प्राचीन शैली में लिखी हुई लगभग पचास कविताएँ मेरे पास थीं। उन्हीं को मैं साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नमूना मानता था। उनमें की अधिकांश कविताएँ 'हलचल' (गोंडा) 'कलाकौशल' (रायबरेली) तथा 'राष्ट्र-संदेश' (सीतापुर) आदि में प्रकाशित हो चुकी थीं।

आर्थिक कृशता के कारण पुस्तक रूप में उन कविताओं का प्रकाशन यद्यपि मेरे लिए असम्भव था, फिर भी उसकी 'भूमिका' मैं लिखाना चाहता था। इस आशय से (पाण्डेय जी से भेंट होने के पूर्व) मैं एक महाकवि से मिला था। वे पिता जी के गुरु रह चुके थे। साथ ही सीतापुर जिले से संबंधित भी थे। इसलिए विश्वास था कि वे मेरे अनुरोध को टालेंगे नहीं। उन्होंने मेरे काव्य-संग्रह को देखा तथा बड़े नाटकीय ढंग से मुझसे पूछा—"क्या तुम चाय पीते हो ?" मेरे 'हाँ' कहने पर उन्होंने कहा—"इन कविताओं से यदि तुम स्टोव जलाने का कार्य लो तो अधिक उत्तम होगा।" उनके इस उत्तर से मुझे बहुत ही ग्लानि हुई तथा इतना हताश हुआ कि कविता लिखने की ओर ध्यान देना छोड़ दिया। साथ ही, यह सोचने लगा कि कविताएँ लिखना कुछ ही प्रतिभा-सम्पन्न लोगों का कार्य है। मैं उस कोटि से बिलकुल बाहर हूँ। पाण्डेय जी के स्नेहसिक्त व्यवहार ने मेरे उस पुराने लोभ को फिर से जाग्रत कर दिया। अतएव उन्हें भी संग्रह दिखलाया। उन्होंने उन कविताओं को (जिनके विषय में आज मैं समझता हूँ निरर्थक ही थीं) बड़ी तन्मयता के साथ देखा तथा लगभग एक सप्ताह के बाद पुनः भेंट होने पर मुझसे कहा—"तुम्हारी कुछ कविताएँ तो पठनीय हैं, किंतु, अभी इनके प्रकाशन के चक्कर में मत पड़ो। प्रकाशन का भूत प्रतिभा के अंकुर को कुण्ठित कर देता है। अभी तुम्हें अभ्यास करने की आवश्यकता है। अभ्यास से रचनाओं में स्वयं इतना निखार आ जाता है कि फिर किसी से भूमिका लिखवाने की आवश्यकता नहीं रह जाती।" साथ ही यह परामर्श दिया कि सवैया-घनाक्षरी के स्थान पर यदि मैं गीत आदिक आधुनिक शैली अपनाऊँ तो अधिक लाभकारी होगा।

कितना अन्तर है दोनों महाकवियों के उत्तर में। यद्यपि भूमिका किसी ने नहीं लिखी किन्तु, एक ने मुझे बिल्कुल हताश कर दिया तथा दूसरे ने मुझे लिखने की प्रेरणा ही नहीं दी वरन् एक नयी शैली तथा नयी दिशा भी प्रदान की। पाण्डेय जी का यह प्रोत्साहन मेरे लिए वरदान-तुल्य सिद्ध हुआ तथा उस दिन से मैं प्रकाशन का विचार छोड़कर अभ्यास को ही सर्वोपरि मानने लगा। और इसी का यह परिणाम है कि आज भी जब कि सभी साधन सुलभ हैं, मैं संग्रह-प्रकाशन से कोसों दूर हूँ।

इसी संबंध में एक अन्य घटना का उल्लेख भी असंगत न होगा। उन दिनों कवि-सम्मेलनों के संबंध में मेरी यह धारणा पुष्ट होने लगी थी कि इन सम्मेलनों

में उन कवियों को ही आदर प्राप्त होता है जिनका या तो कण्ठ मधुर होता है या वे हास्य-रस की कविताएँ सुनाते हैं। कण्ठ-माधुर्य के अभाव के कारण सस्वर पाठ करना मुझे आता नहीं था। इसलिए मैं हास्य-रस की ओर उन्मुख हुआ। दो-चार कविताएँ इस प्रकार की लिखीं भी। किंतु, क्योंकि इस रस की वे प्रारम्भिक रचनाएँ थीं, अतएव सम्मेलनों में सुनाने योग्य नहीं थीं। उन्हीं दिनों पिता जी (पं० उमादत्त सारस्वत) की हास्य-रस की कुछ कविताएँ 'स्वतंत्र भारत' आदि में प्रकाशित हुई थीं। मण्डलवाद के जोर पकड़ने के कारण नगर के कुछ बुजुर्ग कवियों ने मुझे यह सलाह दी कि मैं उन्हीं प्रकाशित रचनाओं को सम्मेलनों में सुनाया करूँ। इससे उनके मण्डल का महत्त्व बढ़ेगा; साथ ही, मुझे सफलता भी प्राप्त होगी। आरंभ में तो मुझे कुछ संकोच हुआ। किंतु बाद में, ख्याति-लोलुपता के कारण उनके इस सुझाव को मान गया तथा सम्मेलनों में पिता जी की रचनाएँ सुनाने लगा। आज इस संबंध में जब सोचता हूँ तो बड़ी ही ग्लानि मालूम होती है। किंतु उस समय जैसे आँखों पर लोलुपता का पर्दा ही पड़ गया था। सदासद विचार मर-सा गया था। पाण्डेय जी ने भी किसी कवि-गोष्ठी में पिता जी की कविता का पाठ करते हुए सुना। उस समय तो उन्होंने कुछ भी नहीं कहा किंतु सम्मेलन-समाप्ति के बाद यह जिज्ञासा प्रकट की कि दूसरे दिन मैं उनके निवास-स्थान पर आऊँ। नियत समय पर मैं उनके यहाँ पहुँचा। इसी बीच 'स्वतंत्र-भारत' का वह अंक उन्होंने खोजकर रख लिया था, जिसमें पिता जी की वही कविता प्रकाशित हुई थी जो मैंने पिछले दिन कवि-गोष्ठी में सुनायी थी। वह कविता सामने रखते हुए उन्होंने कहा—"तुमने क्या यह कविता पढ़ी है ? सुन्दर है। न पढ़ी हो, पढ़ लो।" उनकी इस कटूक्ति ने ग्लानि का मृतभाव पुनः सजग कर दिया। मेरी आँखों में आँसू आ गए। उन्हें कोई भी उत्तर न दे सका। सर नीचा किए ही बैठा रहा। कुछ देर बाद उन्होंने फिर कहा—"तुम तो लिख लेते हो। तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं था।" उनकी यह चेतावनी मेरे लिए अमृत-वाणी बन गयी। उसका मुझ पर इतना प्रभाव पड़ा कि सम्मेलनों में भाग लेना ही छोड़ दिया तथा लोगों के आग्रह करने पर भी इस प्रकार की रचनाओं का पाठ न करने की शपथ खा ली। इसी क्रम में यह भी बतला दूँ कि ऐसा न करने पर बहुत से लोग मुझसे रुष्ट भी हो गए तथा संभवतः आज भी रुष्ट ही हैं। कारण, उनके मण्डल को

को धक्का लगा। किंतु, पाण्डेय जी की चेतावनी का सम्बल पाकर मुझे ऐसे व्यक्तियों के रोष की परवाह ही कहाँ रह गयी थी? पांडेय जी का यह कथन आज भी हृदयंगम है कि कवि-सम्मेलनों की सफलता ही कवि की वास्तविक सफलता नहीं है, प्रत्युत ठोस रचनात्मक कार्य ही उसे समावृत कर सकते हैं। वस्तुतः पाण्डेय जी की वह चेतावनी यदि मुझे समय से न मिली होती तो सम्भवतः मेरे जीवन का कुछ और ही रूप होता। हृदय का अंकुर मुरझाकर नष्ट हो गया होता।

आज जब सोचता हूँ कि पूज्य पांडेय जी हम सबके बीच नहीं हैं तो जैसे विश्वास नहीं होता। इधर यद्यपि उनसे लगभग दो वर्ष से भेंट नहीं हो सकी थी, किंतु ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनसे कल ही मिला होऊँ। उनका वह स्नेह पूर्ण व्यवहार मेरे लिए, मेरे लिए ही क्या सभी के लिए कितना कोमल तथा कितना आल्हाददायक था इसका स्मरण करते ही आँखें बरस पड़ती हैं, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है तथा सभी-कुछ स्वप्न-सा लगने लगता है। आज पाण्डेय जी का पार्थिव-शरीर नष्ट हो गया है किंतु उनकी वह स्फूर्तिमयी प्रेरणा सदैव मार्ग-प्रदर्शन करती रहेगी।

(३०)

श्री अमृतलाल नागर, चौक, लखनऊ

मैं सन् १९२८ के लगभग अन्त में अथवा सन् १९२९ के आरंभ में पहली बार पांडेय जी के दर्शन करने गया था। सर्दी के दिन थे। पांडेय जी घर पर ही मिल गए। उन्हें मैं पहले भी गली-सड़कों पर आते-जाते कई बार देख चुका था। पर उससे पहले उन्हें नाम से जानने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। उन दिनों पांडेय जी की टेबुल उनके बैठकेवाले कमरे में ही गली और अंतःपुर जानेवाले द्वारों के बीच दीवार से सटी रखी रहा करती थी। पांडेय जी की मेज घर पर भी हूबहू संपादक की मेज की तरह सजी रहती थी। एक ओर दो-चार पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, हस्तलिखित कागज यत्नपूर्वक मेज के दोनों सिरों पर रखे हुए, दीवार से लगे हुए सिरे पर दो-तीन कलम और पुराना-सा कलमदान। इस घर की मेज पर एक विशेषता और रहती थी जो संपादकीय

कार्यालय की मेज से अपना व्यक्तित्व अलग कर लेती थी—कलमदान के पास ही कंघा और शीशा भी रखा रहता था। पांडेय जी अधिकांशतः घर पर जब मिले तब उन्हें कुर्सी पर ही बैठे देखा और अधिकांशतः लिखते देखा।

मैंने पांडेय जी के चरण-स्पर्श कर अपना परिचय दिया। वे पहचान गए। दूसरा परिचय दिया, मैं लेखक हो गया। बोले—यह प्रसन्नता की बात है मगर अभी आपकी आयु छोटी है।

मुझे उनका 'आप' कहना अखरा। आयु के छोटे होने की बात ठीक थी पर यह भी गलत नहीं था कि मैं कहानी लेखक हो चुका था। साइमन कमीशन के लखनऊ आने पर चारबाग स्टेशन पर उन्हें काले झंडे दिखाने के लिए एक बहुत बड़ा जलूस निकला था। पंडित जवाहरलाल नेहरू और पंडित गोविंदवल्लभ पंत ने लाठियाँ खायीं थीं। उस जलूस में शामिल होने का प्रसाद यह मिला कि एक तुकबंदी फूट पड़ी, परंतु तुकबंदियों का दौर अधिक दिन न चला, कहानियाँ लिखने लगा। कुछ लिखीं, फाड़ीं, कुछ सहेजीं, उनमें भी छाँटकर दो छोटी कहानियाँ अपने साथ ले गया था। उन्हें पांडेय जी की सेवा में अर्पित कर दिया। वे बोले—परसों आइएगा।

हम परसों पहुँचे। न मिले। कई दिन लगातार गए, दर्शन न हुए। मुझे स्वाभाविक रूप से पांडेय जी का मत सुनने की बड़ी इच्छा थी। एक दिन मिल गए। पहुँचते ही मेज पर रखे कागजों में दबी हुई मेरी कहानियाँ निकालीं और कहा—'लिखते तो अच्छा हैं, पर बहुत-सी बातें एक साथ कहानी में भरने की चेष्टा न कीजिए। कहानी में एक भाव से अधिक पेंट करने की गुंजाइश नहीं होती।'

मेरे लिए ये सीधी बातें भी एकाएक न समझ में आनेवाली थीं। केवल दो बातें पल्ले पड़ीं—मैंने कहानी में बहुत-कुछ एक साथ ठूंस दिया है—यह न करना चाहिए, एक भाव देना चाहिए। यह छोटा मंत्र नहीं था। मुझे बड़ी दूर तक ले गया।

आठ-दस बार जाने आने के बाद ही उनके मुह से मेरे लिए 'आप' शब्द का प्रयोग बंद हुआ। मैं बड़ी जल्दी-जल्दी कहानियाँ ले जाया करता और ऐसा

तब अवश्य ही होता जब कि पांडेय जी किसी कहानी की प्रशंसा कर देते थे। एक दिन हँसकर बोले—'मुर्गी अंडा रोज देती है, मगर हर अंडे में जान नहीं हुआ करती।'

उनके छोटे-छोटे संकेत मुझे बाँध देते थे। कहानियाँ जब छपने लगी तो कुछ दिन चंडीप्रसाद जी 'हृदयेश' और 'प्रसाद' की 'भाषा'-शैली का अनुकरण कर चटपट भारी-भरकम साहित्यिक बन जाने की लालसा जागीं। कोषों से अनेक कठिन शब्द चुन-चुनकर मैं प्रयोग में लाने लगा। तब पूज्य पांडेय जी फिर से माधुरी के संपादक हो चुके थे। कहानी तो छाप दी। उसके छपे हुए रूप को देखने पर मुझे अपने चुने हुए कठिन शब्द कहीं न दिखायी दिये। बुरा लगा, पर पांडेय जी से कुछ भी कहने का साहस नहीं कर सकता था। तैश में आकर एक नयी कहानी लिखी, खूब कठिन शब्द चुन-चुनकर भरे और माधुरी आफिस पहुँच गया। पांडेय जी उस समय प्रायः खाली थे। उन्होंने उसी समय कहानी उठा ली। पढ़ने लगे, लाल कलम उठायी और बोले—'अब तुम बहुत विद्वान हो गये हो। फुटनोट में शब्दार्थ लिखने पड़ेंगे।' यह कह कर कठिन और बेतुके शब्द बदलने आरंभ कर दिये।

वे सरल और मुहावरेदार भाषा के हामी थे। मैं पांडेय जी के इस मंत्र की शक्ति आज पहचान रहा हूँ।

(३१)

श्रीनारायण चतुर्वेदी, 'सरस्वती'-संपादक, ए. पी. सेन मार्ग, लखनऊ

पं० रूपनारायण जी पांडेय से मेरा पहिला परिचय आज से प्रायः पचास वर्ष पहले हुआ था। उस समय मैं हाई स्कूल का विद्यार्थी था। पांडेय जी कुछ दिनों मेरे पूज्य पिता जी के साथ काम करने प्रयाग आये थे, और बाद में वे इंडियन प्रेस में हो गये थे। किंतु उस समय विद्यार्थी होने के कारण उनसे अधिक घनिष्ठता नहीं हुई। इसके कुछ ही दिनों बाद मैंने 'चारण' नामक कविता की एक पुस्तक लिखी, और मेरी इच्छा उसे इंडियन प्रेस से प्रकाशित कराने की हुई, मैं इण्डियन प्रेस के स्वामी स्व० श्रीचिंतामणि घोष से मिला, और उन्होंने उसकी

पांडुलिपि रख ली तथा कुछ दिनों बाद अपना निश्चय बतलाने का वचन दिया। बाद में मालूम हुआ कि उन्होंने उसे सम्मति के लिए पांडेय जी को दे दिया था। पाण्डेय जी ने उसके प्रकाशन के पक्ष में सम्मति दी।

एक विद्यार्थी का वह बाल-प्रयास था, किंतु पांडेय जी आरंभ से नये लेखकों और कवियों को प्रोत्साहन दिया करते थे। इसी भावना से उन्होंने मेरी उस अति साधारण कृति को इण्डियन प्रेस से प्रकाशित करने की सम्मति दे दी। उन दिनों इण्डियन प्रेस से केवल ऊंचे दर्जे की ही पुस्तकें प्रकाशित होती थीं, और साधारण लेखक भी वहाँ से अपनी पुस्तकें प्रकाशित कराने को बहुत उत्सुक रहा करते थे।

पांडेय जी में कई विशेषताएँ थीं। वे गजब के परिश्रमी थे। उनका विद्या व्यसन बड़े ऊँचे दर्जे का था। वे आत्म-प्रचार नापसंद करते थे। हिंदी की सेवा और हिंदी साहित्य की समृद्धि उनके जीवन का लक्ष्य था। वे बड़े निरभिमानी थे। कभी कभी उनकी अवस्था, कृतित्व और हिंदी संसार में उनकी पद-मर्यादा देखते हुए उनकी विनयशीलता लोगों को असमंजस में डाल देती थी। किंतु वह उनका स्वाभाविक गुण था। छोटों-बड़ों सबके साथ उनका व्यवहार समान विनयशीलता का होता था। स्वभाव के भी वे बड़े मृदु थे। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने अपने पचास वर्ष के परिचय में उन्हें कभी क्रुद्ध या उत्तेजित होते हुए देखा हो।

खड़ीबोली की कविता करने में वे बड़े सिद्धहस्त थे। प्रचार न होने के कारण अभी तक उनकी कविताओं का ही मूल्यांकन नहीं हो सका। संपादक के रूप में उन्हें बड़ी सफलता मिली। द्विवेदी जी के बाद हिंदी में शायद ही और किसी सम्पादक ने प्राप्त और स्वीकृत लेखों का इतने परिश्रम और इतनी योग्यता से सम्पादन किया हो जितने परिश्रम और योग्यता से वे उनका सम्पादन करते थे। किंतु अनुवाद के क्षेत्र में वे बेजोड़ थे। बँगला और संस्कृत की सैकड़ों पुस्तकों का अनुवाद करके उन्होंने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। उनके अनुवाद अनुवाद नहीं मालूम होते थे। उन्हें पढ़ने में मूल पुस्तक का आनंद आता था। साथ ही वे अनुवाद की शुद्धता का बड़ा ध्यान रखते थे, कभी कभी तो किसी शब्द का उपयुक्त पर्याय न मिलने पर वे कई दिनों तक अनुवाद रोक देते थे, और जब तक उपयुक्त पर्याय न मिल जाता तब तक आगे न बढ़ते। इसी कारण उनके

अनुवाद बहुत शुद्ध होते और बड़ी से बड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते। उन्होंने लखनऊ की हिन्दुस्तानी बुकडिपो के लिए श्रीमद्भागवत का अनुवाद किया था। प्रकाशकों ने महामना मालवीय जी से उसकी भूमिका लिखने की प्रार्थना की। मालवीय जी श्रीमद्भागवत के बड़े भक्त और मर्मज्ञ थे। वे उसका पाठ नित्य किया करते थे। मालवीय जी ने कहा कि बिना अनुवाद की जाँच किये हम भूमिका न लिखेंगे। उन दिनों वे स्वास्थ्य सुधार के लिए मसूरी में ठहरे हुए थे। अतएव पांडेय जी अनुवाद लेकर मसूरी गये और वहाँ उनके पास कई सप्ताह ठहरे। मालवीय जी मूल लेकर कई घंटे नित्य पांडेय जी से अनुवाद सुनकर मूल से मिलाया करते। अंत में वे अनुवाद की शुद्धता और उसके भाषा-सौष्ठव से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक भूमिका लिख दी।

हिंदी का जो आज स्वरूप है और उसे आज जो स्थान प्राप्त है, उसे बनाने और सँवारने में जिन्होंने "नीव की ईंटों" का काम किया है, उनमें पांडेय जी का स्थान प्रमुख है। उन्हीं के समान हिंदी-निष्ठ, व्रती और तपस्वी लोगों के पुण्य प्रताप से हिंदी अपने वर्तमान स्तर पर पहुँची है। यदि हममें कृतज्ञता की तनिक भी भावना है तो हम उनके कार्य और व्यक्तित्व को कभी नहीं भूल सकते। यदि हम उन्हें भुला देंगे तो भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत ही सूख जायगा। इसलिए, स्वीकार की दृष्टि से भी, उन्हें और उनके कार्यों को याद रखना आवश्यक है। एक हिंदी सेवक और उनके पुराने मित्र होने के नाते मैं उनकी स्मृति में सादर नतमस्तक हूँ।

(३२)

डा० व्रजकिशोर मिश्र, पी-एच. डी. हिंदी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ

बाल्यावस्था में हम लोग कविताएँ याद करते थे। पू० चाचा जी कविताएँ लिख देते, याद कराते और उसके बाद आस-पास के बच्चों को एकत्र करके 'पढ़ंत सम्मेलन' करवाते; इनाम देते। मुझे एक कविता याद कराई गई थी—'दलित कुसुम'

अहह अधम आँधी ! आ गई तू कहाँ से—
प्रलय घन घटा-सी छा गई तू कहाँ से—
पर दुख सुख तूने हाय, देखा न भाला !
कुसुम अधखिला ही हाय यों तोड़ डाला ! इत्यादि

और इसी कविता से मेरा परिचय हुआ था कविवर पांडेय जी से । इसके उपरांत उनकी सरल, स्वाभाविक शैली में लिखी हुई कविता 'वन विहंगम' मैंने पढ़ी । वह ऐसी रुची कि उसे अपनी संग्रह-पुस्तिका में लिख लिया ।

बन बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में एक कपोत कपोती कहीं ।
दिन रात न एक को दूसरा छोड़ता ऐसे हिले मिले दोनों वहीं । इत्यादि

आज भी उसकी अभिव्यंजना की सादगी पर मन मुग्ध हुआ करता है ।

हाई स्कूल कक्षाओं में नाटक खेलने की धुन सवार हुई । डी० एल्० राय के चंद्रगुप्त के कुछ दृश्य हम विद्यार्थियों ने प्रस्तुत किए । बंगला की कोमल कांत पदावली को जिनके कुशल करों ने हिंदी में उतारा था, वह सफल अनुवादक पाण्डेय जी ही थे । इतनी काव्यत्वमयता, भावुकता, स्पष्टता का संयोजन, सफलता के साथ करने की क्षमता यदि थी तो केवल एक ही व्यक्ति में, और वह थे पांडेय जी । वहीं से मैं अनुवादक पाण्डेय जी से परिचित हुआ और फिर तो उनके द्वारा अनूदित डी० एल० राय के प्रायः सभी नाटक पढ़ गया और अभिनीत होते हुए देखे । पांडेय जी की क्षमता की सीमा यह थी कि एक ओर बंगला पुस्तक तथा दूसरी ओर कागज-कलम लेकर बैठ जाते थे और बिना कहीं काट पीट किए, धारा प्रवाह अनुवाद करते थे । क्या मजाल कि यथा रूप अभिव्यंजना न प्रस्तुत कर दें !!

उन्हीं दिनों गंगा पुस्तक माला, लखनऊ से माधुरी का प्रकाशन हो रहा था । पं० दुलारेलाल भार्गव तथा पाण्डेय जी उसके सम्पादक थे । मैं स्वर्गीय पूज्य पिता जी पं० कृष्णबिहारी जी मिश्र के साथ रहकर स्थानीय क्वीन्स स्कूल में पढ़ता था । उन्हीं दिनों आदरणीय पाण्डेय जी का सौम्य दर्शन मुझको हुआ था । ये थे संपादक पाण्डेय जी ।

सफेद कमीज, काली वास्कट, घड़ी चेन, काली टोपी, कुछ ऊँची धोती तथा काला पम्प शू, यह थी उनकी पोशाक । आँखों में सुरमा, मुख में पान, उनकी विशेषता रही; बड़ा ही विनयशील परन्तु विनोदी उनका स्वभाव रहा ।

पू० पिता जी का नाम यद्यपि संपादक के स्थान पर तब तक छपता नहीं

था किन्तु वे अवैतनिक रूप से माधुरी के काम में बहुत सहयोग दिया करते थे। मैं धीरे-धीरे उस वातावरण से परिचय प्राप्त कर रहा था।

कुछ वर्ष पूर्व हिन्दी सभा, सीतापुर के अधिवेशन में आचार्य पाण्डेय जी का भाषण था। उनकी आँखें आई हुई थीं, किंतु उनकी आत्मीयता उन्हें सीतापुर खींच ही ले गई; मेरे पूज्य पितृव्य, श्री डा० नवलबिहारी जी मिश्र (मंत्री, हिंदी सभा, सीतापुर) की बात, अपने संकोचशील स्वभाव के कारण वे न टाल सके। उनका भाषण उनकी उपस्थिति में मैंने पढ़कर सुनाया, उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

लखनऊ के पुराने साहित्य-संरक्षकों में पाण्डेय जी का स्थान कितना ऊँचा था, इसकी माप करने का प्रयत्न धृष्टता होगी। कराल काल की लू रूपी ज्वाला ने उन्हें हमसे छीनकर आत्मसात् कर लिया; हम आँखों पर हाथ धरे उस ज्वाला की झार ही बचाते रहे!! आँख खुलने पर देखा!! क्या से क्या हो गया; और तब केवल कवि की यही उक्ति स्मरण करके धैर्य धारण करना पड़ा—

है विकास सर्वत्र नाश का सूचक हममें।
होकर पूर्ण सुधांशु तूर्ण होता है तम में।
किंतु चन्द्र तो हाय, दृष्टि में फिर आता है।
हममें से जो गया, सदा ही को जाता है।
फिर भी अपना कुछ वश नहीं, यह विधि का व्यापार है।
हे हृदय, शान्त हो, धैर्य धर, मिथ्या सोच विचार है।

(३३)

श्री ज्ञानचंद जैन एम. ए., अहियागंज, लखनऊ

लखनऊ का रानीकटरा मुहल्ला एक ऐतिहासिक महत्व रखता है। स्व० जगतनारायण मुल्ला इसी मुहल्ले की देन थे। 'फिसाने आजाद' के अमर लेखक श्री रतनलाल सरशार भी इसी मुहल्ले के रत्न थे।

इस मुहल्ले से लगी एक अत्यंत पतली गली है, जिसमें दिन में भी सूरज की धूप मुश्किल से पहुँच पाती है। इस गली में एक छोटा-सा दुमंजला मकान है जिसका अब नवीनीकरण हो गया है और उस पर सीमेंट से लिख गया है—

रूपनारायण पांडेय। इस गली को भी कुछ साहित्य-प्रेमियों ने रूपनारायण पांडेय वीथी कहना शुरू कर दिया है, वैसे इसका पुराना नाम खेतगली है।

पंडित रूपनारायण पांडेय का स्मरण आते ही मेरी आँखों के सामने इस गली और इसमें स्थित उनके दुमंजिले मकान के बैठके के भीतर की उस छोटी-सी कोठरी का चित्र आ जाता है, जिसमें बैठकर वह नित्यप्रति साहित्य-साधना किया करते थे। आज भी यह आभास नहीं होता कि पांडेय जी नहीं रहे।

मुझे पांडेय जी से जब भी मिलना होता, मैं सुबह ही निकल जाता था। उनके मकान के सामने पहुँचकर मुझे आवाज देने की जरूरत नहीं पड़ती थी। कोठरी में एक छोटी-सी मेज के सामने कुर्सी पर बैठी हुई भव्य मूर्ति की झलक बाहर की खिड़की से मिल जाती थी।

लेखन-कार्य पांडेय जी का नित्यप्रति का नेम था। उन्हें कलम का सच्चा मजदूर कहा जा सकता है। अपनी मृत्यु से दो दिन पहले तक वह लिखने में व्यस्त रहे।

पांडेय जी के पहली बार जब दर्शन किये, तब मैं विद्यार्थी था। मेरी अवस्था मुश्किल से १६-१७ वर्ष थी। इंटर में पढ़ता था। पांडेय जी उस समय पचासे के निकट थे। परंतु पहली ही भेंट में उन्होंने वय का कोई अंतर नहीं अनुभव होने दिया। पांडेय जी किसी को भी अपने से छोटा नहीं मानते थे। सबको बराबरी का बर्ताव देते थे। जब तक अपरिचय की दीवाल रहती थी, तब तक ऐसा लगता था कि वे बड़े स्वल्पभाषी हैं। परंतु अपरिचय की दीवाल टूटते ही उनकी वाग्मिता का परिचय मिलने लगता था। उनके पास यदि दिन भर भी बैठा जाता तो उनकी बातों का खजाना खाली नहीं होता था।

पांडेय जी अच्छे बैठकबाज थे। जवाबी खूब लड़ाते थे। बात करने की कला में पारंगत थे। बात-बात में बड़ी मीठी चुटकी लेते थे। अपनी ही नहीं ओटते थे; दूसरे की बात में भी उतना ही रस लेते थे, जितना अपनी बात में। उनकी सहृदयता का परिचय पग-पग पर मिलता रहता था। बातचीत में कभी भी दम्भ या आत्मश्लाघा की गंध नहीं आने देते थे। वैसे वह बड़े स्वाभिमानी थे, परंतु अक्खड़ नहीं थे। अपने बड़ों के प्रति ही नहीं, छोटों के

प्रति भी विनम्रता बरतते थे। मैंने उनको क्रोध में बहुत कम देखा। यदि क्रोध का प्रसंग भी आता तो बड़ी जल्दी उसे दार्शनिक रूप देकर बात को पचा जाते थे। जिस व्यक्ति को पसंद न करते या जिससे मतभेद होता, उससे उलझने के बजाय, उससे कतरा जाते थे। उन्हें अपने रास्ते पर चलना पसंद था, अपने रास्ते से हटकर दूसरे से उलझना भाता न था। ओछे व्यक्तियों या ओछे व्यवहार को पसंद न करते थे। ठकुरसुहाती की आदत न थी। सबसे बेलौस खरा ईमानदारी का व्यवहार रखते थे। 'न ऊधो का लेना, न माधो का देना' के सिद्धांत पर चलनेवाले थे। बड़े संतोषी व्यक्ति थे। शिकायत या गिलवा में विश्वास न करते थे। जितनी अपनी चादर देखते, उतना ही पैर फैलाते थे। कठिन से कठिन परिस्थिति में हमेशा चेहरे पर मुस्कान रहती थी। सुख-दुःख में समभाव रखते थे। दुख पड़ने पर 'दैया-दैया' करने की आदत न थी। कंजूस न थे, परंतु कभी इतना पैसा भी न रहा कि अंतर की दरियादिली का परिचय दे पाते। वैसे दिल से बड़े उदार थे। दूसरे का दुख देखकर बड़ी जल्दी पिघल जाते थे। दीन-दुखी की यथाशक्ति सहायता करते थे।

पांडेय जी संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे। उन्होंने बँगला का ज्ञान भी अपने संस्कृत ज्ञान के बल पर अर्जित किया। बँगला किसी से सीखी नहीं, अपने ही प्रयास से उसमें गति प्राप्त कर ली। एक बंगाली सज्जन ने 'कृत्तिवास रामायण' का हिंदी में पाठ्यानुवाद करने की सलाह दी। बस, उसी अनुवाद से बँगला-साहित्य में प्रवेश हो गया। अँग्रेजी स्वल्प जानते थे, परंतु अँग्रेजी-साहित्य का अच्छा ज्ञान था। अपने समय की सभी साहित्यिक, राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों का परिचय रखते थे। विद्या-संबंधी चर्चा में बड़ा रस लेते थे। स्वभाव से मननशील, जिज्ञासु, प्रत्येक नवीन बात की जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता रहती थी। सीखने का भाव बराबर बना रहा। उसमें बड़े-छोटे का कोई ख्याल न करते थे। हर एक से सीखने और गुनने को तैयार रहते थे। उनके मन और मस्तिष्क की खिड़कियाँ सदैव खुली रहीं। किसी नवीन विचारधारा पर उन्होंने कभी इसलिए नहीं नाक-भौं सिकोड़ी कि वह पुरानी रूढ़िवादिता पर चोट करती है। वह प्रत्येक नवीन धारा को सहृदयता से आत्मसात करने और उसका मूल्यांकन करने को तैयार रहते थे।

उसमें जो भी सार होता उसे हृदयंगम कर लेते और दाद देते। यही कारण है कि पांडेय जी कभी अपने युग से पिछड़े नहीं, हमेशा अपने युग के साथ रहे। यह उनकी एक बहुत बड़ी विशेषता थी। पांडेय जी ने जिस समय साहित्य-सेवा आरम्भ की, उस समय खड़ीबोली बनाम व्रजभाषा कविता का विवाद जोरों पर था। पांडेय जी स्वयं व्रजभाषा काव्य के प्रेमी थे। उन्होंने स्वयं भी व्रजभाषा में प्रचुर काव्य-रचना की थी। व्रजभाषा में उनकी यह काव्य-रचना बराबर चलती रही। परंतु खड़ीबोली कविता का भी उन्होंने आरम्भ से स्वागत किया। यही नहीं, उन्होंने खड़ीबोली में उस समय काव्य-रचना की, जिस समय उसका शैशव काल था। खड़ीबोली काव्य में जो नये-नये प्रयोग हुए, उन्होंने उनका सहृदयता के साथ सदैव स्वागत किया। निराला की कविताओं को उन्होंने उस समय सम्मान दिया, जिस समय उनके प्रशंसक थोड़े थे, खिल्ली उड़ानेवाले अधिक थे।

पांडेय जी मूलतः कवि थे। काव्य-चर्चा छिड़ते ही उनके अंतर का रस फूट पड़ता था। संस्कृत कवियों के ललित छंदों की जब वे व्याख्या करने लगते थे तो उनके पास से उठने को जी नहीं चाहता था। पांडेय जी को व्रजभाषा कवियों की न जाने कितनी कविताएँ याद थीं। वे व्रजभाषा की कविताएँ बड़ी रुचि से सुनते थे। जिनको व्रजभाषा की कविताएँ याद होतीं, उनसे अनुरोध करके पुराने छंद पढ़वाते ; खड़ीबोली कविता में भी समान रस लेते थे। किसी कविता का कोई टुकड़ा अच्छा लगने पर, उसके जोड़ का किसी संस्कृत कवि का पुराना छंद चाव से सुनाते थे। कवि समाज के बीच उनका वैसा ही सहज भाव हो जाता था, जैसा जल में मीन का रहता है। यदि काव्य-चर्चा चलती रहती तो वे जरूरी-से-जरूरी काम बरका जाते थे, एक प्रकार से खाना-पीना-सोना सब भूल जाते थे। परंतु कवि-सम्मेलनों से कोसों दूर भागते थे। उनका ख्याल था कि कवि-सम्मेलनों में गलेबाजी का अधिक प्रदर्शन होता है, वास्तविक काव्य-शक्ति का बहुत थोड़ा परिचय मिलता है। आत्म-विज्ञापन से दूर भागने की प्रवृत्ति इतनी अधिक थी कि कवि-सम्मेलनों के सभापतित्व का का बुलौवा आने पर प्रायः घर से खिसक जाते थे।

पांडेय जी एक सिद्धहस्त सम्पादक थे। 'नागरी प्रचारक' और 'निगमागम

चंद्रिका' से लेकर 'इन्दु', 'सुधा' और 'माधुरी' तक उन्होंने लगभग आधे दर्जन पत्र-पत्रिकाओं का सफल संपादन किया। एक समय उनकी संपादित 'सुधा' और 'माधुरी' का साहित्य-जगत में उतना ही मान था, जितना 'सरस्वती' का। 'इन्दु' ने हिन्दी मासिक पत्रों में अपनी प्रभा उस समय फैलायी जिस समय 'सरस्वती' के आगे और कोई पत्रिका ठहर नहीं पाती थी। हिंदी जगत को प्रसाद की प्रतिभा का सर्वप्रथम परिचय 'इन्दु' से मिला। यद्यपि 'इन्दु' के मुखपृष्ठ पर संपादक के रूप में पांडेय जी का नाम नहीं छपता था, परंतु यह एक सर्वविदित तथ्य है कि इसका संपादन मुख्य रूप से वे ही करते थे। आधुनिक हिंदी-साहित्य का सम्यक् इतिहास लिखने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि 'इन्दु' की फाइलों का पुस्तकाकार प्रकाशन किया जाय। इसमें बहुत-सी दुर्लभ सामग्री छिपी पड़ी है।

पांडेय जी 'सुधा' के आदि सम्पादकों में थे। जब तक पांडेय जी 'सुधा' के सम्पादक मंडल में रहे, पत्रिका खूब चमकी। 'माधुरी' से तो पांडेय जी का सबसे दीर्घकालीन संबंध रहा। बीच के सिर्फ ७ वर्षों को छोड़कर इस पत्रिका के जन्मकाल से अवसान काल तक उनका उससे अविच्छिन्न संबंध रहा। पांडेय जी ने 'माधुरी' के द्वारा अनेक नये-नये लेखकों और कवियों को चमकाया। इस दृष्टि से हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में उनका योगदान आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के बाद सबसे महत्वपूर्ण है।

हिंदी भाषा के संस्कार में पांडेय जी ने कितना बड़ा योगदान दिया, इसका अंदाजा उनकी संपादित प्रेस कापियों को देखकर लगाया जा सकता है। खेद है कि इन प्रेस-कापियों को सुरक्षित रखने का कोई प्रयास नहीं किया गया। अब भी विविध प्रेसों तथा प्रकाशन-संस्थाओं में उनकी संपादित जो भी पांडुलिपि मिल जाय, उसका संकलन अविलम्ब हो जाना चाहिए। इन पांडुलिपियों से ही पता चल सकता है कि हिंदी-भाषा पर पांडेय जी का कितना अधिकार था।

कई वर्षों तक मेरा नित्यप्रति का कार्यक्रम था कि मैं 'माधुरी' कार्यालय पहुँच जाता था और वहाँ पांडेय जी के पास बैठकर उनकी संपादित प्रेस-कापियों को देखा करता था। मैं देखता था कि पांडेय जी किस तरह भाषा में

थोड़ा हेर-फेर करके उसे व्यवस्थित और सुबोध बना देते हैं और लेखक के मूल भाव को अधिक स्पष्ट कर देते थे। बड़े-बड़े महारथियों की रचनाओं पर उनकी संपादकीय कलम चलती रहती थी। गद्य और पद्य, दोनों प्रकार की रचनाएँ उनकी कलम के स्पर्श से नई आभा प्राप्त कर लेती थीं। उन्होंने अपने जीवन-काल में न जाने कितनी पाठ्य-पुस्तकों को संशोधित कर उन्हें सर्वथा नया रूप दे डाला था। वे दुर्बोध से दुर्बोध विषय को अत्यंत सुगम बना देते थे। खेद है कि आज हिंदी में इस प्रकार के समर्थ संपादक बहुत थोड़े दिखाई पड़ते हैं। यही कारण है कि आज हिंदी-भाषा की सबसे अधिक हत्या हिंदी पत्रों के द्वारा हो रही है और इस ओर कोई ध्यान देनेवाला नहीं है।

पांडेय जी एक सफल अनुवादक थे, इसे प्राय: सभी साहित्यिक इतिहास-ग्रंथों में स्वीकार किया गया है, परंतु जिस बात की ओर कम ध्यान दिया गया है वह यह है कि प्रेमचंद के उपन्यासों और प्रसाद के नाटकों की जमीन तैयार करने में उनके अनुवाद-साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। मेरा ऐसा मत है कि हिंदी-साहित्य को पांडेय जी की देन का समुचित मूल्यांकन होना अभी शेष है। मुझे विश्वास है कि हिंदी साहित्य के भावी इतिहासकार और शोध के विद्यार्थी इस ओर समुचित ध्यान देंगे।

(३४)

डा० राजनाथ पाण्डेय, सागर विश्वविद्यालय, सागर

श्रद्धेय स्वर्गीय पं० रूपनारायण जी पांडेय के नाम से मैं तभी परिचित हुआ था जब प्रथम बार 'माधुरी' के दर्शन मिले थे। यह बात कोई ४० वर्ष पहले की है। फिर मैं जब स्कूल में पढ़ता था तब मेरी एक रचना—कविता—(सर्वप्रथम प्रकाशित रचना) सन् १९२६ में 'माधुरी' में ही छपी थी। कह नहीं सकता कि उस समय पांडेय जी 'माधुरी' के संपादक थे या नहीं। जहाँ तक याद आता है उस कविता को छापने की स्वीकृति स्वर्गीय श्रद्धेय पं० मातादीन जी शुक्ल के हस्ताक्षर से प्राप्त हुई थी। श्रद्धेय पांडेय जी की कविता 'वन-विहंगम' के प्रथम छन्द ने मुझे इतना प्रभावित किया था कि उस छन्द को मैं वर्षों तक अपने निर्द्वन्द्व और विरामपूर्ण क्षेत्रों में घंटों गुनगुनाता रहता था। उनके

सान्निध्य का तो हमें कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ किन्तु हमारे मन पर उनके अमित उपकार और अनन्त आभार हैं। मेरे पूज्यपिता जी उनके द्वारा किये हुए अनुवाद 'शुकोक्ति सुधासागर' के इतने प्रेमी थे कि एक दुर्घटना में अपनी प्रति के जल जाने पर ८४ वर्ष की अवस्था में मुझसे कहा था कि 'यदि शुकोक्ति सुधासागर पुन: मिल जाता तो मैं १० वर्ष और जी सकता हूँ।' उस समय प्रति अप्राप्य थी और पिता जी एक वर्ष बाद स्वर्गवासी हुए थे।

(३५)

श्री जितेंद्र भारतीय, एम. ए. १०६५ सी, गोपालिकुंज, महानगर, लखनऊ

श्री पं० रूपनारायण जी पाण्डेय यद्यपि आज पार्थिव शरीर से हम लोगों के साथ नहीं हैं, परन्तु यशश्शरीर से वे हमसे पृथक भी नहीं हैं। उन्होंने अपने स्वभावोद्भूत अनुपम गुणों के द्वारा साहित्य-मनीषियों के अन्तकरणों पर अपनी प्रतिभा का प्रतिबिम्ब डाल दिया है। वस्तुत: "सादा जीवन और उच्चविचार" के वे व्यावहारिक रूप थे। हिन्दी साहित्य से विशेषाभिरुचि रखनेवाले सभी उनकी प्रतिभा से परिचित थे। उनकी सज्जनता, उदारता, सहिष्णुता, शालीनता, मधुरभाषिता, विनोदप्रियता आदि ने उन्हें पूजनीय बना दिया था।

मुझे भली भाँति स्मरण है कि मैं जब १९४१ में श्री पाण्डेय जी के सम्पर्क में आया तो मुझे उनकी निरभिमानता एवं सात्विकता ने अधिक आकृष्ट किया। पाण्डेय जी मेरे चाचा रामनाथ जी से पूर्ण परिचित थे। जब मैंने उन्हें अपना परिचय दिया तो वे बोले—उतनी दूर बदरीनाथ से तुम पढ़ने के लिए यहाँ आए ? (उन दिनों मैं साहित्याचार्य की परीक्षा दे रहा था) मैंने कुछ कारण बताये तो पाण्डेय जी बोले—अध्यवसाय ही व्यक्ति का सच्चा मित्र होता है। मैं पाण्डेय जी से इसी भाँति प्रेरणा पाया करता था और उनकी स्पष्टवादिता पर मुग्ध होता रहता था। एक बार मैं अपना लेख "उत्तर रामचरित और भवभूति" लेकर जब उनके पास गया तब उन्होंने उस लेख को पढ़ कर कहा था—लिखा तो पाण्डित्यपूर्ण है, पर लेख में ग्रंथि शैथिल्य है। तुम घर पर आओ तो कुछ समझा दूँ।

मैं पाण्डेय जी की प्रेरणा से उनके घर पर गया। उन्होंने लेख को वहीं पर

काट-छाँट कर पद एवं वाक्यों में यत्रतत्र परिवर्तन कर दिया और फिर स्वयं पढ़ा। लेख में नव जीवन और ओज आ गया था। तब वह लेख माधुरी में प्रकाशित हुआ था।

इसके पश्चात् मैं बराबर पाण्डेय जी से प्रेरणा पाता रहा। उनके व्यवहार से मैंने अनुमान लगाया कि वे कितने निष्कपट और सरल हृदय के भावुक व्यक्ति हैं। लेखकों के प्रति उनका दृष्टिकोण कितना हितकर था! उनकी संस्कृत-मर्मज्ञता का सर्वोच्च उदाहरण है श्रीमद्भागवत का अनुवाद। अनुवाद का काम अत्यन्त कठिन होता है और उस पर भी भागवत का; क्योंकि कहा गया है कि भागवत विद्वानों की कसौटी है। यदि वे संस्कृत के गूढ़ अध्येता एवं मर्मज्ञ न होते तो इतना सफल अनुवाद न कर सकते। एक दिन मैंने इसी बात की पुष्टि के लिए वहीं नवल किशोर प्रेस में ही पूछा—श्रीमन् "भागवत में 'गोपीगीत' का क्या रूपक है" ? तब उन्होंने भागवतीय वैष्णवभक्ति के साथ वेदान्त का जैसा सूक्ष्म निरूपण कर विश्लेषण किया उससे मैंने वहीं पर उनके चरण पकड़ लिये और कहा—आप अगाध पाण्डित्य के पयोधि हैं। तब से मेरा सम्पर्क उनके साथ उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

आगे चल कर जब मैं शतदल की गोष्ठियों में आने जाने लगा तब घनिष्ठता आत्मीयता के रूप में परिणत होती गई और मैं उनके उस सम्पर्क को पाकर अपने को धन्य समझने लगा। मैंने जब उन्हें अपनी 'अलका की विरहिणी', 'हंसदूत' आदि कृतियों को दिखाया तब उनका यह आशीर्वाद था कि तुम संस्कृत साहित्य से हिन्दी को अवश्य कुछ दोगे। उन्हीं के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से मैं कुछ लिखने पढ़ने की ओर विशेष झुका। मेरे इस कथन का अभिप्राय यह है कि मेरे जैसे न जाने कितने व्यक्तियों को उनसे प्रेरणा मिली और कितने व्यक्ति निकम्मे होकर भी कुछ काम करने लगे। यह पाण्डेय जी की सहृदयता एवं सौजन्य का ही प्रभाव था। उनके व्यक्तित्व में यह आकर्षण था कि जो एक बार भी उनके संपर्क में आ जाता था वह उनका अपना हो जाता था। यही कारण था कि वे किसी भी वर्ग या दल विशेष के नहीं थे और सभी उनका समान भाव से मान करते थे। लखनऊ की सभी साहित्यिक संस्थाएँ उनके सम्पर्क में थीं और वे सभी को सद्भावना से सत् प्रेरणा देते रहते थे।

(३६)

श्री अवधबिहारी लाल अवस्थी 'द्विज विमलेश', सआदतगंज, लखनऊ

पंडितप्रवर रूप नारायण जी पाण्डेय अपनी असाधारण प्रतिभा के कारण साहित्य के गगन पर इन्द्र के समान प्रतिभासित हो रहे थे। श्री मद्भागवत, रामायण, गीता आदि ग्रन्थों का तिलक तो अनेक विद्वानों ने किया और आपने भी किया, किन्तु बँगला से हिन्दी में अनुवाद यदि किसी ने सुन्दरता से किये तो वह पाण्डेय जी ही थे। आपने मध्यकालीन कवियों की अनेक रचनाओं की टीका भी की थी। अपने कुल प्रकाशित ग्रंथों की संख्या का बताना स्वतः पाण्डेय जी के लिए भी असम्भव ही था।

लखनऊ में चैत्र वदी अष्टमी को बहुत प्राचीन समय से सीतला जी का मेला लगता है जो 'आठों के मेले' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके पश्चात नगर के प्रसिद्ध मोहल्लों में बारी-बारी से यह मेला होता चला आ रहा है। चौपटियों का मेला भी अपनी एक विशेषता रखता है। पाण्डेय जी अक्सर उस मेले का निरीक्षण किया क ते थे। जब हम अपने दल बल सहित भाट और भाटिन का स्वाँग बना कर चौपटियों के मेले में लाते थे तब यदि पाण्डेय जी की दृष्टि कहीं पड़ जाती थी तो वह अनायास ही कह उठते थे कि देखो 'विमल दंगली' आ रहे हैं। वह हमें और दो चार साहित्य प्रेमियों को लेकर श्रद्धेय पं० राधेनारायण वाजपेयी के यहां पहुँचते थे जहाँ रात्रि के दो दो बजे तक मध्यकालीन कवियों की रचनाओं को हम लोगों से सुना करते थे। ऐसे अवसरों पर पाण्डेय जी और वाजपेयी जी भी अपनी रचनायें सुनाते थे तथा हम लोगों की रचनाओं का भी रसास्वादन करते थे। उनकी रीतिकालीन जैसी रसरंजित रचनाओं को सुनकर सहसा मतिराम, पदमाकर, कविन्द तथा कालिदास की स्मृति हो आती थी।

पांडेय जी अन्य 'अखाड़े बाजों' से हमें भिड़ा दिया करते थे और तब वास्तव में काव्यानंद का रसास्वादन हम लोगों को प्राप्त हुआ करता था तथा पूरी पूरी रात्रि काव्य रस पान में हम लोग बिता देते थे। काव्य के अंगों के पांडेय जी ज्ञाता थे तथा रसज्ञ भी। उन्हें प्राचीन काव्य शैली पर अटूट श्रद्धा एवं भक्ति थी।

पांडेय जी की रुग्णावस्था में मैं कई बार मिला; किंतु होली पर मैं स्वयं अस्वस्थ होने के कारण उनसे न मिल सका। पांडेय जी ने अपनी अस्वस्थता के

समय पर मुझसे कई बार कहा कि जब मैं स्वस्थ होऊँगा तब आपके संबंध में कुछ लिखूँगा, किन्तु उनके वे विचार उनके साथ ही चले गये, फिर भी पाण्डेय जी हमें वह प्रेरणा, उत्साह तथा साहस आशीर्वाद के रूप में दे गये हैं जो हमारा मार्ग-दर्शन करता रहेगा ।

(३७)

श्री बंशीधर शुक्ल, एम० एल० ए०, लखीमपुर, खीरी

लोकपूज्य पांडेय जी का नाम सुनकर न जानें क्यों ऐसा महसूस होता है कि एक परिवार का बड़ा-बूढ़ा नहीं रहा । वह हमारे सगोत्री थे । सम्भव है, यही बात हो । किन्तु हृदय में रुलाई, आँखों में आँसू वाणी रोक कर मौन होकर बैठ जाता हूँ. जी में आता है कि धाड़ मार कर रोने लगूँ । मगर सोचता हूँ कि यार लोग समझेंगे, यही उनके एकलौते भक्त बन रहे हैं ।

यों तो कोई अमर नहीं है; सबका रास्ता वही है; यह सब जानते ही हैं कि जीवन गैर इत्मिनानी है, पता नहीं किसका सार्टीफिकेट कब कट जाये; कब किसको पार्थिव शरीर छोड़ना पड़े, फिर भी मृत्यु की चिंता छोड़ कर 'जब तक श्वासा तब तक आशा' रख कर काम करना पड़ता है । यदि यह समझ लिया जाय कि मर जाना है ही, ज्यादा आडम्बर बना कर क्या होगा तो मनुष्य कुछ नहीं कर सकता है । मगर मौत की दाढ़ों में भ्रमण कर जीवन ढूंढ़ना साहसियों का काम है । वही सफल होते हैं, यहाँ से चले जाने पर भी मार्ग में सौरभ बरसा जाते हैं, उन्हीं को लोग जानेंगे ।

पांडेय जी के साहसी जीवन से हमें भी साहस मिला । यों तो बाल्यकाल में हमें भी पढ़ने का शौक था, पर गाँव में सुधा-माधुरी कहाँ नसीब!

उस समय हमारे साथी श्री गोविन्दप्रसाद मिश्रिक सीतापुर के थे । दोनों ने मिश्रिक दधीच कुण्ड में स्नान करते समय यह प्रण किया कि अब जब तक देश स्वतंत्र नहीं होगा, कोई काम नहीं करेंगे । दोनों आदमियों ने उस समय एक राष्ट्रीय गायन नाम की पुस्तक छपवायी थी; उसकी बिक्री नहीं की, बाँट दिया । कृषक-विलाप, मतवाले गीत—ये दोनों पाँच पाँच हजार पुस्तिकायें खड़े होकर बाँट दीं और कांग्रेस के सदस्य बने । वह समय था सन् १९२७ ई० का; कोई सोमवती अमावस थी । हमने दो छन्द 'सोना है' की पूर्ति और रस की समस्या की पूर्ति की थी—होश उड़ जाते देख झंडी कांगरस की, दूसरी देश के अड़े से भूलो मेम ढिग सोना है', जहाँ

जिसको सुना देते वह लोट-पोट हो जाता था। फिर देश की स्वतंत्रता में बहे, जेलों में रहे। वहाँ पांडेय जी की कुछ पुस्तकें पढ़ने का सौभाग्य मिला। बाद में छूट कर आने पर कुछ विलक्षण धुन थी। कोई काम अच्छा ही नहीं लगता था। कांग्रेस का झंडा था और हम थे। जो-कुछ लिखता कांग्रेस के पक्ष में, जन-जागृति के रूप में।

उसी समय निशंक जी की कृपा से हमें पांडेय जी के दर्शन हुए। वे नवल किशोर प्रेस में एक कुर्सी पर मेज को सामने लगाये अकेले बैठे थे। हम दोनों साथी पहुँच गये। निशंक जी साइकिल से थे, हम पैदल थे। प्रणाम किया; आशीर्वाद के रूप में सर्व प्रथम उनके प्यारे शब्द हमें सुनने को मिले। हमने उस समय 'हरवाहा चरवाहा' नाम की दो रचनायें रची थीं। पांडेय जी के पास जाकर श्री निशंक जी ने हमारा परिचय दिया। पांडेय जी ने पहले ही कह दिया, हम आपको जानते हैं। और इनकी 'चरवाहा' शीर्षक रचना की प्रशंसा भी सुनी है; मगर सुनने का अवसर नहीं मिला। हमने पांडेय जी को सुनाया, मौन मुद्रा में सुनते रहे, कोई हल्की फुल्की दाद नहीं दी। सुनने के बाद मेरी ओर देखा और कहा—तुम्हारे द्वारा अवधी का बहुत कुछ उद्धार हो सकता है यदि ध्यान लगा कर रचना रचते रहो। इतनी हिम्मत दोनों साथियों में नहीं थी कि इसका कारण पूँछते, मगर फिर उन्होंने स्वयं कहा—तुम्हारी देहात के क्षेत्र की जानकारी और शब्दों पर अधिकार, दोनों बहुत काफी हैं। हमने चरण छूए, उन्होंने पीठ पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया कि कल्याण हो। फिर कहा कि अपनी रचनायें 'माधुरी' के लिये देते जाइये। सर्व प्रथम 'चरवाहा' लिख कर दे जाइये। मैं लिख कर ले ही गया था, उन्होंने उसको अच्छे ढंग से छापा। फिर हम जो कुछ दे आते थे; आप छाप देते। हमने अवधी में एक कहानी लिखी और बिना सुनाये पांडेय जी को डाक से भेज दी। चार-पाच पन्ने खराब करके उसको उन्होंने छाप दिया। इसी प्रकार आगे भी चलता रहा।

मैं पांडेय को बड़ा बूढ़ा गुरू मानता था। मैं उनकी प्रशंसा क्या कर सकता हूँ? उन्होंने मुझे प्रशंसित किया, एक बहते हुए अर्द्ध विक्षिप्त मस्तक को कवि मान कर प्रोत्साहित किया। यही हमारा धन्य भाग्य है कि हम उनके साथ रहे, समकालीन रहे, उनका दर्शन ही नहीं किया, उपदेश तथा आदेश भी ग्रहण किये।

(३८)

प्रेमनारायण टंडन

मुख पर सौम्यता की छटा, गंभीरता के झीने पटल के पीछे खेलती हुई मंदमंद सरल हँसी, मिठास घुली-सी, परन्तु नियंत्रित सरलता और सादगी की प्रतिमूर्ति। स्वस्थ शरीर, खुलता हुआ गेहुआँ रंग। चौड़े माथे के बीच बिंदी। घनी भौंहें। करीने से बढ़े छोटे काले बाल। सीधी-सादी और स्वच्छ वेश-भूषा। यह थी पाण्डेय जी की सौम्य मूर्ति जो प्रथम दर्शन में ही किसी भी व्यक्ति को आकर्षित करने के साथ-साथ प्रभावित भी करती थी।

सादगी उनके स्वभाव की ऐसी विशेषता थी जो प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान अनायास आकृष्ट कर लेती थी। जाड़ा, गर्मी, बरसात, हर मौसम में उनकी एक ही सीधी-सादी वेश-भूषा—धोती, कमीज, बास्कट, चादरा और टोपी—बस, इन्हीं पाँच कपड़ों में उनके सदैव दर्शन होते थे।

सादी वेश-भूषा की तरह उनका स्वभाव भी बहुत सरल और अभिमान-रहित था। किसी भी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिका के संपादक के पैर उसकी ख्याति के साथ-साथ जमीन से एक-दो बालिश्त ऊपर उठ ही जाते हैं और वह अपने को लेखकों-कवियों का धन-यश-दाता-विधाता और न जाने क्या क्या समझने लगता है। पाण्डेय जी के स्वभाव में गर्व या आडम्बर की कोई भावना उन दिनों भी नहीं आयी जब 'माधुरी' हिंदी जगत की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में समझी जाती थी और उसमें रचना प्रकाशित करने को अच्छे-अच्छे लेखक लालायित रहते थे।

पाण्डेय जी की सादगी केवल ऊपरी नहीं थी, वे हृदय के भी सरल थे। उनकी बाह्य सरलता और सादगी को भीतरी सरलता और सादगी की छाया सहज ही माना जा सकता है और इस बात से उनके संपर्क में आनेवाला कदाचित प्रत्येक व्यक्ति सहमत होगा।

पठन-पाठन उनके जीवन का अंग था। माधुरी के परिवर्तन में आनेवाली पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते वे रास्ते में भी दिखायी देते थे।

वेशभूषा की तरह उनकी चाल की गति भी सदैव एक सी रहती थी।

कभी हड़बली या उतावली में कहीं जाते तो उन्हें कदाचित ही किसी ने देखा हो।

पांडेय जी बड़े विनोदप्रिय थे। 'शतदल' की बैठकों में विनोदपूर्ण उक्तियाँ तो उनके बाद से सुनने को ही नहीं मिलीं।

हिंदी साहित्य को उन्होंने कोई ऐसी मौलिक कृति नहीं दी, जिससे उनका नाम अमर हो जाता, परंतु साहित्य के इतिहास और खड़ीबोली-काव्य के विकास का अध्ययन करनेवालों को उनकी महत्वपूर्ण देनों को निश्चय ही स्वीकार करना पड़ेगा। उनकी लगभग दो सौ कविताएँ कला की दृष्टि में असाधारण न होते हुए भी सहृदय का रंजन करने की क्षमता रखती हैं। संस्कार-परिष्कार के प्रयास का अभाव उनकी ऐसी विशेषता है जो उनकी कविताओं की लोकप्रियता का प्रमुख कारण रहा है। सरल मुहावरों और सूक्तियों के कारण तो उनकी काव्य-पंक्तियाँ बरबस ध्यान में बस जाती हैं।

इसी प्रकार हिंदी नाटक के विकास पर यदि बँगला के प्रभाव की बात कही जायगी, तो प्रत्यक्षतः यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि बँगला न जाननेवाले हिंदी लेखकों के लिए उस भाषा की अनेक कृतियों के सुलभ कर देने का बहुत बड़ा श्रेय पाण्डेय जी को है। हिंदी के अनेक प्रमुख नाटककारों ने उनके अनुवादों से बराबर प्रेरणा ली है।

मासिक-पत्र के सम्पादक पर इतना कार्य-भार रहता है कि सामान्यतया वह मौलिक कृति प्रस्तुत करने का अवकाश नहीं पाता। उसकी कृतियाँ तो वे लेख ही होते हैं जो 'संपादकीय' के अंतर्गत अथवा कारण-विशेष से छद्म नामों से प्रकाशित होते हैं। पांडेय जी का भी यह साहित्य थोड़ा नहीं है। उनके इस प्रकार के छोटे बड़े लेखों की संख्या ढाई-तीन सौ होगी जिनके कई सुन्दर संग्रह तैयार किये जा सकते हैं। उनके लेखों के विषय विविध हैं जिनके अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक, दार्शनिक, पौराणिक, सामयिक, राष्ट्रीय, साहित्यिक आदि सभी विषय आ जाते हैं। निस्संदेह उनके अनेक लेख स्थायी महत्व के हैं और प्रकाश में आने के लिए किसी साधन-संपन्न व्यक्ति की बाट जोह रहे हैं।

हिंदी लेखक अपनी भद्दी लिखावट के लिए सदैव बदनाम रहे हैं। इन

पंक्तियों के लेखक को भी खराब लिखने के दो प्रमाणपत्र मिल चुके हैं। पहला था पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का जिन्होंने लिखा था—आपने घसीट हिंदी लिखने में अदालती उर्दू वालों को भी मात कर दिया और दूसरा मिला था श्री शांतिप्रिय द्विवेदी से जब वे बनारस से 'कमला' का संपादन करते थे। एक लेख की स्वीकृति भेजते हुए उन्होंने लिखा था—भविष्य में यदि कभी आप 'कमला' के लिए लिखने की कृपा करें तो दया करके उसे किसी दूसरे से लिखाकर अथवा टाइप कराके भेजें, अपनी लिखावट में न भेजें। घसीट लिखने में इस प्रकार नाम कमाने के पश्चात् इन पंक्तियों के लेखक ने जब पांडेय जी के मोती के दाने पिरोयी जैसी लिखावट देखी, तब कितना सकोच, कितनी ग्लानि, कितनी खिन्नता और साथ-साथ कितनी प्रसन्नता हुई, कह नहीं सकता। यद्यपि अपनी लिखावट बिलकुल सुधार लेना तो मेरे वश के बाहर की बात हो गयी थी, लेकिन इतना निश्चय उनका प्रथम पत्र पाने के दिन से मैंने अवश्य किया कि 'प्रेस कापी' तैयार करते समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। अध्यापक के नाते अपने सभी विद्यार्थियों को आदर्श लिखावट का नमूना दिखाने के लिए वर्षों तक मैं पाण्डेय जी के पत्र सुरक्षित रखता रहा।

हिंदी के संपादकों में नवोदित लेखकों को प्रोत्साहित करनेवालों में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के पश्चात् पाण्डेय जी का ही नाम आता है। यह ठीक है कि अनेक नवोदित लेखकों के साथ संपादक का काम साहित्यिक 'मैला समेटना' जैसा रहता है जिससे अधिकांश व्यक्ति घबराया करते हैं; परंतु माता की ममता रखनेवाले संपादक ऐसी परेशानियों से बचने की चिंता नहीं करते; उनका वात्सल्य नवोदितों की उपेक्षा उन्हें नहीं करने देता। अपनी प्रतिभा-प्रभा से हिंदी जगत को आलोकित करनेवाले आज के अनेक लेखक पाण्डेय जी के स्नेहभाजन होने और उनसे निरंतर प्रोत्साहन पाते रहने के फलस्वरूप ही ख्याति पा सके हैं।

पांडेय जी के संपर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति ने उनके सौजन्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। और उनका सौजन्य सबसे बढ़कर यह था कि उन्होंने छोटों के मध्य में रहने में कभी न अपनी मानहानि समझी और किसी के साथ यदि उपकार किया तो उसकी दूसरों के सामने कभी चर्चा नहीं की। 'नेकी कर कुएँ में डाल' वाली बात व्यावहारिकता भी दृष्टि से बहुत कठिन है; परन्तु पाण्डेय जी ने सदैव इसका निर्वाह किया। यही कारण है कि आज के अनेक साहित्यकार

उनके न रहने पर अपने किसी शुभचिंतक आत्मीय जन के अभाव का अनुभव करते हैं।

प० महावीर प्रसाद द्विवेदी से पाण्डेय जी एक बात में अवश्य पीछे थे। द्विवेदी जी ने अपना विशाल पुस्तक-संग्रहालय बना लिया था, परंतु पांडेय जी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उन दिनों उनको प्रतिमास प्राप्त होनेवाली पुस्तकों की संख्या पचीस-तीस तक सुगमता से पहुँच जाती थी, परंतु उनको जतन से जुगोकर पांडेय जी ने नहीं रखा, अन्यथा उनका पुस्तकालय लखनऊ में हिंदी का अनुपम संग्रहालय होता। 'माधुरी' के परिवर्तन में प्रतिमास आनेवाली पत्र-पत्रिकाओं की संख्या भी कम नहीं होती थी; हिंदी की ही नहीं, दूसरी भाषाओं की भी अच्छी-अच्छी पत्रिकाएँ उनके पास आती थीं। यदि आज वे ही सुरक्षित होतीं तो उनका निवास स्थान अनुसंधानकर्ताओं के लिए कभी का अध्ययन-कक्ष बन गया होता। दूसरों की पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओं की तो बात दूर, पाण्डेय जी के संग्रहालय में अपनी भी सभी पुस्तकें नहीं हैं और न 'माधुरी' की ही व्यवस्थित फाइलें हैं। ऐसी स्थिति में उनके मित्रों और शिष्यों का सबसे पुनीत कर्तव्य यह है कि उनकी पुस्तकों की कम से कम दो दो एक एक प्रति खोजकर सार्वजनिक पुस्तकालय का रूप उसे अवश्य दें जिससे उनकी स्मृति सदैव बनी रहे।

विद्या और विनय का जैसा संयोग पांडेय जी में था, वैसा कम देखने में आता है। ऐसे व्यक्ति जहाँ अहंमन्यता रहित होते हैं, वहाँ वे प्रचार से भी दूर भागते हैं। दरबारदारी से भी पाण्डेय जी को चिढ़ थी; न वे दूसरों के दरबार में जाते थे और न यही चाहते थे कि उनके यहाँ ही दरबारियों का जमघट हो। प्रचार या विज्ञापन से वे प्रायः दूर ही रहे। किसी सभा-सम्मेलन में सभापतित्व के लिए जाना उनके लिए मुसीबत थी जिससे वे शक्ति भर बचा करते थे।

'कमलाकर' उनका उपनाम था जो उनकी कुछ रचनाओं में मिलता है। जब उनकी देश-भक्ति, समाज-सुधार, राष्ट्रोद्धार का संदेश देने और नैतिकता का पाठ पढ़ानेवाली उद्देश्यप्रधान रचनाओं को पढ़ते हैं, तब द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध का स्वर उनकी रचनाओं में गूँजता हमें सुनायी देता है।

'माधुरी' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की पाण्डेय जी की नीति के संबंध में कुछ नये लेखकों को शिकायत रहती थी; परंतु मैं इस प्रसंग में भी

सदैव भाग्यशाली रहा। सन् १९३८ से ४१ तक, चार वर्षों के बीच मेरे कई लेख, जो मेरी उन चार वर्षों में प्रकाशित 'द्विवेदी मीमांसा', 'प्रेमचंद और ग्राम समस्या', 'प्रताप-समीक्षा', 'सूर : कृतियाँ और कला' के ही परिच्छेद थे, 'माधुरी' में प्रकाशित हुए। 'डाक्टर जानसन' शीर्षक मेरी एक लेखमाला भी 'माधुरी' के पाँच-छह अंकों में प्रकाशित हुई थी जिसे मैं आज तक पुस्तक-रूप में छपा नहीं देख सका हूँ। आरंभ के पाँच-सात लेखों के प्रकाशित होने तक मैंने पारिश्रमिक की माँग नहीं की; क्योंकि प्रत्येक नवोदित लेखक की भाँति उस समय माधुरी जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में लेख के साथ अपना नाम छपा देखने का ही चाव और लोभ था। पाँच-सात लेखों के बाद बड़े संकोच से पारिश्रमिक के संबंध में निवेदन किया। उत्तर में उन्होंने बड़ी आत्मीयता से समझाया—पिछले हिसाब में तो कुछ बचा नहीं है जो कुछ पारिश्रमिक दिया जा सके; आगे कमी पूरी कर दूँगा। और उन्होंने यही किया भी।

एक बार उनसे 'तुलसी के राम' नामक मेरी पुस्तक का एक लेख खो गया। उसकी दूसरी प्रति मेरे पास थी नहीं और एकबार के लिखे लेख के खो जाने पर पुनः उसे लिखना मेरे जैसे व्यस्त 'मुदर्रिस' के ही लिए नहीं, सभी लेखकों के लिए बहुत कठिन होता है। अतएव लेख के खो जाने पर मुझे बहुत क्षोभ हुआ। उन दिनों प्रयाग से एक पत्र निकलता था जिसमें नये लेखकों की ऐसी बातें आसानी से छप जाती थीं। उसी में एक संक्षिप्त लेख मैंने छपा दिया जिसमें 'माधुरी' और 'पाण्डेय' जी का स्पष्ट नाम भी था और उनकी 'लापरवाही' बताते हुए बहुत-कुछ लिखा गया था। अंत में सुझाव था कि नये लेखक हर रचना की 'कार्बन कापी' रख लिया करें।

प्रयागी पत्र मेरे पास पीछे आया, पाण्डेय जी के पास पहले पहुँचा। जिस दिन मुझे वह पत्र मिला, संयोग से उनके दर्शन भी हो गये। मेरे कुछ कहने के पूर्व ही कहने लगे वे—तुम्हारा लेख अमुक पत्र में देखा। जैसा तुमने लिखा है, वैसी शिकायत शायद दूसरों को भी हो मुझसे। मैं मानता हूँ कि कैसी भी रचना हो, खो जाने का दुख होता ही है और दूसरे की चीज खो देने पर मुझे भी कम दुख नहीं होता, लेकिन कभी-कभी शिकायत के मौके मिल ही जाते हैं लेखकों को—इतना कहते-कहते पाण्डेय जी कुछ खुलकर हँस पड़े और बोले—लेकिन तुम्हारी 'कार्बन कापी' वाली

सलाह बहुत अच्छी है। वैसी कापी रख लेने पर लेखक संपादक को बुरा-भला चाहे जितना कहे, कम से कम उसकी रचना तो सुरक्षित रहेगी। पाण्डेय जी के मुख पर यह सब कहते समय मेरे प्रति क्षोभ या रोष का लेश भी नहीं था, मेरी अकृतज्ञता पर जरा भी झुंझलाहट उन्हें नहीं थी और आगे भी वे मुझ पर बराबर कृपा बनाये रहे मेरी रचनाएँ भी 'माधुरी' में छापते रहे। ऐसी थी उनकी विशालहृदयता तथा नवोदित लेखकों के प्रति आत्मीयता की भावना।

मेरा जैसा नौसिखिया उन दिनों माधुरी में लिखने का दुस्साहस कर सका, वह केवल इस कारण कि उसे पांडेय जी के वात्सल्य का सहारा सहज ही प्राप्त हो गया था। परंतु उनकी संपादन-नीति की एक बात मेरी समझ में कभी नहीं आयी और वह यह कि सन् १९३८ से 'माधुरी' में लिखना शुरू किया था मैंने और प्रारंभिक ८-१० लेखों में प्राय: प्रत्येक लगभग २० कालम का था। इण्टर पास किये तब मुझे दो-ढाई वर्ष ही हुए थे और इतना ही समय लिखना प्रारंभ किये बीता था। परंतु उन्होंने मेरे किसी लेख में कभी एक शब्द नहीं बदला, विराम-चिह्न तक ज्यों के त्यों रहने दिये। एक दिन चपलतावश मैं उनसे कह बैठा—कम से कम मेरी भाषा तो सुधार दिया कीजिए। उनका उत्तर था—यह कहने की बात नहीं है। मुझे अपने दायित्व और अधिकार, दोनों का ध्यान है। जहाँ जरूरत समझूंगा, ठीक कर लूंगा।

पाण्डेय जी की यद्यपि मुझ पर सदैव कृपा रही फिर भी उनके पास मैं कभी अधिक समय तक नहीं बैठ सका। जब भी मैं उनके यहाँ जाता, वे लिखते-पढ़ते ही मिलते थे और मेरी दृष्टि में किसी भी व्यक्ति का घोरतम सामाजिक अपराध दूसरों के कार्यक्रम में बाधा डालना ही है। हममें बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो अपने पास कोई काम न होने पर दूसरों के यहाँ यह सोचकर बतियाने पहुँच जाते हैं कि चलो, थोड़ा समय कट जायगा या मनोरंजन हो जायगा या प्रसंग-परिवर्तन से चित्त हल्का हो जायगा; परंतु वे यह नहीं सोचते कि हमारे लिए जो समय खाली है, वही दूसरे के लिए काम का हो सकता है। यह मेरे चरित्र की कमजोरी है कि हर व्यक्ति का हर समय मैं हृदय से स्वागत नहीं कर पाता और काम के समय किसी भी व्यक्ति का आना कभी-कभी मुझे बहुत अखर जाता है। दूसरों के संबंध में भी मैं ऐसा ही समझता हूँ और इसी कारण किसी के, विशेषकर

लेखक या कवि के यहाँ, आने-जाने में तो नहीं, अधिक समय तक बैठने में मुझे बड़ा संकोच होता है। इसलिए एक ही मोहल्ले में लगभग केवल एक फर्लांग की दूरी पर बीस-बाइस वर्ष तक रहने पर भी मैं पाण्डेय जी के पास कभी अधिक समय तक नहीं ठहर सका। मिला उनसे मैं पचासों बार होऊँगा, परंतु दस-पाँच मिनट में काम की बातें करते ही मैं उनसे 'नमस्कार' कर लेता जिसके फलस्वरूप कभी जमकर बात करने का सुअवसर नहीं पा सका। सन् १९३९ में केवल एक बार लगभग एक घंटे तक मैं उनके पास बैठा था, तब का संस्मरण मेरे पास सुरक्षित है—

३–९–३९ ; प्रातः ८ बजे।

मेरी 'द्विवेदी मीमांसा' इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से तीन-चार दिन पहले छप कर आयी थी। उसकी एक प्रति मैं पांडेय जी को दे आया था और उनसे प्रार्थना की थी कि उसके विषय में अपनी सम्मति देने की कृपा करें।

जब मैं उनके पास पहुँचा, वे बोले—पुस्तक मैंने देख ली। इसमें प्रेस की बहुत गल्तियाँ हैं और बड़ी भद्दी-भद्दी। यों किसी साधारण पुस्तक में दो-एक अशुद्धियाँ या साधारण भूलें रह जायँ तो कोई ऐसी बात नहीं है, पर द्विवेदी जी के, जो जीवन भर ऐसी गल्तियों के सुधारने के पक्ष में रहे और सतत परिश्रम करते रहे, संबध की किसी पुस्तक में ऐसी गल्तियाँ रह जाना बहुत अनुचित है ; मैं तो कहूंगा, अक्षम्य अपराध है।

मैं उनकी बातें ध्यान से सुन रहा था। उस पुस्तक में अनुस्वार और पंचम वर्ण की खिचड़ी मुझे बहुत खटकी थी और मैंने इसके लिए प्रेस को सावधान भी कर दिया था; फिर भी कहीं पर अनुस्वार और कहीं पंचम वर्ण का प्रयोग किया गया था। मैंने उसी ओर संकेत किया।

पांडेय जी ने उत्तर दिया—खैर, उसकी बात जाने दीजिए। अन्य अशुद्धियों ने तो अर्थ का अनर्थ ही कर दिया है। पहले ही पृष्ठ पर पंत जी की कविता की एक पंक्ति है—

आर्य, आपके यशः काम को करे सुरक्षित नित्य।

'काम' छपा है, और होना चाहिए 'काय'। अब तो इसका अर्थ हो

गया है—आपके यश की कामना भी रक्षा करे। क्या द्विवेदी जी यश के लिए सब काम किया करते थे ? यदि नहीं, तो क्या अर्थ का अनर्थ नहीं कर दिया गया है ?

मैंने कुछ खिन्न स्वर में कहा—क्या बताऊँ, मैंने पुस्तक इंडियन प्रेस को केवल इसीलिए दी थी कि नामी प्रेस है; छपाई की गल्तियाँ उसमें नहीं होंगी। अँगरेजी प्रेसों में अक्षरों का छूट जाना तो दूर की बात है, कभी 'कामा' तक नहीं छूटता।

उन्होंने उत्तर दिया—हाँ; अँगरेजी से मैं विशेष परिचित तो नहीं, पर सुना है कि उसकी पुस्तकों की छपाई बहुत ही शुद्ध रहती है।

× × ×

विषय बदल गया। मेरा 'डाक्टर जानसन' शीर्षक एक लेख उन दिनों 'माधुरी' में क्रमशः छप रहा था। पहला अंश मई में निकला था और दूसरा 'जूलाई' में। जून का अंक खाली गया और उसके बाद अगस्त में भी मुझे अपना लेख न मिला। मुझे इससे बड़ा क्षोभ हुआ। इसका प्रधान कारण यह था कि पुस्तक आधी लिखी पड़ी थी और दो अंक में न छपने के कारण मैं उसकी ओर से, न जाने क्यों, कुछ उदासीन होता जाता था। इसी से मैंने उनसे पूछा—क्या आपको 'डाक्टर जानसन' पसंद नहीं आया ?

वे मुस्कराते हुए बोले—भाई, पसंद न होता तो मैं पहला अंश ही क्यों छापता। अब बराबर छपता रहेगा, निश्चिन्त रहो।

× × ×

एक नवोदित कवि की कविता की उस समय धूम थी। अपनी कविताओं का एक संग्रह उन्होंने मेरे पास भी दिसंबर १९३८ में भेजा था। जिस ढंग की कविताओं का उसमें संग्रह है, वह मुझे पसंद नहीं था। विषय मे विशेष रुचि न होने के कारण पुस्तक ४-५ महीने मेरे पास पड़ी रही; अंत में मैंने जूलाई में उसकी समालोचना एक पत्र में छपा दी। इसके पश्चात् मैंने अपने एक स्नेही मित्र को पुस्तक दी और उनसे अनुरोध किया कि वे एक लेख उसके विषय में लिख दें। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार की और दो सफे

का एक छोटा-सा लेख लिखने की कृपा की जिसे मैंने 'माधुरी' में भेज दिया। उसके विषय में बात करते हुए मैंने पांडेय जी से पूछा—वह लेख आपको पसंद है ?

मैंने अभी देखा नहीं है। ठीक ही होगा। पर भाई, मुझे उस कवि की कविताएँ पसंद नहीं हैं। यह दूसरी बात है कि लोग उनकी कविताओं को अपने पत्र के प्रथम पृष्ठ पर ही छाप देते हैं; पर मैं दावे के साथ कहता हूँ कि हमारे अधिकांश पत्र-संपादकों को कविता के बारे में कोई तमीज नहीं। प्रायः पत्रों में कवि-विशेष का एकाधिकार-सा हो गया है। 'चाँद' में जब तक महादेवी जी रहीं, तब तक तो उसमें अच्छी कविताएँ छपती रहीं। पर अब क्या है ? भला यह भी कोई बात है कि किसी ने एक पत्र निकाल दिया और संपादक बन बैठा ! कविता वह है जो हृदय को मुग्ध कर ले। द्विवेदी जी कविता के इस महत्व को समझते थे। वे स्वयं अच्छी कविता नहीं कर सके, यह दूसरी बात है। कविता मैं भी करता हूँ, आप भी करते हैं और बहुत से लोग करते है; परंतु कितनी कविताएँ ऐसी हैं जो हृदय को स्पर्श करती हैं ? आपके आलोच्य कवि की रचनाओं में कविता का यही गुण नहीं, मुझे उनमें केवल शब्दाडंबर ही मिलता है; इसी से मैं उनको पसंद नहीं करता।

खैर, आप लेख देख लीजिएगा; ठीक हो तो छाप दें।

हाँ, हाँ।

'नमस्ते' कहकर मैं चला आया।

उस समय मेरे मन में एक विचार घूम रहा था। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी रुचि होती है और वैसा होना अपेक्षित भी है; जो अपनी रुचि नहीं रखता, वह आदमी भी क्या ! उससे बढ़कर वह व्यक्ति है, जो अपनी रुचि की बात स्पष्ट रूप से दूसरे के सामने रख सकता है। यहाँ तक को ठीक; इसके आगे मार्ग की दो शाखाएँ हो जाती हैं। एक पर वे लोग चलते हैं जो अपने मत को सर्वोपरि समझते हैं और जिनसे उनका मतभेद होता है उनकी कभी खिल्ली उड़ाते हैं, कभी उन पर व्यंग्य या आक्षेप करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति संकुचित मनोवृत्ति के होते हैं।

दूसरे मार्ग पर चलने वालों का दृष्टिकोण उदार रहता है। वे अपनी रुचि के साथ-साथ दूसरों के मत का भी आदर करते हैं और मानते हैं कि हमारी ही तरह दूसरों को भी विचारों की स्वतंत्रता का अधिकार है। जिस तरह दूसरों के विचार अपने ऊपर लादा जाना उन्हें रुचिकर नहीं होता, उसी प्रकार अपने विचार दूसरों पर लादना भी वे उचित नहीं समझते। स्वर्गीय पांडेय जी इसी उदार वर्ग के थे। जिस कवि की रचनाओं के संबंध में अपना मत उन्होंने ऊपर व्यक्त किया है, उसी की सुन्दर रचनाओं की प्रशंसा करते भी उन्हें कभी संकोच नहीं हुआ और अनेक बार अपनी पत्रिका में उन्होंने उनको स्थान देने की उदारता भी दिखायी थी।

निस्संदेह किसी भाषा और उसके साहित्य की श्री-वृद्धि में ऐसे उदारमना व्यक्ति ही सक्रिय सहयोग देने में समर्थ होते हैं और इससे सभी सहमत होंगे कि हिंदी और उसके साहित्य के लिए पांडेय जी ने जो कुछ किया, वह वस्तुतः बहुत महत्वपूर्ण है।

विचारधारा

(१)

[१६ दिसम्बर १६४० की रात को आल इंडिया रेडियो, लखनऊ स्टेशन से माधुरी संपादक पं० रूपनारायण पांडेय ने 'हिंदी साहित्य पर बँगला का प्रभाव' शीर्षक के अन्तर्गत एक भाषण दिया था, जिसके निम्न-लिखित अंश उद्धृत किये जा रहे हैं :—]

आज हिंदी साहित्य दिन-दिन उन्नति की ओर आगे बढ़ता जा रहा है। ···· पर आज से लगभग पचास-साठ वर्ष पहले यह दशा नहीं थी। उस समय हमारा पद्य भाग तो किसी भी भारतीय भाषा के पद्य साहित्य से कम नहीं था, किन्तु गद्य भाग बहुत थोड़ा, वह भी अपरिष्कृत था ····।

ऐसे ही अवसर पर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने हिंदी साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। वह अकेले नहीं थे, उनके साथ पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', पं० बालकृष्ण भट्ट ···· आदि विद्वान भी थे। इस मंडली ने हिंदी के गद्यभाग को सर्वांगपूर्ण बनाने का काम अपने हाथ में लिया। ····

इसी युग में बँगला भाषा का साहित्य भी हीनावस्था में था। बाबू हरिश्चन्द्र की तरह बंगाल के अमर लेखक और औपन्यासिक श्री बंकिमचंद्र चटर्जी बंग साहित्य को सर्वांगपूर्ण और उन्नत बनाने की चेष्टा में लगे हुए थे। ···· बंकिमबाबू की साधना का ही फल यह है कि आज बंग-भाषा का साहित्य इतना विस्तृत और वैभवशाली नजर आता है।

यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं कि बंकिम बाबू की साहित्य सेवा ने कुछ सीमा तक बाबू हरिश्चन्द्र को प्रभावित और अनुप्राणित किया था। ···· मतलब यह कि बाबू हरिश्चन्द्र के उत्साह को बंकिम

बाबू की साहित्य सेवा की लगन ने बहुत बढ़ाया था। बाबू हरिश्चन्द्र ने अपनी मौलिक रचनाओं के अलावा बंग-भाषा से कुछ अनुवाद भी किये थे। हमारा ख्याल है, "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" और 'बूढ़े मुँह मुँहासे —लोग देखें तमाशे" ये दोनों हिंदी के तत्कालीन प्रहसन माइकेल मधुसूदन दत्त के प्रहसनों के अनुवाद ही हैं।

भारतेंदु-काल में ही गदाधर बाबू ने बंकिम बाबू के कई उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में कर डाला था। उनके 'लोक रहस्य' का अनुवाद कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। बंकिम बाबू के 'कमलाकान्तेर दफ्तर' का हिंदी अनुवाद "चौबे का चिट्ठा" नाम से मैंने किया है। मेरा अपना ख्याल है कि इसी कमलाकांतेर दफ्तर की लेखमाला से प्रभावित होकर भारतचित्र के संपादक बा० बालमुकुन्द गुप्त ने शिवशंभु का चिट्ठा लिखा होगा। ····'श्री द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों के और श्री रवींद्र-नाथ की ···· कहानियों और उपन्यासों के अनुवाद भी हो चुके हैं। ··· गिरीशघोष के भी चार-पाँच अच्छे नाटक हिंदी में आ चुके हैं। सर गुरु-दास बनर्जी का बहुमूल्य ग्रंथ 'ज्ञान और कर्म तथा श्री चण्डी सेन का लिखा हुआ प्रातस्समरणीय ईश्वरचंद्र विद्यासागर का विस्तृत जीवन चरित्र भी हिंदी साहित्य की चीज बन चुका है। श्री शरतचन्द्र चटर्जी के प्राय: सभी उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में कर लिया गया है। चारु बंद्योपाध्याय का 'स्रोतेर फूल' 'बहता हुआ फूल' के नाम से हिंदी में बहुत लोकप्रिय हुआ।

सबसे अधिक प्रभाव श्री रवींद्रनाथ ठाकुर की कविता का—खासकर उनकी 'गीतांजलि' का हिंदी के नवीनतम कवियों पर पड़ा है। ···· वैष्णव भक्तों की भावप्रधान कविताओं और कबीरदास की वेदान्तमूलक सूक्तियों की अनुप्रेरणा गीतांजलि के अन्दर मौजूद है। गीतांजलि के ढंग पर ही काशी के रायकृष्णदास जी ने हिन्दी-गद्य में 'साधना' लिखी है। रहस्यवाद और छायावाद के कुछ नये कवि भी ज्ञात या अज्ञातरूप से रवि-बाबू की कविताओं से प्रभावित होकर 'अनंत' के पथ के पथिक बनना

चाहते हैं; पर असल और नकल में, हीरा और कांच में जितना अन्तर होता है, उतना ही अन्तर उनमें नजर आता है।

× × × ×

आरंभ में हिंदी में बँगला की पुस्तकों के अनुवाद अवश्य ही किये गये; किंतु हिंदी की मूलधाराओं पर बंगला का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। पर इसका मतलब यह नहीं कि हम बंग भाषा और बंगाली लेखकों के कृतज्ञ नहीं हैं। बँगला के अनुवादों से हिंदी भाषा की जो श्री-वृद्धि हुई है और बँगला के लेखकों की सहायता से जो हमारे ज्ञान में वृद्धि हुई है, उसके लिए हम उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हैं। केवल यही नहीं, बँगाली लेखकों और प्रकाशकों ने हिंदी की जो सेवा की है, उसके लिए भी वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। बाबू गिरिजाकुमार घोष ने सरस्वती में पार्वती-नंदन के नाम से अनेक कहानियाँ लिखी थीं। पं० अमृतलाल चक्रवर्ती ने भारतमित्र, श्री वेंकटेश्वर समाचार आदि कई हिंदी पत्रों के संपादकीय विभाग में काम किया और हिंदी के कई उपन्यास भी लिखे। श्री कार्तिकेय चरण मुखर्जी ने कलकत्ते में रह कर हिंदी की काफी सेवा की है। श्री नलिनी मोहन सान्याल के अनेक लेख हिंदी पत्रों में छपा करते थे। श्रीयुत् क्षितिमोहन सेन ने भक्त साहित्य का अच्छा अध्ययन किया है और हिंदी में लिखते भी हैं। श्री उषादेवी मित्रा हिंदी में उपन्यास और कहानियाँ बराबर लिख रही हैं। .... बंगालियों की इस सहायता को हिंदी भाषा-भाषी कभी नहीं भुला सकते।

हिंदी में बँगला के कुछ शब्द भी आ गये हैं, जैसे प्रयोजनीय, बढ़ा-बढ़ी, प्रायः, तूलिका, तालिका, प्रकृत, प्रस्तुत, उत्स, वाच्य, मनोयोग, अशेष, विभ्राट, कथावार्ता, बेशी, विरक्त, स्तंभित, स्तर, चेष्टा, षडयंत्र, आभार, हृदयंगम इत्यादि। इसमें से अधिकांश शब्द संस्कृत के हैं, पर हिंदी में उनका चलन बँगला के द्वारा ही हुआ है। इसके लिए भी हम किसी कदर बँगला के ही एहसानमंद हैं—'माधुरी', जनवरी १९४१।

× × × ×

कोई पत्रिका जब तक अपना खर्च न चला सके तब तक वह

स्थायी नहीं हो सकती और यथेष्ट खर्च किये बिना कोई पत्रिका अच्छी सामग्री नहीं प्राप्त कर सकती। इस समय हिंदी के लेखक तो यथेष्ट बढ़ गये हैं पर उनमें से अधिकांश की रचनाएँ सारहीन—खोखली ही होती हैं। परिश्रम और विचार करने की क्षमता या प्रवृत्ति कम लेखकों में पायी जाती है। कविताओं और कहानियों की ही भरमार है। पर केवल अचार या चटनी खाने से ही तृप्ति नहीं होती, उसके लिये अन्न की आवश्यकता होती है। सुनिश्चित निबंध लेख, तथ्यमूलक स्पष्ट आलोचना, इतिहास, विज्ञान, दर्शन आदि की ज्ञानगर्भ रचनाओं के बिना कोई भी पत्र-पत्रिका केवल कहानी और कविता देकर शिक्षित पाठक को तृप्त नहीं कर सकती; उनकी भूख को—उसकी जिज्ञासा को मिटा नहीं सकती। ऐसी रचनाएँ हिंदी में कितनी देख पड़ती हैं? आज का लेखक-समाज पुरस्कार के बिना लिखना तो नहीं चाहता, पर पुरस्कार के योग्य रचनाएँ नहीं प्रस्तुत करता। लेखकों में से जो उच्चकोटि की सामग्री प्रस्तुत कर सकते हैं, उनके लिये भी एक कठिनाई है। उन्हें अध्ययन के लिये पुस्तकें नहीं हैं; देश में दो ही चार पुस्तकालय ऐसे हैं जिनमें विदेशी भाषाओं की उच्चकोटि की, सभी विषयों की पुस्तकें प्राप्त हो सकें। एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखने के लिए दस-बीस पुस्तकें पढ़ने की आवश्यकता होती है। हिंदी का लेखक अपने पास से सौ दो-सौ रुपये की पुस्तकें, लिखने के लिए खरीद नहीं सकता और पुस्तकालयों से उसे कोई सहायता नहीं मिलती। यही कारण है कि हर एक लेखक कविता और कहानी के क्षेत्र को अपने लिए चुनता है और उनमें अधिकांश बुरी तरह असफल होते हैं—'माधुरी', अगस्त—१९४२—पृष्ठ १३६-३७।

× × × ×

यह कहना जरूरी है कि हर भाषा का साहित्य आरम्भिक अवस्था में अन्य अपेक्षाकृत उन्नत भाषाओं के साहित्य की पुस्तकों के अनुवाद से अनेक अभावों की पूर्ति करने के लिए बाध्य होता है। आज जिस अंगरेजी भाषा के साहित्य को उन्नति की चरम सीमा पर हम देख रहे हैं, उसका अधिकांश अनुवाद ही है। संसार की सभी उत्तमोत्तम पुस्तकों के अनुवाद

आपको अँगरेजी में मिल जायँगे। इसी तरह भारतीय भाषाओं में सबसे अधिक उन्नत होने का दावा करनेवाली बँगला भाषा का साहित्य भी मौलिक की अपेक्षा अनुवाद ही अधिक है। इसी नियम के अनुसार हिंदी में भी आरम्भ में अनुवाद अधिक हुये हैं। सच तो यह है कि साहित्य-जगत् में यह आदान-प्रदान चलता ही रहता है। इसलिए देनेवाले को न गर्व होना चाहिए और न लेने वाले को लज्जा! मौलिक लेखक तो सभी भाषाओं में इने-गिने ही होते हैं और उन्हीं के कारण हर भाषा को नाज होना चाहिए—'माधुरी', जनवरी १९४१।

(२)

श्री अमृतलाल नागर के प्रश्न और पं० रूपनारायण पांडेय के उत्तर

१—आपके साहित्यिक जीवन के प्रारंभिक काल में आपके मोहल्ले में साहित्यिक वातावरण कैसा था? कौन-कौन हिंदी के पत्र आपको उस समय पढ़ने को मिल जाते थे?

मुहल्ले में साहित्यिक बहुत कम थे। मेरे परिचितों में बाबू भगवानदास खत्री, बाबू गोपाल लाल खत्री, पं० शिवनाथ शर्मा आनन्द सम्पादक, पं० बाल मुकुंद बाजपेयी और पं० राधेनारायण बाजपेयी थे। हिंदी और साहित्य के नाम पर बहुत कम, नहीं के बराबर, काम होता था। आज के व्यापक अर्थ में साहित्य का ज्ञान बहुत कम था। अधिकांश पद्य-रचना ही साहित्य नाम से परिचित थी।

(अ) मैं जब प्रथमा का कोर्स पढ़ता था, अंदाजन १२-१३ वर्ष की आयु में, मुझे हिंदी बंगवासी, बिहार बन्धु, श्री वेंकटेश्वर समाचार, भारत मित्र आदि हिंदी के साप्ताहिक पढ़ने को मिल जाते थे। मोहल्ले में बहुत कम हिंदी-पत्र पढ़े जाते या मँगाये जाते थे। कभी-कभी सरस्वती भी गुरुवर पं० ज्ञानेश्वर जी की कृपा से मिल जाती थी। पैसा खर्च कर पत्र या पुस्तक मँगाने की क्षमता मुझमें नहीं थी। पुस्तकों में चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता

सन्तति, जासूस की कहानियाँ, तिलिस्मी उपन्यास और पं० किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों की धूम थी। कवियों में पं० नाथूराम शंकर शर्मा मुझे अधिक भाते थे।

२—आपने लिखना किस आयु से आरम्भ किया? संस्कृत एवं हिंदी के किन लेखकों और कवियों ने आपको उस समय प्रभावित किया?

मैं १३-१४ वर्ष की अवस्था में साहित्य-प्रेमी बन गया था। मैं संस्कृत का विद्यार्थी था; कालिदास, व्यास, वाल्मीकि और भवभूति का भक्त। इन्हीं की रचनाओं से प्रभावित और हिंदी की हीनावस्था से द्रवित होकर मैंने गद्य-पद्य लिखना आरंभ किया। जब मैं पत्रों में कोई अच्छा लेख पढ़ता था तो वैसे ही अच्छे लेख लिखने का मनोरथ मन में उठता था। मुझे सरस्वती, भारतमित्र और विहारबंधु से उत्साह मिला।

(अ) मेरे गुरुजनों में उस समय १ वर्ष की अवस्था में पिता का और १३ वर्ष की वय में पितामह का स्वर्गवास हो गया था। मुझे गुरुवर पं० ज्ञानेश्वरजी और पं० रामकृष्ण जी शास्त्री (कैनिंग कालिज) से शिक्षा और प्रशंसा तो प्राप्त हुई ही, स्वल्प शब्दों में विशेष भाव व्यक्त करने का गुर भी मिला। उस समय साहित्य-सेवी लोग शौकिया करते थे; धन कमाने के लिए नहीं। साहित्य में शृंगारिकता और राजनीति के भाव और विचार ही प्रायः प्रकट किये जाते थे। देशप्रेम और जनसेवा के साथ ही एकता का प्रचार भी कुछ उच्च कोटि के लेखकों और सम्पादकों का लक्ष्य बन चला था। बंगभंग के समय से इन भावों और विचारों ने बहुत जोर पकड़ा और बराबर बढ़ते ही गये।

३—किन कारणों से आप बंगला भाषा की ओर झुके? उस समय आपके अतिरिक्त बंगला भाषा से हिंदी में अनुवाद कार्य करनेवाले और कौन-कौन थे? सर्वप्रथम आपने किस पुस्तक का अनुवाद किया?

हिंदी में उस समय साहित्य का भंडार शून्यप्राय था। उधर बँगला के लेखक धड़ल्ले से मौलिक रचनाओं और अँगरेजी के अनुवादों एवं रूपान्तरों से, मातृभाषा के अभाव की पूर्ति कर रहे थे। बँगला संस्कृत-

बहुल भाषा होने के कारण हिंदी वालों के लिए सीखने में सहज थी। इसी से बँगला ने हिंदी और उसके लेखकों को प्रभावित किया। मेरे समय में बा० गोपालराम गहमरी, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, "द्विज" , बा० गिरिजा कुमार घोष आदि बँगला के कई अच्छे अनुवादकर्ता थे। मैंने बँगला सीखने के पहले बँगला के अनुवाद नहीं पढ़े थे। हिंदी के साहित्यिकों ने उपन्यास और कहानी लिखने की प्रेरणा बँगला से पायी। संभवतः बँगला से मैंने सर्वप्रथम पं० क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद के 'खाँजहाँ' नाटक का अनुवाद किया था। बँगला क भाव और विचार प्रायः उन्नत होते जा रहे थे। उसमें संकीर्णता की जगह व्यापकता के चिह्न प्रकट होने लगे थे।

४—आपके प्रारंभिक साहित्यिक काल में भाषा और व्याकरण-संबंधी कौन-कौन से आंदोलन उठे ?

संस्कृत साहित्य से मुख्यतः पुराणों के अनुवाद किये जाने लगे थे। क्लिष्ट भाषा के लेखक बिरले ही थे, अधिकतर सरल भाषा के ही समर्थक देख पड़ते थे। शायद विशुद्धिवादी होने के कारण कुछ लेखक क्लिष्ट भाषा लिखते होंगे। इनमें श्री चंडी प्रसाद "हृदयेश" का नाम मुझे स्मरण है। भाषा के विषय में दो विवाद उस समय हुए थे। एक द्विवेदी जी और गुप्त जी की 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर और दूसरा विभक्ति-प्रत्यय को शब्द से सटाने या हटाने के विषय में।

५—ब्रजभाषा और खड़ीबोली के संघर्ष की क्या एक संक्षिप्त झाँकी देने की कृपा करेंगे ?

मेरे समय में ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली (कविता के क्षेत्र में) संघर्ष भी चल ही रहा था, यद्यपि खड़ी बोली का समर्थन प्रबल होने के कारण वह कुछ शान्त हो चला था। द्विवेदी जी के कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने के समय कुछ पुराने साहित्यिकों को छोड़कर हिंदी के लेखक बहुत कम थे और जो थे, वे भी मँजे हुए न थे। द्विवेदी जी ने अनेक नवीन लेखक बनाये और अँगरेजी संस्कृत के विद्वानों को हिंदी में लिखने के लिए प्रेरणा दी। द्विवेदी जी के पदार्पण से विद्वद्वर्ग प्रोत्साहित हुआ। द्विवेदीजी जिनकी

उग्र आलोचना कर बैठते थे, वे ही अधिकतर उनके विरोधी बन जाते थे। द्विवेदीजी का संघर्ष कई जनों से हुआ, जिनमें बा० बालमुकुंद गुप्त और बा० श्यामसुन्दरदास प्रधान थे।

६—हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए मुख्य रूप से आंदोलन कब उठा ?

(६) हिंदी इस प्रदेश की ही नहीं, सारे राष्ट्र की भाषा है, या हो सकती है और उसकी उन्नति तथा प्रचार अवश्य होना चाहिए। हमारे ग्रामों की करोड़ों जनता के लिए उर्दू एक विदेशी भाषा है; उनका लाभ हिंदी के प्रचार से ही संभव है। इन्हीं विचारों से नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई थी और उसके संचालकों ने हिंदी-नागरी के प्रचार की आवश्यकता महसूस की। ना० प्र० के हिंदी-आंदोलन ने धीमी गति से, किंतु स्थायी प्रभाव सर्वसाधारण पर डाला। मैं अपना समय अधिकतर अध्ययन में लगाता था। इसी से उस समय के मोहल्ले के वातावरण का अधिक अनुभव मुझे नहीं है।

७—हिंदी साहित्य सम्मेलन ने आपको तथा तत्कालीन साहित्यिकों को कितना प्रभावित किया ?

हिं० सा० सम्मेलन की आवश्यकता साहित्य को संगठित रूप से बढ़ाने, उन्नत करने के लिए बा० श्यामसुन्दरदास ने समझी थी। सम्मेलन के जनक वही कहे जा सकते हैं। सम्मेलन के केवल काशी, प्रयाग, दिल्ली, कानपुर और मुजफ्फरपुर के अधिवेशनों में मैं सम्मिलित हुआ हूँ। सम्मेलन की उपयोगिता स्वयंसिद्ध थी और उससे मेरा प्रभावित होना भी कोई आश्चर्य की बात न थी। यह दूसरी बात है कि सम्मेलन से जितनी आशा थी, उतना काम वह न कर सका हो, किन्तु उसके प्रति मेरी श्रद्धा बराबर रही है और अब भी है।

८—आपके समकालीन लेखक और कवि कौन-कौन थे ?

(८) मेरे समकालीन लेखक और कवि :—

कवि—रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, कामताप्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय, सत्यनारायण कविरत्न, लोचनप्रसाद पांडेय, हरि-

औध, नाथूराम शंकर, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', मुकुट धर पाण्डेय, जय शंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, लक्ष्मीधर बाजपेयी, सनेही, श्रीधर पाठक, कृष्ण कान्त मालवीय, देवदत्त बाजपेयी 'पुरंदर', लाला भगवानदीन।

सम्पादक—द्विवेदी जी, श्यामसुन्दर दास, बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिकृष्ण 'जौहर', शिवपूजन सहाय, केशवराम भट्ट, रुद्रदत्त शर्मा, नर्मदा प्रसाद मिश्र, गंगा प्रसाद गुप्त, रामचंद्र वर्मा, बालकृष्ण भट्ट, विश्वंभर नाथ जिज्जा, पं० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, पराड़कर जी, देवीदत्त शुक्ल, देवीप्रसाद शुक्ल, पं० शिवनाथ शर्मा, रामकृष्ण वर्मा, महावीर प्रसाद गहमरी, लज्जाराम मेहता, अमृतलाल चक्रवर्ती, राधाचरण गोस्वामी, प्रेमघन।

ऐतिहासिक—काशी प्रसाद जायसवाल, गौरी शंकर हीराचंद ओझा, विश्वेश्वर नाथ रेउ, मुं० देवी प्रसाद, मिश्रबन्धु।

वैज्ञानिक—रामदास गौड़, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, रमेश प्रसाद।

कहानी लेखक—कौशिक, सुदर्शन, प्रेमचंद, मोहन लाल महतो, उग्र, चतुर सेन, ऋषभचरण जैन, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, विनोद शंकर व्यास, प्रसाद।

औपन्यासिक—किशोरी लाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री, प्रेमचंद, वृन्दावन लाल वर्मा, गोपालराम गहमरी, लज्जाराम मेहता।

आलोचक—रामचंद्र शुक्ल, पद्मसिंह शर्मा, कृष्ण बिहारी मिश्र, द्विवेदी जी, बालमुकुन्द गुप्त।

अर्थशास्त्र—भगवानदास केला, दयाशंकर दुबे, काशी प्रसाद जायसवाल।

हास्य और व्यंग्य—कौशिक, शिवनाथ शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, हरि शंकर शर्मा, जी० पी० श्रीवास्तव, गोपाल प्रसाद व्यास।

नाटककार—लक्ष्मी नारायण मिश्र, उदय शंकर भट्ट, प्रसाद, बा० वृंदावन लाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, बद्रीनाथ भट्ट, उग्र।

राजनीति—पराड़कर, अंबिका प्रसाद वाजपेयी, कृष्णकान्त मालवीय, गणेश शंकर विद्यार्थी।

इन सज्जनों में कुछ मुझसे बड़े और कुछ मुझसे छोटे भी हैं। किन्तु हैं सब समकालीन। इनमें कुछ समवयस्क भी हैं। कुछ लोगों के नाम छूट भी गये होंगे। जो याद थे, लिख दिये।

६—अपने समय की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के संबंध में कुछ बतलाने की कृपा कीजिए।

सरस्वती, लक्ष्मी, मर्यादा, प्रभा, प्रतिभा, हितकारिणी, कमला, पीयूषप्रवाह, नृसिंह, श्री वेंकटेश्वर समाचार, बिहारबंधु, हिंदी बंगवासी, भारतमित्र। आरंभिक काल में कोई दैनिक न था। सरस्वती के सिवा कोई प्रथम श्रेणी की पत्रिका न थी। बाद को मर्यादा निकली और सरस्वती से टक्कर लेने लगी।

१० सम्पादक में कौन-सा गुण विशेष रूप से आवश्यक है ?

मुझे मासिक पत्र के क्षेत्र में ही कार्य करना पड़ा है। इसमें सम्पादक को अधिक अध्ययनशील होने के साथ ही मननशील भी होना चाहिए।

११—'माधुरी' और 'सुधा' के संपादन के संबंध में आपकी क्या नीति थी ?

माधुरी और सुधा, दोनों साहित्यिक पत्रिकाएँ थीं। इनमें साहित्य की गतिविधि और विकास की ओर दृष्टि रख कर ही सामग्री दी जाती थी।

१२—पिछले ५० वर्षों में आपकी साहित्यिक गति-विधि विशेष रूप से क्या रही ?

इन पचास वर्षों में मैंने कोई विशेष कार्य नहीं किया है जिसका उल्लेख करूँ। मेरा एक लक्ष्य यह था कि संस्कृत का पठन-पाठन कम होने के कारण हमारे आदरणीय ग्रंथ महाभारत, भागवत और रामायण का ठीक ठीक अर्थ साधारण लोग समझ नहीं पाते। अतः इनका विशुद्ध सांगोपांग अनुवाद हिंदी में होना चाहिये। इस लक्ष्य को मैंने

संपूर्ण भागवत, बालभागवत, बाल महाभारत, इंडियन प्रेस का महाभारत (१२ पर्व) और बाल रामायण तथा हमारे धर्मशास्त्र लिखकर पूरा किया है। बँगला की उपयोगी पुस्तकों का अनुवाद करके हिंदी के रिक्त भंडार को यथाशक्ति भरना भी मेरा ध्येय रहा है। यही मेरी साहित्य-सेवा की ५० वर्षों की उपयोगिता है। और माधुरी का सम्पादन भी कुछ महत्त्व रखता हो तो वह सेवा भी मैंने २१ वर्ष तक की है। मैंने इतने पत्रों का सम्पादन किया है—नागरी प्रचारक, निगमागम चंद्रिका, इन्द्र, कान्यकुब्ज, माधुरी और सुधा।

१३—आधुनिक साहित्य के संबंध में आपका क्या मत है ?

नया बढ़ता हुआ साहित्य उदार और व्यापक दृष्टिकोण को लेकर लिखा जा रहा है। वह पुरानी संकीर्णताओं और कुसंस्कारों पर प्रहार करता है। यही उसकी विशेषता और महत्त्व है। किन्तु दुख के साथ लिखना पड़ता है कि बहुत कम लेखक ऐसे हैं; अधिकांश लेखक नकल-नवीस और पुस्तक की बिक्री की ओर ध्यान रखने वाले हैं। किसी-किसी पुस्तक में तो कामुकता और अश्लीलता की हद है। आज के साहित्य में स्थायित्व की मात्रा बहुत कम देख पड़ती है। इसका कारण यही है कि हमारे अधिकांश साहित्यिकों का अध्ययन और मनन बहुत थोड़ा है। उनमें मर्मस्पर्शिनी सूक्ष्म दृष्टि अथवा प्रतिभा भी स्वल्प है। लेखकों को आर्थिक लाभ भी बहुत कम होता है। अगर कोई लेखक हजार दो हजार रुपये पुस्तकों में खर्च करके चार-पाँच वर्ष परिश्रम करके कोई स्थायी साहित्य की पुस्तक लिखे तो उसे यह आशा नहीं कि उसी एक पुस्तक की आमदनी से उसका जीवन पार हो जायगा। उसे भी उतना ही लाभ होगा जितना कि एक चलतू पुस्तक लिखनेवाले को।

१४—राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का क्या दायित्व है ? देवनागरी लिपि में परिवर्तन करने के प्रति आपका क्या विचार है ?

राष्ट्रभाषा होने के कारण हिंदी की जिम्मेदारियाँ बहुत बढ़ गई हैं, इसके लिए अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। हिंदी साहित्य के सभी अंगों की पूर्ति करना, हिंदी को लोकप्रिय बनाना, हिंदी में भिन्न-

भिन्न प्रान्तीय भाषाओं के और अँगरेजी के भी शब्द पचाकर उसमें ओज पैदा करना, उसे सब प्रकार के भावों को अच्छी तरह व्यक्त करने योग्य बनाना सभी साहित्यिकों का कर्तव्य और जिम्मेदारी है। हमें भिन्न-भिन्न भाषाओं के विद्वानों से सम्पर्क स्थापित करना और उन भाषाओं के साहित्य से परिचित होना चाहिए। भिन्न भाषाओं के सत्साहित्य को शीघ्रातिशीघ्र हिंदी में लाना चाहिए। हमें उर्दू से कोई द्वेष नहीं रखना चाहिए। सबसे पहले हमें इधर ध्यान देना चाहिए कि हिंदी के मंदिर में कूड़ा-कर्कट और गंदगी न आने पावे।

लिपि हमारी सुन्दर है। उसमें कुछ आवश्यक सुधार करने का प्रस्ताव चिन्तनीय है। भाषा के विषय में मैं अपना विचार प्रकट कर चुका हूँ कि शुद्ध हिंदी के नाम पर हम कट्टर न बनें। व्यापक और उदार दृष्टि-कोण अपनाकर हिन्दी के शब्द भंडार को बढ़ाते चलें। किन्तु हिन्दी की प्रकृति और सौष्ठव पर आँच न आने दें। मैं वासंती के द्वारा हिंदी को इसी प्रकार आगे बढ़ाना चाहता हूँ। वासन्ती अधिकतर अथवा मुख्य रूप से भाषा और साहित्य की उन्नति में ही अपनी सारी शक्ति लगावेगी।

१५ साहित्यिक कलाकार प्रायः नशे का सेवन क्यों करते हैं?

वे लोग, जिनमें प्रतिभा स्वतः स्फूर्त नहीं होती, प्रायः कोई नशा उसे जगाने के लिए करते हैं। मेरे मोहल्ले के पं० रतननाथ 'सरशार' ('फिसानए आजाद' के लेखक) सुरा सेवन करके ढेर का ढेर लिख डालते थे। चंद्रकान्ता के लेखक भी सिद्धिदायिनी विजया का सहारा लेते थे। किंतु यह आदत ठीक नहीं। उच्च कोटि की रचना करने के लिए नशे की जरूरत नहीं। उसके लिए लगन, सूझ या सूक्ष्म दृष्टि के साथ ही अध्ययन और अध्यवसाय चाहिए।

१६—साहित्य के क्षेत्र में मुरौव्वत करना आपकी दृष्टि में कैसा है?

साहित्य में मुरौवत को मैं बहुत बुरा समझता हूँ। बात खरी कहें। अगर असमर्थ हों या साहस न हो तो चुप रहें।

१७—साहित्य को क्या केवल कुछ पाठकों के लिए ही लिखा जाना चाहिए अथवा उसका लोकोपयोगी होना आवश्यक है?

(१६) साहित्य को लोकप्रिय तो होना चाहिए, पर लोकप्रियता का यह अर्थ नहीं है कि साहित्य का मान गिरा दिया जाय। साहित्य में सत्समालोचना का अधिकाधिक प्रचार होना चाहिए। निष्पक्ष दूरदर्शी विद्वानों को समालोचना के क्षेत्र में आकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। जब खरी आलोचना को पढ़कर सर्वसाधारण पाठक सत्साहित्य और असत्साहित्य की परख करने लगेंगे, तब उनकी रुचि परिमार्जित होगी; असत् साहित्य की बिक्री घट जाने से उसकी जड़ आप सूख जायगी। बौद्धिक स्तर ऊँचा होने पर जनता उत्कृष्ट साहित्य की माँग करेगी और तब उपयोगी, ज्ञानवर्द्धक सत्साहित्य लिखा और पढ़ा जायगा।

हमारे यहाँ पुस्तकालयों की बड़ी कमी है। जो थोड़े-बहुत पुस्तकालय हैं, उनमें कहानी और उपन्यास के सिवा और किसी विषय की पुस्तक शायद ही मिले। पुस्तकालय अधिक से अधिक हों, उनमें सभी विषयों की अच्छी-अच्छी पुस्तकें एकत्र करने का प्रयत्न हो। पत्र-पत्रिकाओं में अच्छे उपयोगी ग्रंथों की नीर-क्षीर-विवेकवती विस्तृत आलोचनाएँ छपें, आलोचनाओं में गुण-दोष का पूर्ण विवेचन हो तो मुझे आशा है, साहित्यिक और जनता में निकट संपर्क स्थापित होगा। बा० मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा, निराला, प्रेमचंद आदि को आज कौन नहीं जानता ? ये किसके प्रिय नहीं हैं ? नगरों में मौके-मौके पर साहित्यिक समारोह हों, उनमें साहित्यिक मंडली और जनता का परस्पर परिचय दिया जाय। एक साहित्यिक दूसरे साहित्यिक की कृतियों और विशेषताओं पर पर प्रकाश डाले। साहित्यिकों को जनता से हिलमिलकर लिखने के लिए बहुत से चरित्र और विषय मिलेंगे। इस प्रकार साहित्यिक भी लाभान्वित होंगे और जनता भी अपने साहित्यिकों की गुणगरिमा तथा साहित्य सम्पन्नता से परिचित होगी। सत्साहित्य का सस्ता प्रकाशन भी इसका अन्यतम उपाय है।

(३)

पचास साल पहले

(स्व० पांडेय जी की लेखनी से)

नवाबी शहर लखनऊ सदा से उर्दू का गढ़ रहा हो या नहीं, किंतु आज से चालिस-पचास वर्ष पहले अवश्य था। यहाँ केवल पं० शिवनाथ-शर्मा जी का साप्ताहिक "आनन्द" ही एकमात्र हिंदी का पत्र निकलता था और उसकी ग्राहक-संख्या, जहाँ तक मुझे मालूम है, हजार की संख्या तक कभी नहीं पहुँची। शर्मा जी उसे घाटा उठाकर भी यावज्जीवन निकालते रहे, क्योंकि वह हिन्दी के परम भक्त थे। शर्मा जी हास्य के उच्च-कोटि के लेखक थे। उनकी "मिस्टर व्यास की कथा" शीर्षक लेखमाला की जोड़ के लेख लिखनेवाला कोई लेखक आज भी नहीं देख पड़ता। हाँ, तो उस समय लखनऊ में हिंदी का प्रचार बहुत कम था। जिधर देखो, उधर उर्दू का ही बोलबाला था; बात चीत में उर्दू, अदालतों में उर्दू। उर्दू के अखबार और उर्दू की पुस्तकें ही अधिकतर छपती और बिकती थीं। कवि-सम्मेलन का तो नाम भी नहीं सुन पड़ता था; मुशायरे आये दिन हुआ करते थे।

उस समय मेरी अवस्था यही १५-१६ वर्ष की होगी। मैं संस्कृत का छात्र था और मेरी रुचि साहित्य में विशेष थी। साथ ही हिंदी में कुछ लिखने का शौक भी पैदा हो गया था। हिंदी में उस समय बिहार-बन्धु, श्रीवेंकटेश्वर समाचार, हिंदी बंगवासी, भारतमित्र, भारतजीवन आदि दो-चार साप्ताहिक निकलते थे। दैनिक तो कोई था ही नहीं। मासिक पत्रों में एकमात्र सरस्वती ही उल्लेख योग्य पत्रिका थी। और जो कोई मासिक निकलते थे, वे साधारण कोटि के थे। इन पत्रों में जो पत्र मुझे मिल जाते थे उन्हें मैं नियमित पढ़ता था; किन्तु किसी में

कोई अपनी रचना भेजने का साहस नहीं होता था। दैव संयोग से अचानक वह सुयोग भी मिल गया।

एक दिन मैं ऊपर बैठा बंबई के निर्णयसागर प्रेस के लिए श्रीमद्-भागवत के हिंदी अनुवाद (शुकोक्तिसुधासागर) का काम कर रहा था। बाहर से किसी ने गुरु-गंभीर स्वर में मेरा नाम लेकर पुकारा। आवाज अपरिचित थी। मैं काम में निमग्न था। वेदस्तुति का कठिन विषय चल रहा था। जब किसी काम में मन लगा होता है, तब उसे छोड़ने को जी नहीं चाहता। मैंने सोचा, कोई साहब ब्याह-शादी के निमंत्रण का मजमून लिखाने या उसमें दो चार दोहे जुड़वाने के लिए आये होंगे। यहाँ मैं यह बता देना चाहता हूँ कि उस समय भी पास-पड़ोस के ही नहीं, दूसरे मुहल्ले के लोग वह काम मुझसे कराने की कृपा किया करते थे और यह क्रम अभी तक जारी है। इसका कारण यही है कि मैं जरा संकोची जीव हूँ; मुझसे 'नाहीं' करते नहीं बनता और फिर काम भी मुफ्त हो जाता है। खर, मैंने टालने की नियत से ऊपर ही से पूछा—कौन महाशय हैं? नीचे से आवाज आई—अरे भाई, महाशय नहीं, एक साधारण मनुष्य हूँ। जरा यहाँ पधारिए तो। पाँच मिनट से अधिक समय नहीं लूँगा।

मैं कुछ लज्जित हुआ। नीचे उतरकर आया। दरवाजा खोलने पर दो मूर्तियाँ दिखाई पड़ीं। एक तो मेरे सहपाठी मित्र श्यामारामजी थे। किंतु दूसरे महाशय बिलकुल अपरिचित थे। ठिंगना कद, गोरा रंग, बड़ी बड़ी हँसती-सी आँखें, घनी और अस्त-व्यस्त मूछें। चेहरे पर चेचक के दाग। सादी पोशाक। हाथ में छड़ी। मित्र महाशय के साथ ही अपरिचित नवागन्तुक से प्रणाम करके मैंने बैठने के लिए कहा। मित्र ने कहा—मैं तो केवल आपसे आपको परिचित कराने के लिए आया था। आपका संक्षेप में परिचय देकर मैं जाना चाहता हूँ। मुझे एक बड़ा जरूरी काम है। फिर मिलूँगा। आपका (अपरिचित की ओर इशारा करके) शुभनाम श्रीगोपाललाल है। आप खत्री हैं। जौनपुर के रहने वाले हैं। इलाहाबाद बैंक में नौकर हैं। यहाँ बदलकर आये हैं। आप

हिंदी-नागरी के परमभक्त और प्रेमी हैं। आप से मिलना चाहते थे, सो मैंने मिला दिया। अच्छा, अब मैं चलता हूँ।

यों कहकर मित्र चल दिए। गोपाललाल जी भीतर आकर मेरी छोटी-सी अँधेरी कोठरी में जमीन पर बिछी दरी के ऊपर निःसंकोच बड़े आराम से बैठकर बोले—पांडेय जी, आपको मैंने बड़ा कष्ट दिया। शायद आप कोई काम कर रहे थे या कुछ पढ़ रहे थे?

मैंने संकुचित होकर कहा—जी हाँ, काम ही कुछ कर रहा था। पर कष्ट मुझे कुछ नहीं हुआ। आप जैसे सज्जनों के घर-बैठे दर्शन मिल जाना तो परम सौभाग्य की बात है।

गोपाललाल जी ने भुवनमोहिनी हँसी हँसकर कहा—आपने यह कैसे समझ लिया कि मैं सज्जन ही हूँ, दुर्जन नहीं?

मैंने भी हँसकर कहा—यह तो आपका चेहरा और व्यक्तित्व ही बता रहा है कि आप सिर से पैर तक सज्जन हैं; दुर्जनता तो आपके पास भी नहीं फटक सकती। मेरी अवस्था अभी थोड़ी अवश्य है; किंतु इतना मैं देखकर और दो बातें करके ही बता सकता हूँ कि अमुक मनुष्य सज्जन है और अमुक दुर्जन।

गोपाललालजी ने उसी मूड में कहा—तब तो आप एक पहुँचे हुए शख्स हैं। खैर, मैं आपसे लिखने-पढ़ने में कुछ सहायता चाहता हूँ।

इतना कहकर उन्होंने बड़े साइज के एक ताव में दुतर्फा लिखा हुआ एक घसीट लेख मेरे सामने निकाल कर रख दिया। मैंने देखा, वह लखनऊ की जनता से हिन्दी का व्यवहार करने के लिए मार्मिक अपील थी। आद्यन्त पढ़ कर मैंने कहा—आपने खूब लिखा है। इसमें कोई विशेष संशोधन की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। केवल व्याकरण की कुछ त्रुटियाँ हैं और कई स्थानों पर वाक्य-योजना कुछ असंगत सी हो गई है। सो मेरी समझ में अगर आप किसी हिंदी के प्रसिद्ध लेखक से सहायता लें तो अच्छा होगा। मैं तो अभी अधकचरा अप्रसिद्ध आदमी हूँ ....।

मेरी बात बीच ही में काट कर गोपाल बाबू कुछ आवेश के साथ

कह उठे—रहने दीजिए; मैं सब जानता हूँ। मैंने आपका लिखा वह अभिभाषण पढ़ा है, जो आपने अमुक व्यक्ति को लिख दिया था। मुझे तो ऐसे आदमियों पर घृणा होती है जो दूसरों से लिखा कर आप नाम कमाते हैं।

मैंने भी बाबूजी को बीच ही में रोक कर कहा—जाने दीजिए इस विषय को। बेचारों को सभापति बनने का शौक था; पर भाषण लिखने की फ़ुर्सत न होगी। मैंने ही लिख दिया। उनका इसमें दोष नहीं। आपका यह लेख मैं अपनी बुद्धि के अनुसार ठीक कर दूँगा।

गोपाल लालजी ने कहा—मेरा यह लेख मेरा और आपका संयुक्त लेख होगा। अब मैं सोचता हूँ, इसे छपाया किस पत्र में जाय? लखनऊ से तो 'आनंद' के सिवा और कोई हिंदी पत्र नहीं निकलता; और मैं इसे लखनऊ में ही छपाना चाहता हूँ। 'आनद' में न जाने कब छपे और मैं इसे जल्दी से जल्दी निकालना चाहता हूँ।

मैं कुछ देर तक सोचता रहा। फिर मैंने कहा—देखिए बाबू साहब, इसका तो एक ही उपाय है। पर वह उपाय हम लोगों के बूते के बाहर जान पड़ता है।

गोपाल लालजी ने आग्रह और उत्सुकता के साथ पूछा—बताइए तो भला, वह क्या उपाय है?

मैंने अपने लड़कपन पर कुछ हिचकिचाते हुए कहा—वह उपाय यही है कि लखनऊ से एक पत्र निकाला जाय। वह चाहे छोटा-सा ही हो और मासिक हो।

गोपाल बाबू उछल पड़े। बोले—भई वाह, आपने तो बिलकुल मेरे मन की ही बात कही। क्या आप मन को पढ़ने की कुछ विद्या भी जानते हैं?

मैंने कहा—नहीं, यह सिद्धि तो बहुत कष्टसाध्य है। बात यह है कि इधर कुछ दिनों से यह विचार मेरे मन में भी चक्कर मार रहा है। पर यह कार्य मेरे लिए तो वही महाकवि कालिदास के शब्दों में हँसे जाने के ही योग्य है—

कवि-जस चाहौं मदमति मैं उछाह के साथ ;
ज्यों वामन ऊँचे फलहिं उचकि चलावै हाथ ।

मेरे पास न तो धन है, न कोई पृष्ठपोषक, न सहायक। इसी से केवल सोचता ही रहता हूँ। आज आपके प्रश्न के उत्तर में अनायास ही यह बात मैं कह बैठा।

गोपाल लाल जी ने जरा देर सोचने के बाद कहा—आपकी इच्छा का बल मेरी इच्छा को मिल गया है। अब मैं अवश्य पत्र निकालूँगा। वह सोलह पृष्ठ का होगा। मूल्य १) रु० वार्षिक रखा जायगा। नाम "नागरी-प्रचारक" रहेगा। बस, आज ही मैं प्रेस ठीक करने जाता हूँ। डिक्लेरेशन वगैरह दस-पंद्रह दिन में निबट जायगा। आप उसके लिए एक अच्छा-सा 'मोटो' बना डालिए। आप कविता भी तो करते हैं ?

मैंने कहा—बाबू साहब, इतनी जल्दी न कीजिए। अगर पत्र दो-एक संख्या निकल कर ही रह गया तो लखनऊ में फिर और कोई हिंदी-पत्र निकालने के लिए तैयार न होगा।

गोपाल लालजी ने ताव के साथ कहा—आप घबराते क्यों हैं ? मेरी आमदनी अवश्य थोड़ी है; पर मैं हिंदी के प्रचार के लिए सब कष्ट सह सकता हूँ। एक साल तक तो मैं घाटा उठा कर भी चलाऊँगा। क्या तब तक इतने भी ग्राहक न मिल जायँगे कि पत्र अपने पैरों पर खड़ा हो सके ?

मैं उनके उत्साह और हिंदी-प्रेम से बहुत प्रभावित हुआ। मैंने कहा—मैं और तो कोई साधन नहीं रखता, लेकिन अपने श्रम से सेवा कर सकता हूँ।

गोपाललाल जी ने कहा—धन्यवाद। मैं इतना ही चाहता हूँ। अच्छा, आठवें दिन आप हो सके तो लाल बाग में मेरे घर पर पधारियेगा। एक-दो लेख भी पहली संख्या के लिए लिख लाइयेगा। सम्पादक आप ही होंगे।

इतना कहकर उन्होंने चमकते हुए चाँदी के पाँच रुपए मेरे हाथ पर रख दिये। कहा—नाहीं न कीजिएगा, नहीं तो मुझे बड़ा कष्ट होगा।

मैं कुछ न कह सका, रुपये ले लिये। बाबूजी चले गये।

अब जो लौटकर ऊपर गया और अनुवाद करना चाहा तो उसमें मन ही न लगा। लौट फिर कर वही 'नागरी प्रचारक' निकालने की बात सामने आने लगी। मैंने भागवत की पुस्तक बंद करके रख दी और नागरी-प्रचारक के लिए 'मोटो' सोचने लगा। सोचते-सोचते एक भाव मन में आया और उसे मैंने कागज पर उतार लिया। वह छंद यह है—

अर्थ निकरत है, अनर्थ न करत,
बर बरन हरत हिय, हिय मैं बिचारिये;
सुद्ध औ सरस, पद कोमल, अमल अंग,
गूढ़-धुनि, पुनि बहु भूषन सँवारिये।
सुन्दर, सुलच्छन, बिलच्छन चमतकार,
बिगत-बिकार, ताहि काहे को बिसारिये ?
नागर-निरादर सों नागरी-सी छीन
यह नागरी गरीबिनि को नैंकु तो निहारिये !

इस छंद में नागरी की नागरी (नारी) से तुलना की गयी है। जैसे नागरी नारी से अर्थ अर्थात् मतलब निकलता है, वैसे ही इस नागरी से अर्थ निकलता है। जैसे वह नागरी कोई अनर्थ या बुरा काम नहीं करती, वैसे ही इस नागरी की लिखावट से उर्दू की तरह अर्थ का अनर्थ नहीं होता, कुछ का कुछ नहीं पढ़ा जाता। उस नागरी का वर्ण (रंग) हृदयहारी होता है, और इस नागरी के वर्ण (अक्षर) भी सौंदर्य से हृदय को हरनेवाले हैं। वह नागरी शुद्ध (सच्चरित्र) है और यह भी शुद्ध लिखी-पढ़ी जाने के कारण शुद्ध है। वह नागरी सरस यानी रसीली है तो इस नागरी में भी नव रस है, इसके पढ़ने में रस (आनंद) मिलता है। उसके पैर कोमल हैं, इसकी कविता के भी पद कोमल हैं। उसके हाथ-पैर आदि अंग निर्मल-निर्दोष हैं, इसके भी अंग (दशांग साहित्य) निर्मल—निर्दोष हैं। उसकी ध्वनि अर्थात् आवाज कुल कामिनी होने के कारण सबको नहीं सुनाई पड़ती, इसकी भी

कविता में 'ध्वनि' गूढ़ रहती है। उस नागरी को अनेक आभूषणों से जैसे सजाते हैं; वैसे ही इस नागरी को भी अनेक शब्दार्थालंकारों से सजाया जा सकता है। दोनों ही सुंदर हैं। उस नागरी में सब अच्छे लक्षण हैं तो यह नागरी भी सुंदर लक्षणों से अथवा अच्छी 'लक्षणा' से युक्त है। दोनों का चमत्कार विलक्षण है। आप लोग विचारिये, फिर ऐसी नागरी को आप लोग क्यों भूले हुए हैं? जैसे नागर (नायक) से निरादर पाकर नागरी (नायिका) दिन-दिन दुबली होती जाती है, वैसे ही नागरों (नगरनिवासियों) के किये निरादर से क्षीण होती चली जा रही इस गरीब नागरी की ओर तनिक तो देखिये—इसकी सुध लीजिए।

छंद में भले ही सूक्ष्मदर्शियों को अनेक दोष देख पड़ें, पर एक सोलह वर्ष के बालक को तो उस समय अपार हर्ष हुआ था। मैं झूम-झूम कर दस-बीस बार इसे पढ़ गया; फिर भी तृप्ति न हुई।

सम्पादक का पद कितनी जिम्मेदारी का है और उसके लिए कितनी योग्यता, प्रतिभा और जानकारी की जरूरत होती है, इसका अनुभव इसी काम में आधी उम्र बिताकर अब करता हूँ। कभी-कभी अपनी अयोग्यता और धृष्टता पर लज्जा भी आती है। पर वह उमंग की अवस्था थी। अनायास इस तरह सम्पादक का गौरव हस्तगत होने की संभावना से ही एक मस्ती-सी छा गई। उन दिनों मैं माघ काव्य और नैषध चरित्र का पारायण कर रहा था, साथ में श्रीमद्भागवत का अनुवाद भी। कारण यह था कि घर में कमानेवाला और कोई न रह गया था। पिताजी का स्वर्गवास तभी हो गया था, जब मेरी अवस्था एक ही वर्ष की थी। पितामह देव, जो मेरे शिक्षा गुरु भी थे, बारह वर्ष की अवस्था में ही श्रीमद्भागवत को पढ़ा कर, वैकुण्ठवासी हो गये थे। इस लिए रोटी कमाने की भी चिन्ता सिर पर सवार थी। कारण, मेरे पूर्वज सभी गरीब थे; पूजा-पाठ और पुराण-पाठ ही उनकी वृत्ति थी। इसकी आय अनिश्चित थी; क्योंकि वह आकाशीवृत्ति थी। अस्तु।

मैं आठवें दिन 'ओरिएंटल' कालिज से लौटते समय (मैं मध्यमा तृतीय खंड की तैयारी कर रहा था) लाल बाग में गोपाललाल जी से मिला और

अपना छंद सुनाया। सुन कर उन्होंने भी बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। पहली संख्या के लिए दो लेख भी मैं लिख ले गया था। दे दिये। गोपाललाल जी ने कहा—डिक्लेरेशन दाखिल हो गया और मेरे एक कचहरी के मित्र की सहायता से वह मंजूर भी हो गया। अब मैं यह मैटर प्रेस में कल दे दूँगा। पत्र पहली तारीख को अवश्य निकल जायगा। चलते समय उन्होंने फिर मुझे दस-दस रुपये के दो नोट दिये। उनका वह श्रद्धा का दान मुझे आज के दो सौ रुपयों से अधिक महत्त्व का मालूम पड़ता है।

नागरी-प्रचारक मेरे सम्पादकत्व में निकला। खेद है, अन्य अनेक मेरी प्रिय बहुमूल्य पुस्तकों और ग्रंथों के साथ हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण और नागरी प्रचारक की फाइलें भी, जब मैं काशी में बाबू जयशंकर 'प्रसाद' जी के यहाँ रहकर 'इन्दु' तथा भारत-धर्म महामण्डल की हिन्दी मुख पत्रिका 'निगमागम चंद्रिका' का सम्पादन करता था, लखनऊ के घर में दीमकें चाट गई, जिसका दुःख मुझे यावज्जीवन रहेगा; नहीं तो मैं यहाँ नागरी-प्रचारक के प्रथम अंक की कुछ रूपरेखा तो अवश्य ही प्रस्तुत करता। खैर, नागरी प्रचारक निकला और उसके ५-६ सौ ग्राहक भी हो गये।

गोपाललाल जी की भी उन्नति हुई। इलाहाबाद बैंक की एक शाखा चौक में खुली और उसमें गोपाललाल जी सब एजेंट नियुक्त हुए। यहाँ पर मैं हिंदी के उदीयमान लेखक श्री अमृतलाल नागर के पितामह पं० शिवराम शास्त्री जी का जिक्र किये बिना नहीं रह सकता। वह सचमुच देवता थे। वह भी गोपाललालजी के साथ चौक ब्रांच में काम करते थे। मुझ पर उनकी असीम कृपा थी। वह मुझे पुत्रवत् समझते थे और सदा अच्छी शिक्षा देते रहते थे; मेरा उत्साह बढ़ाते रहते थे। इलाहाबाद की चौक शाखा में सुप्रसिद्ध कवि, महान् अभिनेता और उत्कट लेखक पं० माधव जी शुक्ल भी बदल कर आ गए थे। उनका नाम अवश्य सुना था, उनकी ओजस्विनी स्वदेश भक्ति पूर्ण कविताएँ भी एक आध पढ़ी थीं; पर दर्शन का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था।

एक दिन शाम को मैं नागरी प्रचारक के संबंध में कुछ बातचीत करने के लिए बैंक में गया। बैंक का समय समाप्त हो गया था। एक कुर्सी

पर गोपाल लालजी बैठे थे, उनके पास ही पं० शिवराम जी ज्ञानी बैठे थे। सामने एक भीमकाय युवक खड़े हुए वीर मुद्रा में कोई कविता सुना रहे थे। मैं जाकर बैठ गया। वह युवक कविता जब समाप्त कर चुके, तब शिवराम जी ने कहा—पाँडेय जी, आज आप भी अपनी कोई कविता सुनाइए।

इतने दिन के हेलमेल से मेरा संकोच बहुत-कुछ दूर हो चुका था। मैंने उसी दिन एक छंद खड़ी बोली में लिखा था और उसे किसी को सुना कर उसकी अच्छाई-बुराई जानने को उत्सुक हो रहा था। मैंने कुछ भी हीला-हवाला न करके सुना दिया—

काम के, क्रोध के, लोभ के, मोह के कैसे खड़े हैं कड़े पहरे प्रभु ;
पापी, सुरापी, प्रतापी बने, कर धर्म के कर्म गिरे गहरे प्रभु।
लाख पुकारिये घोर विपत्ति में, आप नहीं सुनते बहरे प्रभु।
क्यों जन आपके पीड़ित हों नहीं, आप 'जनार्दन'❀ जो ठहरे प्रभु।

छंद समाप्त होते ही उन युवक ने लपक कर मुझे उठाकर छाती से लगा लिया, और गद्‌गद कण्ठ से बोले—वाह वाह पाँडेयजी, खूब कहा! बहुत सुन्दर छंद है! बड़ा बढ़िया भाव है! अनुपम भाषा है! मैं भविष्य-वाणी करता हूँ, आप बहुत बड़े............

मैं भौचक्का-सा रह गया। श्लाघा, ऐसा हार्दिक अभिनन्दन मैंने आज तक किसी से नहीं पाया था। यह समझते हुए भी कि यह एक भावुक कवि-हृदय की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा है, न कि गुण-दोषों को काँटे तोल कर देखने वाले कठिन समालोचक की वाणी, मैं वास्तव में कृतकृत्य हो गया। मैंने झुक कर युवक के पैर छूना चाहा। पर उन्होंने बीच में रोक कर कहा—ऐसा न करो, ऐसा न करो।

गोपाललाल जी अब तक चुप थे। उन्होंने मुझसे कहा—पाँडेयजी, आप इनको जानते हैं? यह हैं प्रयाग के पं० माधवजी शुक्ल। मैंने इनसे

❀ 'जनार्दन' का अर्थ है दुष्टजनों को पीड़ित करनेवाला। पर कविता में उसका शाब्दिक अर्थ लिया गया है—जन—अर्दन ; अपने जनों को सतानेवाला।
—लेखक

आपकी चर्चा की थी। यह आपसे मिलने के लिए उत्सुक थे। मैं बुलानेवाला ही था, आप स्वयं आ गये।

माधव जी हँस कर बोले—दिल की कशिश ऐसी ही होती है।

उस दिन दो-तीन घंटे का समय जिस आनन्द से बीता, वह आज भी मुझे नहीं भूलता। फिर तो जब तक माधव जी यहाँ रहे, तब तक नित्य उनसे समागम होता रहा। अगर मैं न जा पाता था तो वह स्वयं मेरे घर चले आते थे। आह, वे दिन कहाँ गये ?

नागरी प्रचारक कई वर्ष तक गोपाललाल जी निकालते रहे। फिर उसे लखनऊ के प्रसिद्ध ऐडवोकेट, बा० श्यामाचरण बनर्जी निकालने लगे। वह उन्हीं के पुत्र बा० उमाचरण बनर्जी के ऐंग्लो ओरियंटल प्रेस में छपता था। मैं जब काशी चला गया, तब उससे मेरा संबंध-विच्छेद हो गया। श्यामाचरण जी बहुत अच्छी हिंदी लिख लेते थे। नागरी प्रचारक में शर्मा, विदूषक आदि कई नामों से वह लिखते थे। उनके लेख उच्च कोटि के होते थे।

आज बा० गोपालाल जी, बा० श्यामाचरण बनर्जी, पं० माधवजी शुक्ल इस लोक में नहीं हैं; पर उन्होंने उस युग में हिन्दी की उन्नति के लिए जो प्रयत्न किया था, वह सर्वथा सफल हुआ है। इन सज्जनों के नाम हिन्दी के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखे जाने योग्य हैं। मुझे विश्वास है, हिन्दी की बहुमुखी उन्नति और प्रचार तथा युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बिहार आदि अधिकांश प्रान्तों में तथा केन्द्र में भी देवनागरी राष्ट्रलिपि और हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकृति होते देखकर इन महापुरुषों की आत्मा को परम शान्ति हुई होगी।

---

(४)

पांडेय जी के ग्रंथ

अनुवाद (संस्कृत से)

१. शुकोक्तिसुधासागर (भागवत), निर्णय सागर प्रेस, बंबई
२. सुबोध भागवत (भागवत), हिंदुस्तानी बुक डिपो, लखनऊ
३. भागवत का हिंदी अनुवाद (गद्य-पद्य में) लखनऊ (अप्राप्य)
४. महाभारत (१२ पर्व), इंडियन प्रेस, प्रयाग
५. चंद्रप्रभ चरित (जैन काव्य) उदयलाल कासलीवाल, बंबई
६. चाणक्यनीति (गद्य और पद्य), नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
७. आध्यात्मरामायण ,, ,,

नाटक (बंगला से)

१. खाँजहाँ (क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद), गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
२. मूर्खमंडली (द्विजेन्द्रलाल राय), ,, ,,
३. पतिव्रता (गिरीश घोष), उदयलाल कासलीवाल, बंबई
४. प्रफुल्ल ,, ,, ,,
५. अचलायतन (रवीन्द्र), गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
६. राजा-रानी (रवीन्द्र—ब्लैंकवर्स), इंडियन प्रेस, प्रयाग
७. कृष्णकुमारी (माइकेल मधुसूदन दत्त), गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
८. शाहजहाँ (द्विजेंद्रलाल राय), हिंदी ग्रंथरत्नाकर, बंबई
९. नूरजहाँ ,, ,, ,,
१०. दुर्गादास ,, ,, ,,
११. सीता ,, ,, ,,
१२. पाषाणी ,, ,, ,,
१३. अशोक (क्षीरोद प्रसाद), गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
१४. पद्मिनी ,, नवल किशोर प्रेस ,,

१५. ताराबाई (द्विजेंद्र—ब्लैकवर्स), हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई
१६. भीष्म (द्विजेंद्र) „ „
१७. पृथ्वीराज पुस्तक भंडार, इलाहाबाद

उपन्यास (बंगला से)

१. बहता हुआ फूल (चारु वंद्योपा०), गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
२. परगाछा „ „ „
३. विजया (शरच्चंद्र) „ „
४. पंडित जी „ इंडियनप्रेस, प्रयाग
५. मझलीदीदी „ „ „
६. बड़ादादा „ „ „
७. गृह दाह „ „ „
८. लेन-देन „ „ „
९. अरक्षणीया „ „ „
१०. देहाती समाज „ „ „
११. चरित्रहीन „ हिंदीग्रंथरत्नाकर, बंबई
१२. नष्टनीड़ (रवींद्र) मायाप्रेस, प्रयाग
१३. दो बहनें „ „ „
१४. चतुरंग „ „ „
१५. चार अध्याय „ „ „
१६. तीन साथी „ „ „
१७. आँख की किरकिरी „ हिंदीग्रंथरत्नाकर, बंबई
१८. गोरा „ प्रताप प्रेस, कानपुर
१९. घर और बाहर „ इंडियनप्रेस, प्रयाग
२०. कमला (बंगला के श्रेष्ठ १२ लेखक) रामविलास पांडेय, लखनऊ
२१. संध्या (हेमेंद्रप्रसाद घोष) „ „
२२. पलाशवन (अविनाशचंद्र दास) हिंदीग्रंथरत्नाकर, बंबई
२३. अमला (उपेंद्रनाथ गंगोपाध्याय) विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ
२४. राजधानी (मनोज वसु) हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर बंबई

२५. नीलम की अँगूठी (विभूतिभूषण मुख०) हिंदी ग्रंथ रत्नाकर बंबई
२६. कपटी साहित्य भंडार प्रयाग
२७. जीवनसंध्या (रमेशचंद्र दत्त), दि नेशनल इनफार्मेशन ऐंड पबलिकेशन्स लि०, बंबई
२८. जीवन प्रभात ,, मायाप्रेस प्रयाग
२९. माधवीकंकण ,, ,, ,,
३०. गल्पगुच्छ (५ भाग—रवींद्र) इंडियनप्रेस, ,,
३१. मंजरी (कहानी-संग्रह) गंगापुस्तकमाला, लखनऊ

बालोपयोगी (मौलिक)

१. सुबोध भागवत हिंदुस्तानी बुकडिपो, लखनऊ
२. सुबोध महाभारत ,, ,,
३. सुबोध रामायण ,, ,,
४. प्रतापी परशुराम ,, ,,
५. महावीर हनुमान ,, ,,
६. महारथी अर्जुन ,, ,,
७. बाल-कालिदास इंडियनप्रेस, प्रयाग

पद्य (मौलिक)

१. श्रीकृष्णचरित (१८ खंड) हिंदी साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ
२. पराग (कवितासंग्रह) गंगापुस्तकमाला, लखनऊ
३. रसिक-रंजन (नायिका भेद ३०० छंद) अप्रकाशित
४. मारदमोह हिंदुस्तानी बुकडिपो, लखनऊ
५. भक्त अंबरीष ,, ,,

गद्य (मौलिक)

१. हमारे धर्मग्रंथ हिंदुस्तानी बुकडिपो, लखनऊ
२. घरेलू शिक्षा ,, ,,

फुटकल

१. विद्यासागर की जीवनी (चंडीचरण), इंडियनप्रेस, प्रयाग
२. भूप्रदक्षिणा (चंद्रशेखरसेन बार-एट ला) ,, ,,
३. ज्ञान और कर्म (सर गुरुदास बनर्जी), हिंदीग्रन्थरत्नाकर, बम्बई
४. चौबे का चिट्ठा (बंकिमचंद्र) ,, ,,
५. गीतांजलि (रवीन्द्र —गद्य), बिरवा इस्टेट के राजा, जिला हरदोई
६. सामाजिक प्रबंध (भूदेव मुखोपा०) भारतधर्म महामंडल, काशी
७. नारी-नीति (प्रकाशक का नाम स्मरण नहीं)
८. कृत्तिवासी रामायण (पद्यानुवाद—युद्ध तथा बालकांड) कालीप्रसन्न सिंह सबजज, लखनऊ

सम्पादित ग्रन्थ

१. शिवसिंह-सरोज नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
२. स्त्री-सुबोधिनी ,, ,,
३. तुलसीकृत रामायण (सटीक) ,, ,,
४. शिवराजभूषण (टीका) ,, ,,

सम्पादित पत्र

१. नागरी-प्रचारक मासिक, लखनऊ
२. निगमागमचंद्रिका, ,, भारत धर्म महामंडल. काशी
३. इंदु ,, ,,
४. कान्यकुब्ज ,, लखनऊ (२ वर्ष तक)
५. माधुरी ,, ,, (२१ वर्ष तक)
६. सुधा ,, ,, (५ वर्ष तक)
७. कृष्णा ,, देव इस्टेट, जिला गया
८. वासंती ,, लखनऊ (प्रकाशित होने को थी)

—: ❀ :—

मूल्यांकन

(१)

श्री रामखेलावन चौधरी

माधुरी का प्रकाशन ३० जुलाई, १६२२ से आरंभ हुआ। पं० दुलारे लाल भार्गव ने पांडेय जी के सहयोग से संपादन-कार्य का भार सँभाला। उन्होंने अपने प्रथम अंक के नम्र निवेदन में लिखा था—"और मित्रवर पं० रूपनारायण जी ने हमारा इस कार्य में करावलंब किया।" इन दोनों व्यक्तियों की लगन और परिश्रम के बल पर ही माधुरी हिंदी पाठकों के गले का हार बन गयी। उसकी फाइलें देखने पर ज्ञात होता है कि पांडेय जी तथा दुलारेलाल जी जब माधुरी से अलग हो गये तब उनके स्थान पर स्वर्गीय पं० कृष्णबिहारी मिश्र और उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द आसीन हुए। सन् १६३५ (यह तिथि निश्चित नहीं है) के लगभग रूपनारायण जी फिर वापस आये और मातादीन शुक्ल के साथ माधुरी का संपादन करने लगे। एक वर्ष के बाद ही पांडेय जी अकेले रह गये। अगस्त, १६३६ में माधुरी ने १५ वें वर्ष में प्रवेश किया। तब से १६४६ तक की फाइलों में केवल उन्हीं के द्वारा संपादित माधुरी के दर्शन होते हैं।

माधुरी का 'संपादकीय'—'हमारा दृष्टिकोण' के नाम से प्रत्येक अंक के अंतिम पृष्ठों में प्रकाशित होता रहा है। सन् १६३६ से पहले के 'संपादकीय' नोट पं० रूपनारायण पांडेय तथा अन्य सहयोगियों द्वारा लिखे गये होंगे, परन्तु इसी वर्ष से पांडेय जी के अकेले रह जाने पर जो भी संपादकीय लिखे गये, उन्हें पांडेय-कृत ही मानना उचित होगा। इस तथ्य को स्वीकार कर लेने के उपरांत, उनके विविध-विषयक ज्ञान, उनके साहित्यिक व्यक्तित्व, उनकी संपादन कला तथा उनके आदर्शों और उनकी लेखन शैली आदि का अनुभव लगाया जा सकता है। 'हमारा दृष्टिकोण' के

अंतर्गत लिखी गयी सम्पादकीय टिप्पणियाँ पांडेय जी के संबंध में किये गये शोधात्मक कार्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

पांडेय जी का संपादन-काल सभी दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण था। सन् १९३६ से लेकर १९४९ तक देश के भीतर तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महान् घटनाएँ घटित हुईं। भारत में राष्ट्रीय आंदोलन और उसके फल-स्वरूप कांग्रेसी मंत्रिमंडलों का स्थापित होना, हिंदी तथा शिक्षा के प्रति उत्साह, योरोप में हिटलर का उदय और विश्व युद्ध का प्रारंभ, समस्त संसार में भीषण उथल-पुथल, युद्ध की समाप्ति और भारत की आजादी आदि ऐतिहासिक घटनाएँ घटीं। 'हमारा दृष्टिकोण' के अंतर्गत इन सभी घटनाओं पर टिप्पणियाँ दी गयीं हैं। इन राजनीतिक-सामयिक घटनाओं के अतिरिक्त हिंदी जगत् में होनेवाली घटनाओं, जैसे हिंदी-साहित्य-सम्मेलनों के अधिवेशनों, नागरी लिपि के सुधार पर किये गये प्रतिवेदनों, आल इंडिया रेडियो की हिंदी के विद्वानों के प्रति उपेक्षा नीति, हिंदी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का विवाद आदि पर भी विचार प्रकट किये हैं। इस प्रकार पांडेय जी द्वारा लिखे गये संपादकीय लेख अपने युग के प्रतिबिंब हैं और उनका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है।

'हमारा दृष्टिकोण' के अन्तर्गत पांडेय जी समय-समय पर स्थायी महत्व वाले विषयों पर भी प्रकाश डालते थे। उनमें विद्यार्थियों के लिये अध्ययन की पर्याप्त सामग्री मिल सकती है। शुद्ध साहित्यिक, ऐतिहासिक शैक्षिक, सांस्कृतिक तथा अन्य प्रकार की टिप्पणियाँ काफी लम्बी हैं और उन्हें 'निबंध' कहा जाय, तो अच्छा होगा। उचित यह होगा कि उनका संकलन करके पुस्तक रूप में छपा लिया जाय। ऐसी स्थिति में इस निबंधावली का लगभग वही महत्व होगा, जो पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के निबंध संकलनों का है। पांडेय जी की वे टिप्पणियाँ अच्छे निबंधों की श्रेणी में आती हैं। कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं—जिन्हें हम वर्गीकरण करके प्रस्तुत कर रहे हैं :—

साहित्यिक—कविता का स्वरूप—अगस्त ३८, उपन्यासों के प्रकार—अगस्त १९४०, वेद में सौन्दर्यवाद—दिसम्बर १९४१, रामायण और महा-

मूल्यांकन

(१)

श्री रामखेलावन चौधरी

माधुरी का प्रकाशन ३० जूलाई, १६२२ से आरंभ हुआ। पं० दुलारे लाल भार्गव ने पांडेय जी के सहयोग से संपादन-कार्य का भार सँभाला। उन्होंने अपने प्रथम अंक के नम्र निवेदन में लिखा था—"और मित्रवर पं० रूपनारायण जी ने हमारा इस कार्य में करावलंब किया।" इन दोनों व्यक्तियों की लगन और परिश्रम के बल पर ही माधुरी हिंदी पाठकों के गले का हार बन गयी। उसकी फाइलें देखने पर ज्ञात होता है कि पांडेय जी तथा दुलारेलाल जी जब माधुरी से अलग हो गये तब उनके स्थान पर स्वर्गीय पं० कृष्णविहारी मिश्र और उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द आसीन हुए। सन् १६३५ (यह तिथि निश्चित नहीं है) के लगभग रूपनारायण जी फिर वापस आये और मातादीन शुक्ल के साथ माधुरी का संपादन करने लगे। एक वर्ष के बाद ही पांडेय जी अकेले रह गये। अगस्त, १६३६ में माधुरी ने १५ वें वर्ष में प्रवेश किया। तब से १६४६ तक की फाइलों में केवल उन्हीं के द्वारा संपादित माधुरी के दर्शन होते हैं।

माधुरी का 'संपादकीय'—'हमारा दृष्टिकोण' के नाम से प्रत्येक अंक के अंतिम पृष्ठों में प्रकाशित होता रहा है। सन् १६३६ से पहले के 'संपादकीय' नोट पं० रूपनारायण पांडेय तथा अन्य सहयोगियों द्वारा लिखे गये होंगे, परन्तु इसी वर्ष से पांडेय जी के अकेले रह जाने पर जो भी संपादकीय लिखे गये, उन्हें पांडेय-कृत ही मानना उचित होगा। इस तथ्य को स्वीकार कर लेने के उपरांत, उनके विविध-विषयक ज्ञान, उनके साहित्यिक व्यक्तित्व, उनकी संपादन कला तथा उनके आदर्शों और उनकी लेखन शैली आदि का अनुभव लगाया जा सकता है। 'हमारा दृष्टिकोण' के

अंतर्गत लिखी गयी सम्पादकीय टिप्पणियाँ पांडेय जी के संबंध में किये गये शोधात्मक कार्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

पांडेय जी का संपादन-काल सभी दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण था। सन् १६३६ से लेकर १६४६ तक देश के भीतर तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महान् घटनाएँ घटित हुई। भारत में राष्ट्रीय आंदोलन और उसके फल-स्वरूप कांग्रेसी मंत्रिमंडलों का स्थापित होना, हिंदी तथा शिक्षा के प्रति उत्साह, योरोप में हिटलर का उदय और विश्व युद्ध का प्रारंभ, समस्त संसार में भीषण उथल-पुथल, युद्ध की समाप्ति और भारत की आजादी आदि ऐति-हासिक घटनाएँ घटीं। 'हमारा दृष्टिकोण' के अंतर्गत इन सभी घटनाओं पर टिप्पणियाँ दी गयीं हैं। इन राजनीतिक-सामयिक घटनाओं के अतिरिक्त हिंदी जगत् में होनेवाली घटनाओं, जैसे हिंदी-साहित्य-सम्मेलनों के अधि-वेशनों, नागरी लिपि के सुधार पर किये गये प्रतिवेदनों, आल इंडिया रेडियो की हिंदी के विद्वानों के प्रति उपेक्षा नीति, हिंदी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का विवाद आदि पर भी विचार प्रकट किये हैं। इस प्रकार पांडेय जी द्वारा लिखे गये संपादकीय लेख अपने युग के प्रतिबिंब हैं और उनका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है।

'हमारा दृष्टिकोण' के अन्तर्गत पांडेय जी समय-समय पर स्थायी महत्व वाले विषयों पर भी प्रकाश डालते थे। उनमें विद्यार्थियों के लिये अध्ययन की पर्याप्त सामग्री मिल सकती है। शुद्ध साहित्यिक, ऐतिहासिक शैक्षिक, सांस्कृतिक तथा अन्य प्रकार की टिप्पणियाँ काफी लम्बी हैं और उन्हें 'निबंध' कहा जाय, तो अच्छा होगा। उचित यह होगा कि उनका संकलन करके पुस्तक रूप में छपा लिया जाय। ऐसी स्थिति में इस निबंधावली का लगभग वही महत्व होगा, जो पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के निबंध संकलनों का है। पांडेय जी की वे टिप्पणियाँ अच्छे निबंधों की श्रेणी में आती हैं। कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं—जिन्हें हम वर्गीकरण करके प्रस्तुत कर रहे हैं :—

साहित्यिक—कविता का स्वरूप—अगस्त ३८, उपन्यासों के प्रकार—अगस्त १६४०, वेद में सौन्दर्यवाद—दिसम्बर १६४१, रामायण और महा-

भारत में नाटक—दिसम्बर १९४१, साहित्य में समालोचना का स्थान—मई १९४२, रूसी साहित्य और गोगल—अगस्त १९४२, हिन्दुओं का अलंकार-शास्त्र—अगस्त १९४३, हिंदी के पत्र : पहले और अब—सितम्बर १९४३, मुद्राराक्षस में चाणक्य—नवम्बर १९४६, संस्कृत साहित्य में नाटक—मई १९४७, शरत् के उपन्यासों में नारी चरित्र की कई विशेषताएँ—जूलाई १९४८, साहित्य और उसका प्रयोजन—फरवरी १९४९ आदि।

जीवनी—मैक्सिम गोर्की—अगस्त, १९३६, रुडयार्ड किपलिंग—मार्च, १९३९, कार्ल मार्क्स—फरवरी १९४२, उपन्यास लेखिका जार्ज इलियट—जून १९४२, सुप्रसिद्ध हास्यरसाचार्य मोलियर—अप्रैल ४२, कविवर कीट्स—जूलाई १९४२, कविवर कीट्स—अप्रैल १९४३ आदि।

भाषा विज्ञान—लिपि में सुधार—जूलाई-अगस्त १९३५, महाप्राण वर्णों के संबंध में—सितम्बर ३५, हमारे देवनागरी अक्षर और लिपि—अप्रैल-मई १९४४, भाषा पर बाहरी प्रभाव—नवम्बर ४४, भाषा विज्ञान और इतिहास—अक्तूबर १९४५, भारत की भाषा और लिपि—मई १९४९ आदि।

ऐतिहासिक-गवेषणात्मक—मौर्यकाल में गुप्तचर विभाग—दिसम्बर १९ १, प्राचीन भारत की युद्ध-नीति, प्राचीन भारत के प्रमाण लेख—जनवरी १९४३, भारत का पुरातत्व—जनवरी १९४४, दक्षिण भारत में आर्य उपनिवेश—मई १९४४, पुराणों पर—फरवरी १९४५, प्राचीन भारत में गवाह, गवाही आदि मार्च १९४५, प्राचीन भारत के गाँव—फरवरी १९४६।

सांस्कृतिक—संस्कार और साहित्य—जूलाई ३५, प्राचीन भारत के मणि और रत्न—मार्च ४२, अग्निदेवता आदि—जून ४३, विद्यालय—सितम्बर ४२, रामायण के पुत्र की शिक्षा, जूलाई ४३, हमारी संस्कृति—जनवरी ४४, प्राचीनकाल के क्रीड़ा-कौतुक—मई ४४, हिंदुओं की दंड-विधि—सितम्बर १९४५, प्राचीन भारत के फल-फूल, पेड़ पौधे और लतायें—अगस्त ४६।

दार्शनिक—एमर्सन वेदांत—दिसम्बर १९४०, मुक्ति की चेतना—दिसम्बर १९४३, नियतिवाद—जून ४४, महत्मा कुट का दृष्टिकोण मार्च ४७।

ऐसा कहा जाता है कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' द्वारा अनेक नवीन लेखकों को उद्बोधन और प्रोत्साहन देकर हिंदी साहित्य की सेवा के लिये तैयार किया। निश्चय ही माधुरी भी पांडेय जी के संपादकत्व में इसी आदर्श की पूर्ति के लिये सदैव तत्पर रही। द्विवेदी जी के बाद साहित्योद्यान को सींचने का गुरुतर भार पांडेय जी ने वहन किया। उनकी 'माधुरी' के माध्यम से जमे हुए लेखकों की आकांक्षाओं की पूर्ति तो हुई ही, अनेक नये लेखकों और कवियों की प्रतिभा भी उसके द्वारा प्रकाश में आयी। द्विवेदी जी की 'सरस्वती' ने हिंदी की नवीन प्रवृत्तियों (छायावाद) और प्रयोगों के विरुद्ध कदाचित् प्रतिक्रियावादी रुख अपनाया था, परन्तु माधुरी ने अखाड़ेबाज़ी और शिविर बंधनों से मुक्त रहकर निष्पक्ष भाव से साहित्य-सेवा का प्रण किया। इस दृष्टि से माधुरी का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत प्रगतिवादी था, रूढ़िवादी नहीं। ३० जूलाई १९२२ के प्रथम अंक में माधुरी के उद्देश्यों की स्पष्ट घोषणा करते हुए बताया गया कि यह नवीन पत्रिका हिंदी में उच्चकोटि के स्थायी साहित्य को उत्पन्न करने, हिंदी के हर अंग को संकलित करने, हिन्दी की लेखन-शैली में आवश्यक सुधार करने, जनता के मनोरंजन के साथ हिंदी और देश की सेवा करने, हिंदी भाषा-भाषी भारतवासियों में हिंदी साहित्य के प्रति अनुराग और श्रद्धा उत्पन्न करने, हिंदी के प्रतिभाशाली लेखकों और कवियों को उत्साहित और पुरस्कृत करने और उनकी गवेषणा 'प्रतिभा', कल्पना और सहृदयता से हिंदी साहित्य के भंडार को भरने का सतत प्रयत्न करती रहेगी। साथ ही यह भी बताया गया कि यह हिंदी की अन्य पत्रिकाओं से प्रतियोगिता नहीं करेगी। संभवतः यह संकेत 'सरस्वती' की ओर था अर्थात् वह माधुरी किसी प्रकार भी किसी वाद या 'स्कूल' विशेष का पक्ष नहीं ग्रहण करेगी। साथ ही चित्रकला के प्रति रुचि जाग्रति करना भी इसका उद्देश्य था। अगस्त १९३५ में जब माधुरी ने अपने १४ वें वर्ष में प्रवेश किया तो पांडेय जी तथा उनके सहयोगी मातादीन शुक्ल ने 'नवीन आयोजन' के अंतर्गत नयी घोषणा की, जिसके अनुसार माधुरी का दृष्टिकोण और भी अधिक उदार बन गया। इसमें विश्व-साहित्य के साथ आदान-प्रदान की योजना का संकेत था। इस घोषणा का

स्वागत लेखक और पत्रों ने किया जिसके कुछ अंश अक्तूबर १६३५ के अंक से दिये जा रहे हैं :—

"पं० रूपनारायण पांडेय अनुभवशील सिद्ध माधुरी के प्राचीन संपादक हैं।" "निराला"—पृष्ठ ४७०, माधुरी, अक्तूबर १६३५।

"जब से पं० रूपनारायण जी माधुरी में आये हैं, वे इसका स्टैंडर्ड फिर ऊँचा करने की चेष्टा कर रहे हैं और उन्हें सफलता भी मिल रही है। माधुरी ने अपने प्रारंभिक दिनों में पत्रिका साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया था। पांडेय जी का भी उसमें पूरा हिस्सा है।"

"योगी" पृष्ठ ४७१, माधुरी, अक्तूबर १६३५.

इसमें संदेह नहीं कि लेखकों के साथ पांडेय जी के व्यक्तिगत संबंध भी बहुत अच्छे रहे होंगे, तभी वे लोग हर्षपूर्वक अनेक कृतियाँ माधुरी को भेजा करते थे। तत्कालीन सभी प्रसिद्ध लेखकों और कवियों की कृतियाँ माधुरी में प्रकाशित होती थीं। माधुरी के अंकों को देखकर यह बात सरलता से समझी जा सकती है। पाठकों की जानकारी के लिये उन लेखकों और कवियों की सूची नीचे दे रहा हूँ, जो उस युग के अत्यन्त प्रतिष्ठित साहित्यिक थे या रहे हैं और जो माधुरी में पांडेय जी के प्रभाव से ही अपनी रचनाएँ भेजा प्रकाशनार्थ करते थे :—

लेखक—पं० श्रीराम शर्मा, पं० कृष्णबिहारी मिश्र, जयशंकर-प्रसाद, प्रेमचंद, सुदर्शन, परशुराम चतुर्वेदी, नलिनीमोहन सान्याल, लोचन-प्रसाद पांडेय, जहूर बख्श, प्रो० आद्यादत्त ठाकुर, शिवपूजन सहाय, संत-राम बी० ए०, रामदास गौड़, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, डा० गंगानाथ झा, हरिभाऊ उपाध्याय, नंददुलारे बाजपेयी, चंद्रमौलि शुक्ल आदि।

कवि—मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, बा० जयशंकर प्रसाद, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', वियोगी हरि, गुरुभक्त सिंह, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भगवती चरण बर्मा, ठा० गोपाल शरण सिंह, मोहन लाल महतो 'वियोगी' आदि।

उपर्युक्त लेखकों और कवियों के सक्रिय सहयोग का ही परिणाम

था कि माधुरी में सर्वोत्तम पाठ्य सामग्री पाठकों को प्राप्त होती थी। साथ ही नये लेखकों को भी यथोचित प्रोत्साहन प्रदान किया जाता था। पांडेय जी कितने ही लेखकों को सामने लाये। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के बाद यदि कोई अन्य व्यक्ति इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ तो वह रूपनारायण पांडेय ही थे।

पं० रूपनारायण पांडेय में साहित्य-रचना की नैसर्गिक प्रतिभा भी थी और परिश्रम द्वारा प्राप्त पांडित्य भी। उनके भीतर एक सहृदय कवि वर्तमान था; परन्तु अनुवाद-कार्य और पत्रकारिता के गुरुभार से दबकर उसका विकास कुछ कुंठित हो गया; तथापि वे पुरानी काव्य-परंपरा का अनुगमन करते रहे और उन्होंने स्वांतः सुखाय काव्य-रचना का क्रम अपने अवकाश के क्षणों में जारी रक्खा। उनकी स्फुट कविताओं का संग्रह अलग 'पराग' के नाम से प्रकाशित हुआ। अवकाश प्राप्त करने के बाद भी उनकी सी काव्य-प्रतिभा के स्रोत से स्फुट कविताएँ जन्म लेती रहीं जो एक 'रजिस्टर' में संगृहीत हैं। माधुरी में पांडेय जी ने विशेष रूप से अपनी कविताएँ छाप कर अन्य कवियों का अधिकार कभी भी नहीं छीना। सर-सरी तौर पर माधुरी की फाइलें देखने पर दो-चार कविताएँ ही ऐसी मिलीं जो पांडेय जी द्वारा रचित थीं। वहीं उनका उपनाम 'कमलाकर' भी देखने को मिला। कुछ कविताएँ हैं— 'विद्या की महिमा' (जून १९३९) 'उद्गार'—अप्रैल १९४८, विद्या के लाभ—जूलाई १९४७, प्रोत्साहन—मई १९४७।

यों तो पांडेय जी कई भाषाओं के ज्ञाता थे, परन्तु संस्कृत और बंगला का उनका ज्ञान असीम था। बंगला भाषा और उसके साहित्य का अध्ययन उन्होंने किस सीमा तक किया, इसका अनुमान उनके द्वारा अनुवादित पुस्तकों और मूल कृतियों के मिलान से ही हो सकता है। यह विषय अलग एक शोधपूर्ण कार्य होगा। उस पर यहाँ कुछ भी विचार प्रकट करना संभव नहीं है। हाँ, उनके संस्कृत भाषा और साहित्य के ज्ञान की सामान्य चर्चा मैं अवश्य करूँगा। उनके इस ज्ञान का अनुमान उनकी संपादकीय टिप्पणियों से लगाया जा सकता है। पांडेय जी ने संस्कृत के वेद, पुराण,

महाकाव्य और इतिहास-साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था। प्राचीन साहित्य, इतिहास तथा दर्शन आदि पर उनकी टिप्पणियाँ, जिनका उल्लेख इसी लेख में अन्यत्र वर्गीकरण करके किया गया है, इस बात का प्रमाण है। उन्होंने अपने विषय के प्रतिपादन में शोधात्मक वृत्ति का परिचय दिया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में तथ्य और कल्पना इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि उन्हें अलग करना बड़ा कठिन है। पांडेय जी ने एक इतिहास कार की भाँति साहित्य में बिखरे हुए तथ्यों को बटोरने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिये, 'प्राचीन भारत की युद्ध-नीति' (पृष्ठ ७०५-७०८, माधुरी, जनवरी १६४३) के संपादकीय में पांडेय जी ने वेद, मनुस्मृति, याज्ञबल्क्य स्मृति, विष्णु संहिता, शुक्रनीति, महाभारत और कौटिल्य के आधार पर प्राचीन भारत की युद्ध-नीति का विवेचन बड़े ही पांडित्यपूर्ण ढंग से किया है। इसी अंक में 'प्राचीन भारत के प्रमाण लेख' के अन्तर्गत, जासन, जयलेख, आज्ञापत्र, प्रत्रायनापत्र आदि उस सामग्री का उल्लेख है, जो भारत के प्राचीन इतिहास के अध्येताओं के लिये तथा पुरातत्व शास्त्रियों के लिये अत्यंत मूल्यवान सिद्ध हो सकती है। इसी प्रकार 'प्राचीन भारत के गाँव' (फरवरी, १६४६) के अन्तर्गत हमारी समाज तथा अर्थ-व्यवस्था के मेरुदंड ग्राम-समाज की रचना का बड़ा रोचक तथा खोजपूर्ण विवरण है। पांडेय जी के इस प्रकार के संपादकीय, तथा दर्शन और साहित्य पर उनके विचार यथा 'ऋग्वेद के दस्यु और आर्य', 'परलोक' (मार्च १६४६) 'कठ' उपनिषद् का रहस्य (मई १६४६) आदि उनके प्रकांड पांडित्य के परिचायक हैं।

बीसवीं शती में, भारतवर्ष में राष्ट्रीयता का भाव प्रबल हुआ और उसके साथ-साथ हिंदी की ओर हमारे नेताओं का ध्यान गया। हिंदी भारत के विशाल भू-भाग में सभी जगह बोली और समझी जाती है। इसलिये वह भारत की अखंडता का प्रतीक बनी। हिंदी की दो मुख्य शैलियाँ इस देश में वर्तमान हैं—एक नागरी लिपि में लिखी जाती है और दूसरी फारसी लिपि में, जो उर्दू के नाम से विख्यात है। दुर्भाग्य से नागरी शैली हिंदुओं के और उर्दू मुसलमानों के द्वारा ग्रहीत होने से साम्प्रदायिकता

का भाव भाषा के क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ और दोनों शैलियाँ एक दूसरे की विरोधी बन गयीं। अतः राष्ट्रीय नेताओं के लिये यह आवश्यक हो गया कि अपनी निष्पक्षता दिखाने के लिये वे दोनों शैलियों को प्रश्रय दें। यही नहीं, महात्मा गाँधी तथा उनके समर्थक दल ने हिंदी और उर्दू के बीच एक अन्य रूप 'हिन्दुस्तानी' भाषा का आविष्कार कर डाला, जिसकी अपनी कोई विशेषता न थी। ये सब बातें हिंदी के मार्ग में बाधा खड़ी करने लगीं। ये घटनाएँ मुख्य रूप से सन १९३७ से '४० के बीच घटित हुईं। जब १९३७ में प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडल बने तो 'हिन्दुस्तानी' की आड़ में हिंदी की छीछालेदर की जाने लगी। बिहार और मद्रास के प्रान्तों में 'हिन्दुस्तानी' के समर्थकों ने आवश्यकता से अधिक विदेशी शब्दों को ठूँस कर हिंदी का रूप विकृत करने की चेष्टा की। हिंदी भाषी जन राष्ट्रीय विचारों के थे और कांग्रेस के राजनैतिक प्रभाव से तथा मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये उस नीति का विरोध भी न कर पाते थे। ऐसी दशा में पं० रूपनारायण पांडेय ने 'माधुरी' के द्वारा हिंदी पर कुठाराघात करने वालों को चुनौती दी और कांग्रेस सरकार की नीति का विरोध तक कर डाला। 'हिंदी भाषा का निर्माण' (जून, १९३९) के अन्तर्गत उन्होंने गाँधी जी तथा काका कालेलकर की 'हिंदी' के प्रति नीति का खुल कर विरोध किया जो वास्तव में बड़े साहस का काम था और जो पांडेय जी की निर्भीकता का एक प्रबल प्रमाण है। उसका एक अंश देखिये :—

"राष्ट्रीयता के एकांगी प्रवाह में बह कर इन राजनीतिज्ञों की केवल एक लालसा है—'हिंदी राष्ट्रभाषा बने, इसे भंगी, चमार और क्षत्रिय ब्राह्मण सभी बोलें।' .... राजनीतिज्ञों की सर्वप्रथम पुकार यही है कि हिंदी में उर्दू एवं अन्यान्य भाषाओं का समर्थन हो। हम इसके विरोधी नहीं। किसी भाषा विशेष के संचालन में अनेकानेक भाषाओं का सहयोग अनिवार्य है। पर महात्मा गाँधी और काका कालेलकर हिंदी भाषा को जो स्वरूप प्रदान करना चाहते हैं, वह हमें कदापि मान्य नहीं है। हिंदी भाषा में अन्यान्य भाषाओं का सम्मिश्रण होगा अवश्य, पर सुन्दर-असुन्दर, उचित-अनुचित का ध्यान रखकर।"

पांडेय जी हिंदी के नैसर्गिक रूप को बनाये रखने के पक्षपाती थे। वे कृत्रिम ढंग से भाषा के रूप-परिवर्तन को अनुचित समझते थे। भाषा-विकास के अलग नियम हैं, और भाषा-परिवर्तन की प्रक्रिया बड़ी धीमी होती है। कांग्रेसी नेता उन नियमों का ध्यान न करके मनमाने ढंग से सुधार करना चाहते थे। पांडेय जी ने 'भाषा पर बाहरी प्रभाव' शीर्षक संपादकीय (नवंबर १९४४) के अन्तर्गत स्पष्ट लिखा है—

"पर भाषाओं से शब्द लेकर भाषा के भंडार को बढ़ाना बुरा नहीं है बल्कि ऐसा होना अनिवार्य है, परन्तु अपनी भाषा में उसी भाव का अर्थ को व्यक्त करनेवाला शब्द रहने पर भी पराई भाषा के शब्द को लेना बुरी बीमारी है। उससे भाषा की संपत्ति नहीं बढ़ती।"

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् और जब पाकिस्तान बन गया, हिंदी के लिये रास्ता साफ हो गया। हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित करने का हर ओर से समर्थन होने लगा। परन्तु हमारे पं० नेहरू फिर भी हिंदुस्तानी का मोह न छोड़ सके। दूसरे शब्दों में, उर्दू का मोह छूट न सका। तब अगस्त, १९४८ की माधुरी में पांडेय जी ने बड़े दृढ़ स्वरों में नेहरू जी की भाषा-नीति की आलोचना की।

तभी हिंदी पर दूसरी ओर से प्रहार होने लगा। जब यह अनुभव किया जाने लगा कि हिंदी ही समूचे भारत को एक सूत्र में पिरोने का काम कर सकती है, तो कुछ प्रान्तों के अन्य भाषा-भाषी जल उठे। विशेष रूप से बंगाल तथा मद्रास प्रांतों से हिंदी का विरोध हुआ। तर्क था कि हिंदी का साहित्य समृद्ध नहीं। पांडेय जी बंगला-प्रेमी थे, परन्तु उन्होंने मार्च, १९३६ की माधुरी के अंक में बँगला को राष्ट्रभाषा बनाने की असंगति पर बड़ी चतुरता से प्रकाश डाला। इस प्रकार वे हिंदी का पक्ष सबल बनाने के लिये बराबर प्रयत्न करते रहे।

आजादी से पहले विदेशी सरकार की उदासीनता और कांग्रेसी नेताओं की उदारता (?) के फलस्वरूप हिंदी की स्थिति बड़ी दुखद बन गयी। अदालतों में हिंदी को स्थान दिये जाने का आन्दोलन भारतेन्दु युग

में चल रहा था और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक हिंदी-भाषी प्रांतों में यह स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रही। पांडेय जी ने उस आन्दोलन को माधुरी द्वारा जारी रक्खा। यही नहीं, उन्होंने सरकारी सिक्कों पर देवनागरी लिपि में हिंदी को अंकित करने की आवाज उठायी। (माधुरी मार्च, १६३६)।

अब आल इंडिया रेडियो की बात लीजिये। आकाशवाणी में भी हिंदी की न केवल घोर उपेक्षा होती थी वरन् उस पर हर प्रकार से प्रहार किया जाता था। हिन्दुस्तानी के नाम पर कांग्रेसी नेताओं की कमजोरी का फायदा उठाते हुए, रेडियो विभाग के संगठनकर्ता, जो उर्दू के पक्षपाती थे, हिंदी को निकाल फेंकने में जुटे थे। पांडेय जी ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। वे माधुरी के संपादकीय लेखों में इस अन्याय का पूरा विवरण प्रकाशित करते थे। सन् १६३६ के जून, अगस्त और अक्टूबर में, उन्होंने रेडियो की हिंदी विरोधी नीति का पर्दा फाश किया। अगस्त १६४० के अंक में 'हिंदी पर कुठाराघात', फरवरी १६४१ के अंक में 'रेडियो का रवैया' शीर्षक के अन्तर्गत बताया कि हिंदी भाषी प्रान्तों में रेडियो के प्रोग्राम निश्चित करने वाली समितियों में अन्य भाषा-भाषी छाये हुए थे, जिन्हें हिंदी के नाम से चिढ़ थी। हिन्दी प्रेमी तथा विद्वानों को रेडियो में कोई स्थान नहीं मिलता था। इस प्रकार हिंदी विरोधी सरकार की नीति के विरुद्ध पांडेय जी ने गंभीर आपत्ति की और जनमत को भी प्रेरित किया। मई १६४७ के अंक में, जब देश में राष्ट्रीय सरकार बनायी गयी थी हिंदी की उपेक्षा जारी रही, पांडेय जी ने 'अब हमें न चूकना चाहिये' और 'राष्ट्रीय सरकार की भाषा विषयक नीति' लेखों के अन्तर्गत इस बात की ओर सब का ध्यान आकर्षित किया। देशी रियासतों में भी हिंदी की विचित्र दशा थी। काश्मीर में जहाँ का राजा हिंदू था पर उसकी प्रजा मुसलमान, हिंदी की शिक्षा प्रारंभिक स्तर पर बंद कर दी गयी और उर्दू को पाठ्यक्रम में सर्वोच्च स्थान दिया गया। दूसरी ओर हैदराबाद दक्षिण की रियासत में, जहाँ की अधिकांश प्रजा हिंदू थी और मुसलमान निजाम उसका शासक, हिंदू तथा हिंदी का घोर दमन हो रहा था। न्याय के अनुसार जो नीति काश्मीर में अपनायी गयी,

हैदराबाद में भी वही अपनायी जानी चाहिये थी; परन्तु हमारे राष्ट्रीय नेता चूँ तक न कर सके। पं० रूपनारायण जी पांडेय इस अन्याय को सहन न कर सके। उन्होंने मार्च, १६४१ की माधुरी में, 'काश्मीर राज्य में उर्दू' लेख में हिंदी विरोधी नीति की कटु आलोचना की। निजाम साहब ने अपनी हिंदू प्रजा की इच्छा के विरुद्ध, हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन करने की आज्ञा नहीं प्रदान की। तब पांडेय जी ने, जुलाई १६४१ के अंक में 'निजाम ने आज्ञा नहीं दी' शीर्षक संपादकीय में इसका विरोध किया। पांडेय जी हिंदी तथा हिंदू जाति के हितों की रक्षा के लिये सदैव सन्नद्ध रहे। हिंदुओं की हिमायत में उन्होंने जनवरी १६३६ के अंक में 'हिंदू आत्मरक्षा कर सकते हैं' संपादकीय टिप्पणी लिखी थी।

पाठकों को स्मरण होगा कि अभी कुछ वर्ष पूर्व 'नागरी लिपि' को अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिये अखिल भारतीय स्तर पर होने वाली राज्यों के मुख्य मंत्रियों की एक सभा ने 'नागरी अक्षरों' में कुछ परिवर्तन स्वीकार किये और बड़े जोश के साथ सरकार ने प्रारंभिक कक्षाओं में विद्यार्थियों को पढ़ायी जानेवाली पाठ्य पुस्तकों को बदलते हुए नागरी अक्षरों में छपवाया; परन्तु वह योजना असंख्य जन-धन का अपव्यय करने के बाद असफल हुई। हमारे राष्ट्रीय नेताओं की ऐसी चेष्टा कोई नयी बात नहीं है। वे सदैव समय के प्रवाह की गंगा को उल्टा बहाना चाहते हैं। सन् '३५ में भी नागरी लिपि में सुधार करने का प्रश्न बड़े जोरों से उठाया गया था। लिपि में सुधार करने के लिये एक समिति बनी थी, जिसके अध्यक्ष काका कालेलकर थे और जिसे महात्मा गाँधी का समर्थन प्राप्त था। उस समिति ने अनेक संस्तुतियाँ दीं जैसे अक्षरों की शिरोरेखा को हटाना, 'अ' को बम्बइया ढंग से टाइप में लिखना तथा इसी अ में ि ी ु ू आदि की मात्राएँ लगाकर इ ई उ ऊ को निकाल देना आदि। अगस्त १६३५ के अंक में संपादकीय लेखों में ये संस्तुतियाँ दी गयी हैं, उनका विवेचन और खुली आलोचना की गयी है। पढ़ने पर ज्ञात होता है कि पांडेय जी लिपि-सुधार के प्रश्न पर रूढ़िवादी दृष्टिकोण रखते थे। वे लिपि के सौंदर्य को बिगाड़कर सुधार करने के पक्ष में न थे, परन्तु नागरी लिपि में आवश्यक

परिवर्तन करने के पक्षपाती वे अवश्य थे। नागरी अक्षरों की उत्पत्ति और विकास का विवेचन उन्होंने 'महाप्राण वर्णों' के संबंध में' (सितम्बर १६३५), 'हमारे देवनागरी अक्षर और लिपि' (ऐप्रिल—मई, १६५४) 'भारत की भाषा और लिपि (मई १६४६) में किया है। वास्तव में लिपि या भाषा में जान-बूझ कर परिवर्तन करना एक व्यक्ति या एक समिति के लिये शक्य नहीं है। ऐसे निर्णय कानून द्वारा कार्यान्वित नहीं कराये जाते। इस वास्तविकता को सरकार ने अब समझा, परन्तु पांडेय जी पहले से सम ते थे। इनका दृष्टिकोण विकासवादी था, क्रान्तिकारी नहीं।

संपादन कार्य एक कला है और उसके अपने सिद्धान्त हैं। उन सिद्धान्तों के आधार पर पांडेय जी की संपादन कला की जाँच करना सरल कार्य नहीं है, क्योंकि इस कार्य के लिये बहुत-सी सामग्री चाहिये। उदाहरण के लिये, संपादक लेखकों की कृतियों में काट-छाँट कर सकता है। कम से कम यह कार्य उन कृतियों के लिये आवश्यक होता है, जो अनभ्यस्त हाथों द्वारा लिखी हुई हों। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी इस कार्य में बड़े निपुण थे। उनके संपादन के बाद कृति और भी अधिक सुन्दर बन जाती थी। कभी-कभी वे काट छाँट कर कृति का कलेवर तक बदल देते थे। इस काम को सफलतापूर्वक करने के लिये श्रम, समय तथा सूझ की आवश्यकता होती है। यह कहा नहीं जा सकता कि पं० रूप-नारायण जी किस सीमा तक लेखकों की कृतियों का संपादन करते थे। इसकी जाँच तभी संभव हो सकती है, जब 'माधुरी' के प्रेस में कुछ मूल कृतियाँ प्राप्त हो सकें और उनका मिलान माधुरी में उनके छपे हुए रूपों से किया जाय; या फिर माधुरी में प्रकाशित होनेवाले लेखकों से पत्र-व्यव-हार करके पूछा जाय कि उनकी कृतियों में माधुरी के संपादक द्वारा परिवर्तन किया जाता था अथवा नहीं। परन्तु ऐसी छानबीन के लिये समय चाहिये और श्रम भी। आशा है कोई शोधकर्त्ता इस सूत्र से लाभ उठायेगा।

कुछ मोटी-मोटी बातें अवश्य ऐसी हैं, जो पांडेय जी की संपादन कला पर प्रकाश डालती हैं। एक तो यह कि द्विवेदी जी के अवकाश-ग्रहण के पश्चात् साहित्यिक पत्रिकाओं के क्षेत्र में पांडेय जी ही संपादक के रूप

में इतने प्रभावशाली थे। उनके प्रभाव और नीति के कारण ही लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक और कवि अपनी रचनाएँ माधुरी में भेजा करते थे। संपादक के रूप में यह उनकी उदार नीति का द्योतक है। यदि वे संपादक के रूप में लेखकों की कृतियों की विशेषताओं को समझने और उनकी प्रशंसा करने में पटु न होते, तो लेखकों को संतोष न होता। पांडेय जी निर्भीकता से सरकारी तथा जनप्रिय कांग्रेस की नीति की खुली आलोचना करते रहे। निर्भीकता संपादक का विशेष गुण होता है। अनौचित्य का उन्होंने सदैव विरोध किया और किसी व्यक्तिगत प्रभाव या सिफारिश के कारण सत्य से मुँह न मोड़ा। वह अपने मित्रों तथा प्रभावशाली जनों की आलोचना करने में न चूकते। एक बार एक प्रसिद्ध संपादक ने बिहार के किसी सम्मेलन में यहाँ तक कह डाला कि बिहारी जनों का उत्तर प्रदेश द्वारा शोषण होता है। अप्रैल, '३६ के सम्पादकीय में पांडेय जी ने उन्हें करारा जवाब दिया। एक दूसरे संपादक लेखक की प्रकाशित कृतियों की पांडेय जी ने इसलिये आलोचना कर डाली कि उनसे अनैतिकता का भाव उत्पन्न होता। साथ ही उत्तर में प्राप्त लेखक महोदय के पत्र को भी उन्होंने सहर्ष प्रकाशित कर दिया, जिसमें उन पर कीचड़ उछाली गयी थी। इसी प्रकार मार्च १६३६ के 'सैनिक' में एक विद्वान लेखक ने 'माधुरी की भड़ैंती' शीर्षक से एक लेख लिखा। सहनशील पांडेय ने अपनी सहिष्णुता का परिचय देते हुए, बड़ी विनम्रता तथा युक्तियुक्त उत्तर देकर संतोष कर लिया। यह सब उनकी निर्भीकता तथा निष्पक्षता का परिचायक है।

संपादक के रूप में उन्हें अपने उत्तरदायित्व का बड़ा ध्यान रहता रहता था। पत्रिका ठीक समय से निकले और पाठकों के पास पहुँच जाय, उसकी सामग्री उत्तमोत्तम हो—इन सब बातों की ओर उनका सदैव ध्यान बना रहता था। इस बात में भी वे द्विवेदी जी के अनुरूप थे। द्विवेदी जी ने अपने एक 'आत्म-संस्मरण' जैसे लेख में लिखा है कि संपादक अपने इस उत्तरदायित्व का ध्यान नहीं रखते। पत्रिका ठीक समय से नहीं निकलती। प्रेस के टूटने, अपनी बीमारी या संबंधी की मृत्यु का बहाना लेकर क्षमा-याचना करते हैं। संपादक का यह सबसे बड़ा

दोष है। पांडेय जी यथाशक्ति माधुरी को ठीक समय पर ही निकाल देते। वे निरंतर माधुरी को पूर्ण बनाने का संकल्प किया करते थे। अपने संपादकीय में इस संबंध में पाठकों से अनुरोध किया करते थे। दूसरी ओर उनकी अपनी कठिनाइयाँ कम न थीं। पत्र संपादक की कठिनाइयों को उन्हीं के शब्दों में सुनिए :—

"हिंदी के पत्रकार को अँगरेजी पत्र के संपादक से कहीं अधिक काम करना पड़ता है। .... हिंदी के उस प्रधान संपादक का सौभाग्य ही समझना चाहिये जिसे चार-पाँच भी सहकारी संपादक नसीब हों। किसी-किसी पत्र में तो संपादक को १०-१२ घंटे तक काम करना पड़ता है। पर दोनों के वेतन में अंतर महदन्तर। ...... मेहनत तो वह कस कर करता है, पर उसे पोषक स्निग्ध पदार्थ खाने को नहीं मिलते। परिणाम यह होता है कि उसकी प्रतिभा मंद पड़ जाती है, तेज और श्री जाती रहती है, स्वास्थ्य मिट जाता है। कुछ ही समय में अभागा पत्रकार निराश्रय परिवार की चिंता लिए हुए स्वर्ग सिधार जाता है।" (पृष्ठ ७५-अगस्त, १६५८)।

इन सभी कष्टों का अनुभव पांडेय जी नें भी किया होगा, परन्तु वे अपनें कर्त्तव्यपथ पर अविचलित रह कर डटे रहे। इसी में तो उनके जीवन की सफलता निहित है।

(२)

डा० देवकीनंदन श्रीवास्तव, पी-एच० डी०, हिंदी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ

पुराने खेवे के नये हिंदी कवियों की बिखरी हुई परंपरा में प्रमुखत: एक सुयोग संपादक एवं यशस्वी अनुवादक के रूप में प्रख्यात स्वर्गीय पं० रूपनारायण पांडेय की प्रतिभा प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति अडिग आस्था और आधुनिक पीड़ित मानवता के प्रति एक सहज संवेदनशील जागरूकता लिए अवतरित हुई थी। उनके व्यक्तित्व में पूर्वजों के प्रति गहरी श्रद्धा एवं भक्तिभावना होते हुए भी रूढ़िवादी प्रवृत्तियाँ घर नहीं कर पायीं। साथ ही उदीयमान कलाकारों के प्रति भी उनका हृदय गंभीर वात्सल्य

एवं प्रोत्साहनभरे साधुवाद की भावनाओं से अनुप्राणित था। श्रद्धांजलियों, प्रशस्तियों, स्वागत-गीतों एवं शोकगीतों के रूप में उपलब्ध उनकी विविध अभिव्यक्तियाँ उनकी इस उदार भावुकता की प्रत्यक्ष झाँकी उपस्थित करती हैं। समसामयिक दैनिक जीवन की छोटी-छोटी उलझनों और समस्याओं से लेकर सामाजिक एवं राष्ट्रीय क्रांति से संबंधित बड़े-बड़े जटिल प्रश्नों तक उनकी दृष्टि गयी थी यद्यपि कुछ स्वनिर्धारित सीमाओं के भीतर रहने को विवश होने के कारण उसे खुलकर प्रसारित करने का अवसर उन्हें नहीं मिल सका। अपेक्षित उत्तरदायित्व को भूल कर बाह्याडंबर के कूप में आचूड़ डूबे हुए नेताओं, शासकों एवं तथाकथित साहित्यकारों के प्रति समय-समय पर तीव्र व्यंग्य के छींटें कसते हुए उनकी प्रबुद्ध चेतना ने अशिव और असत्य के प्रति अपनी घोर अनास्था व्यंजित की है। उनकी इस शतावधान वृत्ति को यदि उन्मुक्त गगन में विहार करने की छूट मिल पाती तो कदाचित् हिंदी-जगत के लिए उनके योगदान का धरातल कहीं अधिक सबल एवं समृद्ध रूप में दिखाता। यहीं पर अत्यन्त संक्षेप में उनकी कारयित्री प्रतिभा के बीज को उद्घाटित करनेवाली कुछ संस्कारभूत विशेषताओं का संकेत अभीष्ट है।

पांडेय जी की काव्यविषयक धारणा बड़ी ही उदात्त एवं विशाल भावभूमि पर प्रतिष्ठित है। कवि को वे उस असीम आकाश सा असाधारण एवं विराट मानते हैं जिसकी काया समस्त प्रकृति का प्रतीक होकर विचरती है। 'कविराज के शरीर में' नवग्रहों की स्थिति की जो चमत्कारपूर्ण कल्पना उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत की है उसके भीतर उनकी इसी धारणा की अलंकृत अभिव्यंजना हुई है—

'रवि' मुखमण्डल में, वाणी में 'सुधानिधि' को
मांगलिक 'मंगल' प्रसाद में प्रमानिए,
'बुध' वर बुद्धि, 'गुरु'-गौरव विचारों बीच
'शुक्र' कीर्त्ति-कौमुदी समुज्ज्वल बखानिए।
'शनि' की कशानि कोपदृष्टि में दिखाई देती,
'राहु'-'केतु' भ्रकुटी कुटिल दोनों जानिए,

निग्रह-अनुग्रह-समर्थ कविराज के शरीर में
नवग्रह विराजमान मानिए।

ऐसे प्रकृतिव्यापी कवित्व का जागरण सतत जागरूक सरस्वती-साधना द्वारा ही संभव है, केवल लेखनी पकड़कर कुछ खींच देने और सम्मेलनों में कुछ अलाप देने की कामना द्वारा नहीं। इस तथ्य में दृढ़ विश्वास रखने के कायल होने के कारण ही कोरे अभ्यास-रत छुटभैये तुक्कड़ों को चेतावनी देते हुए पांडेय जी को किंचित कटु परिहास की वाणी में कहना पड़ता है—

आँखें मुँदी, मुँह खोले हुए, लिये लेखनी खींचता चीलबिलौआ,
प्रेरणा के लिए रूप की हाट में घूम रहा ज्यों कटा कनकौआ।
और गले की बदौलत ही मिले सम्मेलनों में सदैव बुलौआ,
लाख मिलाया करे तुक बेतुकी हंस न हो सकता कभी कौआ।

'चील बिलौआ खींचने' और 'कटे कनकौए ज्यों घूमने' का चित्र पांडेय जी की भाषा-शैली सहज चुटीलेपन और मुहावरेदानी के बल पर उभरनेवाली लाक्षणिक शक्ति की ओर इंगित करता है।

काव्य के शास्त्रीय एवं व्यावहारिक-उभय-पक्षों के क्षेत्र में गति रखते हुए भी पांडेय जी 'मन्द:कवि-यश:प्रार्थी' होकर आत्म-परिचय देनेवाले कालिदास जैसे कवियों के शीलवान एवं अहंकारहीन कवि-रूप के प्रति निष्ठावान रहे। उनकी इस निष्ठा की झलक निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्ट है—

कवि जस चाहौं मंदमति मैं उछाह के साथ।
ज्यों बामन ऊँचे फलहिं उचकि चलावै हाथ।

कविता के शाश्वत सांस्कृतिक आदर्शों को तिलांजलि देकर उसे किसी राजनीतिक मतवाद के प्रचार का माध्यम बनाने का ढोंग उन्हें अरुचिकर था। काव्य-क्षेत्र में इस नेतागिरी की दंभभरी एषणा के प्रति उन्हें चिढ़ थी। इसीलिए उन्हें 'प्रगतिवादी' कहे जानेवाले कवियों की मनोवृत्ति की तीखी आलोचना करनी पड़ी है। निम्नलिखित पंक्तियों में उनकी यह खीझ बड़े वेग के साथ मुखर हुई है—

अब प्रगतिवादी बना हूँ।
जो अकेला भाड़ फोड़े वही लोहे का चना हूँ।
हाथ में हंसिया हथौड़ा, रूस का मैं पिछलगा हूँ।
देव है आराध्य लेनिन प्रेम में उनके पगा हूँ।
पुत्र भारत का नहीं, मैं सोवियत का ही सगा हूँ।
राग रोटी का सुनाता अब यही कहने लगा हूँ—
देश का मैं त्राणकर्ता, देश की मैं सान्त्वना हूँ। अब०।
व्यर्थ है रस-रीति-रचना यह पलायनवाद है;
देव केशव या बिहारी की कला उन्माद है।
गंदगी शृंगार की है, कुछ न इससे स्वाद है,
मार्क्स का कायल हुआ हूँ, बस, मुझे यह याद है—
क्रांति का हो जो पुजारी, मैं वही उद्धतपना हूँ। अब०।
मैं मजूरों की, किसानों की हिमायत को खड़ा,
शोषितों की ओर से शोषण मिटाने को अड़ा।
वीर विद्रोही बना; नेता बना सबसे बड़ा।
लाल झंडे को लिये निन्नानबे फी सैकड़ा—
रूस की हो छत्रछाया, मूर्त इसकी व्यंजना हूँ। अब०।
रेशमी कुर्ता गले में बाल हैं बिखरे हुए,
है सुनहले फ्रेम की ऐनक, नयन निखरे हुए।
टोस्ट, टी, सिगरेट, बढ़िया शौक सब सुधरे हुए;
अब करूँगा मैं गदर हैं लोग-बाग डरे हुए।
देखिएगा शीघ्र ही कवि से बड़ा शासक बना हूँ। अब०।

प्राचीन हिंदी कविता की रस-रीति की गहराई में प्रवेश न रखने वाले तथा रग रग में अभारतीयता का स्वर भरकर कवि की स्वाभाविक रागात्मकता का मखौल उड़ानेवालों की जो भर्त्सना पांडेय जी ने यहाँ पर की है, उसके भीतर उनके काव्य की प्रेरक सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रेरणाओं का भी सहज अनुमान किया जा सकता है।

चैतन्य मानव की महिमा की अखंडता में पांडेय जी की दृढ़ आस्था

है। उसी का चित्स्वरूप नाना प्रकार की विभूतियों के रूप में साकार हो रहा है। इसी चित्स्वरूप को जगाकर उनकी कवि-चेतना संस्कृति का कल्याण करना चाहती है—

चेत चेत चित्स्वरूप ! चेतना पुकारती।
ओ मनुष्य, तू ही निज भाग्य का विधाता है।
तू ही नव संस्कृति का संसृति का त्राता है।
तू ही समयानुकूल जब जब बन जाता है।
जड़ता को ज्ञानमयी शक्ति मे मिटाता है।
आदि शक्ति प्रकृति तेरी आरती उतारती। चेत०।
तू ही है ब्रह्मा ; नई सृष्टि उपजाता है।
तू ही है विष्णु उसे पालता बढ़ाता है।
तू ही है रुद्र, प्रलयकाण्ड भी मचाता है।
तू ही अवतार इस लोक में कहलाता है।
तेरी महिमा के गीत गाती विश्वभारती। चेत०।
धर्म औ अधर्म तेरे इतर—विशेष हैं।
पुण्य और पाप तेरे राग और द्वेष हैं।
रात औ दिवस तेरी आयु के निमेष हैं।
सूर्य चन्द्र तेरे तेज के ही अवशेष हैं।
ऋद्धि सिद्धि हैं सदैव पैरों को पखारती। चेत०।
संभव असंभव को तू ही तो बताता है।
रूठे हुए भाग्य को भी तू ही तो बनाता है।
चतुर्मुखी क्रान्ति से अशान्ति को भगाता है।
समता स्वतंत्रता की ज्योति को जगाता है।
मानव की शक्ति भला कभी कहीं हारती। चेत०।

'कभी न हारनेवाली मानव की शक्ति' के प्रति निरंतर जागरूक रहने के कारण ही पांडेय जी की 'हस्ती' में वह 'मस्ती' बनी रह सकी है जो एक जीवन्त संदेश देती हुई आज भी रह रहकर पुकार उठती है—

मंजिल का मोह नहीं मुझको, रुकने की मेरी बान नहीं।

(३)

श्री लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', कान्यकुब्ज कालेज, लखनऊ

द्विवेदी युग के साहित्य सेवियों में पं० रूपनारायण पांडेय का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वे एक सच्चे साहित्य-सेवी एवम् साहित्यजीवी व्यक्ति थे। उनकी लेखनी उनके जीवन का एकमात्र संबल रही। दलबंदी एवं ख्याति से कोसों दूर रह कर पांडेय जी ने एक कोठरी में बैठकर साहित्य-साधना की। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वे एक सफल अनुवादक, सुयोग्य संपादक, कुशल कवि, नाटककार, एवं अनेक भाषाओं के पंडित थे। संस्कृत भाषा एवं साहित्य का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था। वे युग की गति पहचानते थे। अतीत के प्रति जितनी उनमें श्रद्धा एवं आस्था थी, वर्तमान के प्रति उनके हृदय में उतनी ही निष्ठा थी। उन्होंने अनेक नवीन छंदों का प्रयोग किया, परंतु कवित्त-सवैया शैली उन्हें विशेष प्रिय थी और उनकी सर्वोत्कृष्ट कविताएँ इन्हीं छंदों में मिलती हैं। यदि 'पराग' के बाद को उनकी समस्त रचनाएँ प्रकाशित हो जायँ तो हिंदी संसार उनकी कवि-प्रतिभा एवं काव्य-रचना-कौशल से परिचित हो जाय। मुझे उनके चरणों के निकट बरसों बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और प्राय: वर्तमान कविता की गतिविधियों पर बातचीत भी हुई। पांडेय जी सब प्रकार से प्राचीनता के उपासक होते हुए भी नयी कविता के प्रेरक और प्राणदाता थे। निराला जी की युगान्तरकारी कविता 'जूही की कली' सर्व-प्रथम पांडेय जी ने 'माधुरी' में प्रकाशित की थी। इसी प्रकार अन्य अनेक कवियों की रचनाएँ भी सर्वप्रथम 'माधुरी' में ही प्रकाशित हुई, यह साहित्यिक उदारता पांडेय जी की अपनी विशेषता थी।

एक अच्छे कवि होने के साथ-साथ पांडेय जी कविता के एक कुशल पारखी भी थे। कवि की एक-आध रचना से ही वे उसकी प्रतिभा एवं लेखन-शैली का परिचय प्राप्त कर लेते थे। प्रतिभाशाली कवियों को प्रोत्साहन देने में वे कभी नहीं चूके। वृद्धावस्था तक वे छंद लिखते रहे। द्विवेदी युग की वर्णनात्मकता से उनके काव्य का प्रारंभ हुआ, राष्ट्रीय काव्य धारा में

उनकी वाणी प्रवाहित होती रही, 'सनेही'-मंडल में रहकर उन्होंने समस्या पूर्ति का कौशल दिखाया तथा अपनी अनूठी एवं भावपूर्ण रचनाओं द्वारा हिंदी का भाण्डार भरा।

समस्यापूर्ति करने में वे बड़े कुशल थे। आचार्य द्विवेदी ने जब उनकी परीक्षा ली तो पांडेय जी ने तत्काल भावपूर्ण छन्द रचना कर उन्हें मुग्ध कर दिया। एक बार पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने एक समस्या दी थी "कारे की"। पांडेय जी ने उसकी बड़ी सुन्दर पूर्ति की थी।

बसी बट जमुना के तट के निकट,
पनघट पै निहारि छवि नटवर न्यारे की।
बौरी सी, बिकानी सी, बिकल वृषभानु सुता,
मुरि मुसकान पर वारी प्रान प्यारे की।
आई देखिहौं मैं परी बोलत न डोलत है,
खोलत न नैन सुधि ओढ़े ना उघारे की।
महर को जायो अरी जहर बुझायो वह,
कारे की डसनि है हँसनि कान्ह कारे की।।

एक अन्य समस्या थी "युग का प्रभाव है"। पांडेय जी ने आधुनिक युग की नारियों की प्रवृत्तियों का चित्रण करते हुए बड़ी सुन्दर समस्या पूर्ति की—

नारियाँ नवोढ़ा बनीं प्रौढ़ा-सी प्रगल्भ सदा—
सज्जा का स्वभाव लोकलज्जा का अभाव है।
नेम से सिनेमा देख प्रेम का प्रपंच सीखें,
नखरे निराले नित्य नया हाव-भाव है।
सीना खोल चलती हैं, हँसती, मचलती हैं,
इनको 'सुरैया' बनने का बड़ा चाव है।
क्या ये कर डालें, घर वाले या सम्हालें उसे,
सोचना वृथा है यह युग का प्रभाव है।

पांडेय जी की रचनाओं में सनेही-युग की छंद-शैली का बांकपन, भाषा-सौष्ठव, भाव-संगठन एवं कला-कुशलता का एक साथ परिचय मिलता

है। वन में एकाकी विचरण करनेवाले एकलव्य का सुन्दर चित्रण उन्होंने एक छंद में किया है। भाषा भावानुरूप एवं प्रवाहपूर्ण है।

मृग चर्म कटि में लपेटा कसा फेंटा बँधा,
कन्धों पर व्याघ्र चर्म सव्य अपसव्य था।
मांसपेशियों भरा बल था उबल रहा,
रूप भी अनूप भूप अनुरूप भव्य था।
आँखें थीं अरुण नव वय का तरुण,
जान पड़ता कि इन्द्र या वरुण कोई नव्य था।
काल की कला सा अंग साँचे में ढला सा और,
नाम भी भला सा बिरला सा एकलव्य था।

बापू के निधन पर उनके विचार दर्शनीय हैं। भारत की वर्तमान अवस्था एवं राजनीतिज्ञों के नैतिक पतन की ओर उनका संकेत बड़ा ही मार्मिक है—

हाय, हमारी कुचाल को देख दुखी दुनिया से चले गए बापू।
हा! बगला भगतों की छिपी हुई धोखा घड़ी से छले गए बापू।
सत्य ही क्या वह सत्य का आग्रह भी अपने संग ले गए बापू।
देख स्वदेश की दुर्दशा यों कहना पड़ता है—भले गए बापू।

शांत एवं गम्भीर मुद्रा में सदैव एक रस रहनेवाले पांडेय जी अपनी मन मौज में बहते थे। उन्हें न ख्याति-प्राप्ति की चिंता थी, न किसी पद की। आलोचकों या निन्दकों की उन्होंने कभी परवाह नहीं की। बस, लिखते रहना उनका काम था। एकबार एक साहित्यिक संस्था के कुछ सदस्यों से मेरा सैद्धान्तिक मतभेद हो गया। उनकी निन्दा से खीझकर मैंने उस संस्था से अपना त्यागपत्र दे दिया। पांडेय जी को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने एक छंद लिखकर मेरे पास भेजा और त्यागपत्र वापस लेने का आदेश दिया। इस छंद में उनकी विचारधारा के अतिरिक्त उनका व्यक्तित्व भी स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

निन्दा करें निन्दक तो सुनी-अनसुनी कर,
गुनी-जन ही से प्रेम-पाठ पढ़ते चलो।

दे जी अभिमान अपवाद तो विषाद छोड़,
साधना की सीढ़ी चुपचाप चढ़ते चलो।
कोई कटुभाषी कटुभाषा का प्रयोग करे,
उसकी कुभावना उसी पै मढ़ते चलो।
अगर अभागे कुछ राह रोकने को बढ़ें,
तो भी हो निशंक तुम आगे बढ़ते चलो।

कविता कवि-हृदय की सच्ची अभिव्यक्ति होती है। माधुरी का प्रकाशन बंद हो जाने पर उनके दरवाजे पर दिग्गज कवियों की दौड़-धूप कम हो गयी और कुछ लोग उन्हें पुराना कवि कहने लगे। पांडेय जी ने उस समय 'चीथड़े' पर कुछ छंद लिखे जिनमें उनके हृदय की भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है, उसका एक छंद प्रस्तुत है—

एक जमाना हमारा भी था, जिसको अपना लिए वे बड़े हो गए।
शान थी ऐसी दुकान में देखने बूढ़े जवान सभी खड़े हो गए।
हाँ, हँसिए मत काल का फेर है जो हम गंदे गले सड़े हो गए।
काल की मार पड़ी जो बड़ी तो विदीर्ण हुआ उर चीथड़े हो गए।

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय बड़े ही सरस कवि थे। अनुवाद के द्वारा उन्हें धन प्राप्त होता था और कविता के द्वारा वे हार्दिक आनंद की उपलब्धि करते थे। कविता और साहित्य के संबंध में किए गए एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था—'प्रत्येक प्राचीन नवीन को जन्म देता है और नवीन प्राचीन से अधिक स्वस्थ और सजीव होता है। आज के नवीन साहित्य और नए साहित्यकारों को देखकर मुझे संतोष है, फिर भी एक चीज खटकती है कि नए लेखकों में वह लगन और संघर्ष करने की क्षमता नहीं दिखायी देती जैसी प्रेमचंद में थी और निराला में पायी जाती है।'

—:✻:—

(४)

श्रीकृष्ण-चरित्र (काव्य)

डा० लक्ष्मीनारायण टंडन एम० ए०, एन० डी०, राजाबाजार, लखनऊ

पं० रूपनारायण पाण्डेय 'कविरत्न' ने यह प्रबन्ध-काव्य अपने स्नेहभाजन पं० भरतलाल गौड़ कथावाचक के अनुरोध पर लिखा था। प्रारंभ में संस्कृत में प्रार्थना है। ग्रंथ अठारह भाग में समाप्त हुआ है—भक्त परीक्षा, श्री रुक्मिणी जन्म, श्रीकृष्णजन्म, पूतना-वध, बकासुर-वध, माखन चोरी-लीला, वत्सासुर-वध, गोवर्धन-धारण, चीर-हरण, कालिय-नाग-दमन, रास-लीला, कृष्ण-बलराम की मथुरा-यात्रा, कंस-वध, पिता-पुत्र-संवाद, रुक्मिनी की पत्रिका, शिशुपाल की बरात और रुक्मिणी-परिणय। यह एक खंड काव्य है। भगवान कृष्ण को ईश्वर का पूर्ण अवतार मान कर ग्रंथ लिखा गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिस उद्देश्य को सामने रख कर ग्रंथ की रचना कवि ने की है, उसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है। ग्रंथ पढ़ने में बिल्कुल कथा सुनने का आनंद आता है। वैसी ही भाषा, वैसी ही शैली। देखिए :—

> 'इसी जगह पर हो रहा आज कथा विश्राम।
> कृष्ण-रुक्मिणी की कहो जय, जय, करो प्रणाम ॥'

पाण्डेय जी हिंदी साहित्य में अनुवादक के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं, यद्यपि वह एक अच्छे कवि भी थे। भावावेश में आकर प्रारंभ में उन्होंने अनेक भावपूर्ण कविताएँ भी लिखी थीं। उनकी कविताओं का एक संग्रह है। उनकी कपोत-कपोती वाली कविता तो अत्यन्त जनप्रिय है।

प्रस्तुत ग्रंथ १९९४ विक्रमी के आसपास लिखा गया था। यह ग्रंथ 'कविता' के अन्तर्गत न आकर 'पद्य' के अन्तर्गत आता है। कवि ने अन्तः प्रेरणा से नहीं वरन् फरमाइश पर इसे लिखा है।

भाषा तथा छंद—भाषा पंडिताऊ है। सीधी सादी सरल खड़ी बोली

में ग्रंथ लिखा गया है पर भाषा न पूर्ण रूप से शुद्ध ही है और न साहित्यिक ही—

त्यों त्रिकाल के कवि सबै, तुम्हैं मनावहुँ आजु.'
प्रथम परीक्षा भक्त की वर्णन करौं बनाय'।

आदि पंक्तियों में ब्रजभाषा का पुट है। 'पहुँचावैंगे' आदि शब्द पंडिताऊपन प्रकट करते हैं। शब्द तद्भव तथा तत्सम दोनों ही रूप में हैं; जैसे 'जदपि' तथा 'क्षुद्र'। सरल भाषा का एक उदाहरण लें :—

'सुन नारायण की ये बातें लक्ष्मी को मन में बुरा लगा।
मन में अभिमान हुआ जो था, वह और उभरता हुआ जगा।'

मुहावरों तथा कहावतों का भी प्रयोग हुआ है संयत रूप में, यथा "माया मिली न राम", "पछताना केवल हाथ लगा।"

दोहा, चौपाई आदि कई छंदों का प्रयोग हुआ है। राधेश्याम की रामायण के तर्ज पर ग्रंथ लिखा गया है। पर राधेश्याम की रामायण की भाषा की तुलना में निश्चय ही इस ग्रंथ की भाषा अधिक साहित्यिक है। एक उदाहरण लें :—

'थी गगन-गामिनी गंगा की महती बहती घर-घर धारा।
नभमंडल में सब इधर-उधर जगमगा रहे उज्ज्वल तारा॥'

भाषा की अशुद्धियाँ यत्र-तत्र हैं, जैसे रुक्मणी और रुक्मिणी दो रूप हमें मिलते हैं।

नालायक, जाहिर, कमाल आदि उर्दू के शब्द भी यत्र-तत्र हैं। पर उर्दू के शब्द वही हैं जो नित्य प्रति बोले जाते हैं।

गुरु, गणेश, गंगा, सरस्वती, पार्वती, शिव आदि की प्रार्थना ग्रंथ के आरंभ में की गयी है। फिर वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि कवियों की प्रार्थना है। फिर भक्त की परीक्षा का यों वर्णन किया है—लक्ष्मी जी से बातचीत होने पर विष्णु जी बूढ़े संत का रूप धर कर बैकुंठ से चलते हैं। आकाश मार्ग से कैलाश होते वह पृथ्वी पर आते हैं। धनपति नामक

एक वैष्णव धार्मिक बनिया अपनी पत्नी के साथ रहता था। भगवान अतिथि के वेश में थे। उसने उनसे रहने को कहा। भगवान ने कहा, एक शर्त्त है। जहाँ तुम्हारा परिवार रहेगा वहीं मैं भी रहूँगा, और जब तक इच्छा होगी, तब तक।" खैर धनपति उनकी सेवा करने लगा। तब लक्ष्मी जी बुढ़िया का रूप धर कर आयीं। लक्ष्मी ने अपने ही रत्नजड़े सोने के बर्त्तनों में भोजन किया और फिर उन्हें घूरे पर फेंक देने को कहा। बुढ़िया ने कहा कि मेरे गुरू से मुझे यह सिद्धि मिली है कि मैं जितना चाहूँ रोज सोना बना सकती हूँ। धनपति लोभ में आ गया। बुढ़िया ने कहा—पहले इस साधू को निकाल बाहर करो। धनपति ने वैसा ही किया। विष्णु जी के जाने के बाद लक्ष्मी जी भी वैकुंठ चली गयीं। आकाशवाणी हुई कि तू धूर्त्त है, लालची है। धनपति ने शाप दिया कि 'विष्णु' तुम्हें नरयोनि लेनी पड़ेगी और लक्ष्मी! तुम्हें भी दो बर ब्याहने आवेंगे। तुम्हें भी प्रभु का वियोग सहना पड़ेगा। लक्ष्मी जी ने उसे शाप दिया कि तू मेरा भाई होकर भी असुर तुल्य होगा।" इस प्रकार आपस में शाप देने के फल-स्वरूप श्री भीष्मक राजा के यहाँ लक्ष्मी जी ने रुक्मिणी के रूप में जन्म लिया, जिन्हें कृष्ण ने हरण किया और धनपत रुक्मी (रुक्मिणी का भाई) हुआ। कृष्ण-विरोधी होने के कारण इसने अपयश और दुख पाया।

कवि ने रुक्मिणी-मंगल की कथा की यह भूमिका प्रथम-भाग 'भक्त परीक्षा' में लिखी है।

प्रत्येक भाग में प्रारंभ में गणेश आदि देवताओं की वंदना है और उसके पश्चात् कवि कथा-प्रारंभ कर देता है।

कृष्ण-लीला से परिचित हिंदुओं के लिए श्री रुक्मिणी-मंगल की कथा जानी-समझी ही है।

नख-शिख का भी वर्णन कवि ने किया है किन्तु साहित्यिकता से अधिक सादगी और सरलता का ध्यान कवि ने रखा है। उदाहरणार्थ द्वितीय भाग में २८ पंक्तियों में रुक्मिणीजी का नख-शिख वर्णन हुआ है,

'लोचन आलोचन करने में थे बड़े विपद में 'पद्म' बड़े।
मुँह बंद हुआ, जल में डूबे, दिन रात कीच के बीच खड़े ॥
सुविशाल भाल देखाभाला ज्यों चन्द्रबिंब होकर आधा।
औंधा मुँह करके लज्जा से समता की सोच रहा बाधा ॥
देखिए अनोखे नख जिन पर सदके गुलाब की पंखड़ियाँ।
कुच उभर रहे भर रहे मनों कमलों की कोमल हैं कलियाँ ॥
हो चली नाभि भी अब गहरी, रोमावलि ऊपर राज रही।
ज्यों यज्ञकुण्ड से उठा धुआँ रेखा उसकी छबि छाज रही ॥

उपमायें तथा अन्य अलंकार सादगी से पूर्ण होने पर भी सुरुचि पूर्ण हैं। कविता इतिवृत्तात्मक है। एक उदाहरण से यह प्रकट हो जायगा :—

'भीष्मक के लड़के पाँच हुए, अब उनके नाम सुनो हमसे।
था रुक्मबाहु पहला लड़का, जिसमें थे सारे गुण कम से।'

मात्राओं के ध्यान से कहीं-कहीं शब्द को विकृत किया गया है जैसे 'चाहिए' का 'चहिए' 'हमेशा' का 'हमेश' या 'जवानी' को 'ज्वानी'। कहीं-कहीं तो मात्राओं तथा छंद की गति में भी गड़बड़ है जैसे नीचे दूसरी पंक्ति में :—

'वर्षा की कमी न होती थी, न अकाल मृत्यु का कुछ डर था।
न पराई स्त्री कोई तकता, चोरी करना तो दूभर था ॥'

कहीं-कहीं यति-भंग दोष भी है जैसे 'न अकाल मृत्यु का' में 'न अ काल मृत्यु' यदि होता तो यति-भंग दोष न होता। पर ऐसी-ऐसी छोटी-मोटी त्रुटियाँ कम ही हैं।

उपमायें पुरानी ही हैं जैसे घन जघन कदली "कदली अथवा कंचन के खंभे शोभित हैं"। पर कहीं-कहीं उपमाओं में मौलिकता भी है, यथा :—

'उँगलियाँ नहीं, यह उग आये अंकुर इस रूप-लता के हैं।
या तर्कस से कुछ बाहर निकले बाण मदन के ताके हैं ॥'

पहले कहा जा चुका है कि तीन-चार प्रकार के छंद ही पुस्तक में प्रयुक्त हुए हैं, पर वे भी किसी क्रम से नहीं हैं। कहीं दो दोहों के बाद छंद बदला है, कहीं आठ-आठ दोहों के बाद आदि।

सब वर्णन सांङ्गोपाग हैं। काव्य में प्रसाद-गुण की प्रधानता है। भाषा नित्य-प्रति की बोलचाल की सरल होते हुए भी साहित्यिकता का पुट लिए है शैली स्पष्ट, सुबोध और सरस है।

अनुप्रास-प्रियता इस पुस्तक में हमें मिलती है। प्रारम्भ की कुछ पंक्तियां लें :—

'गुरु गणेश, गंगा, गिरा, गौरी, गौरीनाथ।
गो, गोपी, गोपाल की गाऊं मैं गुनगाथ॥
कृष्ण कथा किंचित कहत कटत कुमति के फंद।
करत बंदना नंद के नंदन देत अनंद॥'

पर इस अनुप्रास-प्रियता की भी भरमार नहीं है। अलंकार भी यत्र-तत्र हैं पर कम; और बहुत सादगी से उनका प्रयोग है। यथा :—

'मम मति डोंगी डगमगी, कृष्ण चरित्र समुद्र।
पहुँचावैंगे पार प्रभु, भक्त जदपि हौं क्षुद्र॥'

यह हम न भूलें कि प्रस्तुत ग्रन्थ एक कथा-वाचक के लिए लिखा गया है तथा इसके पाठक या श्रोता भी अशिक्षित या अर्धशिक्षित जन-साधारण होंगे—यह बात कवि कभी नहीं भूला है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जिस दृष्टिकोण को रखकर ग्रन्थ की रचना हुई है, उसमें कवि को पूरी सफलता मिली है।*

*श्रीकृष्णचरित्र—प्रकाशक-हिंदी साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ पृष्ठ संख्या—३०० । मूल्य ४॥)

(५)

श्री आरसी प्रसाद सिंह, साकेत, पुराना किला, लखनऊ

श्री रूपनारायण पाण्डेय का स्मरण आते ही हमारे सामने गौर वर्ण की एक ऐसी सात्विक मूर्ति खड़ी हो जाती है, जिसके दर्शन आज के युग में प्रायः विरलता से प्राप्त होते हैं। उनमें एक ओर जहाँ हिमालय की ऊँचाई थी, वहीं दूसरी ओर सागर की अतलस्पर्शी गहराई भी थी। इन दोनों गुणों का उनके व्यक्तित्व में ऐसा अद्भुत सम्मिश्रण था कि देखकर आश्चर्य होता था। यही कारण था कि जो कोई भी एक बार उनसे मिलता, उस पर सदा के लिये एक सौम्य शिष्टता एवं सरस शालीनता की अमिट छाप-सी पड़ जाती।

आज के युग में हमें अपने चारों ओर जिस प्रकार का कृत्रिम वातावरण दृष्टिगोचर होता है, उसका लेशमात्र भी पाण्डेय जी में नहीं था। उनका सहज स्नेह और निष्कपट व्यवहार ऐसे सभी व्यक्तियों को सरलता से सुलभ होता, जो उनके द्वार पर उपस्थित हो जाते। किसी विशेष व्यक्ति की आयु, पद, प्रतिष्ठा अथवा विद्या-बुद्धि का कोई पक्षपात किये बिना, वह समभाव से सबके प्रति अपने हृदय की विशालता का परिचय देते। उनकी बाँहें इतनी लम्बी थी कि अपने भेंटने वालों को दूर से ही कोमल स्नेह-पाश में आबद्ध कर लेतीं। जो उनके चरणों की छांह में अपना आश्रय ढूँढ़ने जाता, उसे वह हृदय के आसन पर बिठला कर जीवन कृतार्थ कर देते।

पाण्डेय जी आर्यभूमि के उन विद्वानों की परम्परा में आते हैं, जिनपर आज भी हमें गर्व है। ऐसे विद्वान विद्या का व्यवसाय करते हैं, पर उसके बदले में उनका कोई स्वार्थ निहित नहीं रहता। वह सावन-भादों की घटा की तरह भूखी-प्यासी धरती पर बरसकर किसी दिन आकाश से अन्तर्धान हो जाते हैं। उन्हें इस बात की कोई आकांक्षा नहीं होती कि कोई उनका गुण-गान करे अथवा जयन्तियाँ मना कर पदक-पुरस्कार का प्रबन्ध करे। ऐसे व्यक्ति के सभी मनोरथ पहले से ही पूर्ण रहते हैं। अतएव वे जो कोई भी कार्य करते हैं, उनमें व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा लोक-

हित की भावना ही प्रमुख होती है। पाण्डेय जी सरस्वती के ऐसे ही सपूतों में थे, जिन्होंने निस्पृह भावना से मातृभाषा की सेवा की। जीवन की अंतिम घड़ियों तक वह उसी साधना में अनुरक्त रहे। कहना नहीं होगा कि वह उसी के लिये जिये और उसी के लिये उन्होंने देह-त्याग किया।

पाण्डेय जी के जीवन का एकमात्र उद्देश्य यदि कोई हो सकता है, तो निस्सन्देह वह साहित्य-सेवा ही था। जैसा कि प्रायः सभी नवागन्तुक साहित्यकारों के सम्बन्ध में चरितार्थ होता है, श्री रूपनारायण पाण्डेय ने भी कविता से ही अपने साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश किया था। पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में खड़ीबोली का जो आन्दोलन चला था, उसमें पाण्डेय जी की कविताओं ने भी महत्वपूर्ण योगदान किया। वह खड़ी बोली में हिन्दी कविता का निर्माण-काल था। पाण्डेय जी की कविताएँ नींव के उन पत्थरों में सिद्ध हुईं, जिन के वक्षस्थल पर साहित्य का गगनचुम्बी प्रासाद खड़ा होता है। "पराग" नामक उनकी कविताओं का जो संग्रह प्रकाशित हुआ, उसमें उनके कवि-हृदय के समस्त प्रारम्भिक उद्गार प्रकट हुए हैं। यह और बात है कि खड़ीबोली की कविता ने पीछे चल कर जो प्रगति की, छायावाद के रूप में उसका जो एक अभूतपूर्व विकास हुआ और जिसका विरोध स्वयं खड़ीबोली की हिन्दी कविता के आदि प्रवर्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को भी करना पड़ा; किसी कारणवश श्री रूपनारायण पाण्डेय उस नयी धारा में सफलतापूर्वक आगे नहीं बढ़ सके। किन्तु, स्वयं छायावाद का सक्रिय सहयोग न करते हुए भी उन्होंने उसके विकास एवं संवर्धन में जिस प्रकार मुक्त-हृदय से सहयोग किया, वह उनकी तीक्ष्ण बुद्धि, वर्तमान के प्रति आस्था एवं आनेवाले युग की दूर से ही पहचान कर सहज-भाव से स्वागत कर लेनेवाली क्षमता का परिचायक था। साहित्य-समाज ने 'कविरत्न' की महत्वपूर्ण एवं सत्यार्थक उपाधि से उनका जो गौरव-पूर्ण सम्मान किया, वह इसलिए नहीं कि वह किसी कवि-सम्मेलन के मंच से कविता का धुआँधार पाठ कर श्रोताओं को आश्चर्य-चकित कर सकते थे अथवा एक के बाद एक अपनी दर्जनों कविता की पुस्तकें प्रकाशित करवा सकते थे, वरन् इसलिए कि उनके मज्जागत तन्तुओं का

स्वाभाविक संस्कार ही कवितामय था, वह किसी क्षणस्थायी भावावेश के कवि नहीं थे और न किसी लग्न, विवाह, मुण्डन, सभा या समिति के प्रशस्ति-वाचक ही थे। यदि वह ऐसा कर सकते, तो कविता क्षेत्र में निःसंदेह वह तत्कालीन कवियों जैसी परम्परा स्थापित कर दिगन्तव्यापी कीर्ति एवं प्रचुर द्रव्य कर उपार्जन कर सकते थे। लेकिन, तब उनकी स्नेह-छाया में पल कर उन असंख्य नव-रचनाओं का उदय तथा विकास कदापि सम्भव न होता, जो आज उनके तिरोभाव पर श्रद्धा एवं कृतज्ञता-पूर्वक नतमस्तक हैं। वह कविरत्न आज पारस न होता, जिसके स्पर्श मात्र से लोह खण्ड सोना बन कर चमकने लगता है। द्विवेदी युग के पश्चात् कालीन तीन दशकों को उन्होंने आशा, उत्साह एवं आत्मविश्वास के साथ पुष्पित-पल्लवित होते देखा; अगणित कवियों, कथाकारों तथा साहित्य जगत के देदीप्यमान नक्षत्रों की ज्वलंत आभा को चतुर्दिक जगमगाते न केवल अवलोकन ही किया; बल्कि, उन्हें पाला-पोसा और ऐसे प्रत्येक बिरवे को फूलने-फलने का अवसर दिया, जो प्रकाश की प्रतीक्षा में उन्मन-उन्मुख थे।

खड़ीबोली की पहली पीढ़ी में जिस प्रकार आचार्य द्विवेदी जी साहित्य का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे, ठीक उसी प्रकार दूसरी पीढ़ी को सजाने-सँवारने वालों में श्री रूपनारायण पांडेय का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। जो काम सरस्वती के द्वारा द्विवेदी जी ने अपने युग के अनुकूल, अपने तरीके से किया, वही काम रूपनारायण पांडेय ने भी किया। किंतु उद्देश्य की एकता रहते हुए भी दोनों 'साहित्य महारथियों' की कार्यपद्धति में महान् अन्तर था। एक ने जहाँ अपने पांडित्य, शक्ति, अधिकार एवं कर्मठता का निरंकुशतापूर्वक सदुपयोग किया, वहाँ दूसरे ने अपनी समस्त शक्ति, अधिकार एवं विद्वत्ता को स्नेह, सहिष्णुता तथा निरभिमानता की निर्मल धारा में प्रवाहित कर दिया। वास्तव में आचार्य द्विवेदी और और पंडित रूपनारायण पांडेय में कोई तुलना भी हो सकती है, इसका विचार तक नहीं आता। पर, एक सम्पादक के नाते जहाँ दोनों मनीषियों में एक प्रकार की आश्चर्यजनक समानता थी, वहीं अपने

व्यवहार में दोनों एक दूसरे से नितान्त विभिन्न प्रकृति के थे। लगता है, मानों दोनों दो विपरीत धातुओं के बने हों। ब्राह्मण, आचार-विचार में नैष्ठिक, स्वतंत्रतोपजीवी, कर्मठ, विद्वान्, अपनी संस्कृति एवं वेश-भूषा के प्रति आस्थावान; किंतु, साहित्य-जगत में दोनों की अभिव्यक्तियाँ सूर्य एवं चन्द्र के समान दो बिल्कुल विभिन्न किरणों के माध्यम से हुई। एक उग्र था तो दूसरा कोमल। एक का तेज असहनीय था, तो दूसरे की ज्योति प्राणमनोन्मादनी। एक यदि अपने विरोधियों के प्रति खड्गहस्त था, तो दूसरा मौन भाव से कालकूट को भी पी जानेवाला देवाधिदेव शंकर सा करुणामय। इतनी विषमता होते हुए भी दोनों में अद्भुत समानता थी, जिसका उल्लेख किये बिना दोनों के युग की प्रमुख विशेषताओं एवं गति-विधियों का सम्यक् अध्ययन नहीं किया जा सकता है।

द्विवेदी युग में किसी संपादक का अधिकार सर्वप्रभुतासम्पन्न अधिनायक से तिलमात्र भी कम नहीं होता था। पत्र का संपादक अपने साम्राज्य का एक ऐसा निरंकुश स्वामी होता था, जिसकी इच्छामात्र से ही उस जगत में प्रलय सृजन का अविराम नृत्य चलता रहता था। आज भी उस प्रभुशक्तिमात्र में कोई अन्तर नहीं आया है। सम्पादक जिसको चाहे, आकाश में उछाल दे, जिसे चाहे रसातल में पठा दे। क्षणमात्र में केवल एक भृकुटि के विलास से ही वह "राई को पर्वत करे, और पर्वत राई माहि"। किसी भी लेख को घटाने-बढ़ाने, छापने न छापने, लौटाने न लौटाने, का यह सर्वलोक व्यापी महाधिकार सम्पादक के सिवा, अत्यंत निरंकुश डिक्टेटर में तो क्या स्वयं परमेश्वर में भी नहीं हो सकता है। आचार्य द्विवेदी जी की तो यह प्रमुख विशेषता ही समझी जाती रही है कि वह अपने सम्पादकीय कलम-कुठार का आघात बड़े से बड़े लेखकों पर भी कर देते थे, किसी किसी रचना का तो वह इतना प्रचुर सम्पादन करते थे कि स्वयं रचनाकार को भी देखकर अवाक् रह जाना पड़ता था कि क्या वह सचमुच मेरी ही रचना है? कहते हैं कि द्विवेदी जी इस विषय में बड़े सावधान थे और अथक परिश्रम करते थे। किसी रचना को मनोनुकूल बना कर 'सरस्वती' में प्रकाशित करने के लिये यदि

उन्हें पूरी रचना को दुबारा भी लिखना पड़ता, तो वह सहर्ष लिख डालते, हिचकिचाते नहीं। सम्पादन की यह एक ऐसी शैली थी, जो उस समय की विचार-धारा का प्रतिनिधित्व कर रही थी। वह एक ऐसी पाठशाला थी, जहाँ एक गुरूजी बहुत से लड़कों को पढ़ाया करते थे। "बाबा वाक्यम् प्रमाणम्" मानकर गुरूजी की हर भली बुरी आज्ञा को शिरोधार्य कर लेना होता था। अविनय करने पर वर्ग से बहिष्कृत कर दिये जाने का भय भी था। पत्र में प्रकाशित हर मतामत के लिये एकमात्र सम्पादक ही उत्तरदायी समझा जाता था। इसलिए संपादक का यह प्रधान कर्तव्य होता था कि वह किसी ऐसे लेख को अपने पत्र की सीमा में न घुसने दे, जो उसके विचारों से मेल न खाता हो। विचारों की यह असहिष्णुता उस समय के पत्रों में एक महत्वपूर्ण गुणात्मक आकर्षण बन कर परिव्याप्त थी। न केवल पत्र के नैतिक दृष्टिकोण से ही बल्कि राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक, भावसंबंधी, या कभी कभी तो यहाँ तक कि घरेलू या पारिवारिक मामलों में भी संपादक अपना निजी विचार रखता था और उससे मतभेद रखकर किसी रचना का प्रकाशित होना असम्भव था।

किंतु श्री रूपनारायण पांडेय जब 'माधुरी' के सम्पादक होकर आये, तब देश में एक नयी जागृति की लहर फैल चुकी थी। विचार-स्वातंत्र्य का एक नया आलोक क्षितिज पर अंगड़ाइयाँ ले रहा था। साहित्यगगन में नये-नये नक्षत्र धूमकेतु के समान अपनी जाज्वल्यमान प्रकाश-शिखा पर तेजी से मंडला रहे थे। ऐसे वेगवान अग्निपिंडों को आचार्य द्विवेदी जी के निर्मम डण्डे से नहीं हाँका जा सकता था। आचार्य द्विवेदी जी अपना काम कर चुके थे। मिट्टी को गोड़-गाड़ कर समतल किया जा चुका था। अंकड़-कंकड़, घास-पात और कील-काँटे निकाले जा चुके थे। नये नये पौधे मस्ती से हवा में झूमते हुए चले जा रहे थे। ऐसे समय में जिस सहृदय माली की आवश्यकता थी, वह श्री रूपनारायण पांडेय के रूप में ही आ सकता था। अन्य कोई व्यक्ति उस पद का अधिकारी नहीं था।

पंडित रूपनारायण पांडेय का संपादन-काल प्रायः २० वर्षों से

अधिक का ही रहा होगा। हिन्दी साहित्य का यह युग अपना एक विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व रखता है। एक प्रकार से यह छायावाद का स्वर्णकाल कहा जाता है। वर्तमान हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी श्रेष्ठ कलाकार इसी युग में चमके। यह समय 'माधुरी' के जन्म के साथ ही प्रारम्भ होता है और उसी के साथ इसका अंत भी होता है।

"माधुरी" के साथ पांडेय जी का अभिन्न संबंध रहा। वास्तव में यह रूप की माधुरी ही थी, जो साहित्य-जगत में एक नया संदेश लेकर अवतरित हुई। "माधुरी" के मुखपृष्ठ पर तत्कालीन प्रथा के अनुसार एक संदर्भ वाक्य प्रकाशित हुआ करता था।—"सिता माधुरी, तिय अधर, सुधा माधुरी धन्य। पै यह साहित माधुरी नव रसमयी अनन्य"। 'माधुरी' के पृष्ठ-पृष्ठ से उपर्युक्त वाक्य चरितार्थ होता था। उस समय हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में एकमात्र 'माधुरी' ही एक ऐसी रूप की रानी थी, जिसके सौंदर्य के सामने अन्य पत्रिकाएँ कुछ वैसी फीकी लगती थीं, जैसी परिपूर्ण प्रफुल्ल चन्द्रमा की ज्योति के सामने नक्षत्र मालिका। इसमें संदेह नहीं कि 'माधुरी' अपने समय की प्रतिनिधि पत्रिका थी और इसलिये समस्त हिन्दी संसार के आकर्षण का केन्द्र बनी थी। ऐसी पत्रिका के सम्पादन का सारा श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को दिया जा सकता है, तो वह हैं पण्डित रूपनारायण पाण्डेय। और उनके सहयोगी थे पण्डित दुलारे लाल भार्गव। यह जोड़ी कुछ ऐसे घनिष्ठ सूत्र में आबद्ध थी कि जब पण्डित दुलारेलाल भार्गव 'माधुरी' से अलग होकर स्वतंत्र रूप से अपनी एक पत्रिका प्रकाशित करने लगे, तो अपने साथ पण्डित रूपनारायण पाण्डेय को भी लेते आये। मैत्री के इस अटूट सम्बन्ध को निबाहना पाण्डेय जी जैसे सरल-सहृदय सत्पुरुष का ही कार्य था। श्री दुलारेलाल के आह्वान पर पण्डित रूपनारायण पाण्डेय जी उनकी नव प्रकाशित पत्रिका 'सुधा' में आ गये। कई वर्षों तक 'माधुरी' और सुधा दोनों ही पत्रिकाएँ निराली आन-बान-शान से चलती रहीं। दोनों में प्रतिद्वन्द्विता का भाव कुछ ऐसा प्रबल रहा कि साहित्यिक व्यक्ति काफी रुचि के साथ इस अमृत रस का आनन्द लेते। 'हिंदू पंच' जैसे कलकतिया पत्र को भी यह विनोद करने का

अवसर मिल जाता :—"सरस्वती तो बुढ़िया है, मनरम्म चाँद ये मेरी हैं। धत्तेरे मतवाले की, अब सुधा माधुरी मेरी हैं।" स्पष्ट है कि 'हिंदू पंच' जैसा पत्र भी, जिसके सम्पादक उस समय पंडित ईश्वरी प्रसाद शर्मा जैसे विख्यात साहित्यिक थे, सहसा यह निर्णय नहीं कर पाता कि 'माधुरी' और 'सुधा' में कौन श्रेष्ठ है ? तभी तो इसने दोनों को अपना लिया एक बाहुपाश में !

'सुधा' का प्रकाशन स्थगित हो जाने पर पंडित रूपनारायण पांडेय पुनः 'माधुरी' में चले आये और जब तक 'माधुरी' प्रकाशित होती रही, तब तक उसके साथ रहे। माधुरी के दिवंगत हो जाने पर 'वासंती' नामक एक नयी पत्रिका निकालने की योजना बनी थी। लेकिन, साधनों के अभाव में वैसी कोई योजना कार्यान्वित नहीं की जा सकी।

सम्पादन के क्षेत्र में पांडेय जी का अपना मत यह था कि चाहे जो कोई व्यक्ति हो, यदि उसमें प्रतिभा है, तो उसे अवश्य प्रोत्साहन मिलना चाहिए। साहित्यकार नया है या पुराना, अमीर है गरीब, उससे कोई निजी स्वार्थ सधता है नहीं ? ऐसे प्रश्नों के लिये पांडेय जी के हृदय में कोई स्थान नहीं था। रचनाओं को परखने के लिये वह केवल रचनाओं की योग्यता को ही देखते थे। रचनाकार के रूप, रंग, जाति, कुल अथवा देश से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं था। जिसने भी एक बार पांडेय जी का द्वार खटखटाया, वह निराश नहीं लौटा। एक बार भी जिसकी कोई रचना पांडेय जी को पसन्द आ गयी, वह सदैव के लिये उन्हीं का हो गया। जिसके लिये पांडेय जी के हृदय का द्वार एक बार भी खुला, वह किसी भी परिस्थिति में फिर बन्द नहीं हुआ। एक बार भी जो उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त कर सका, वह सदैव के लिए उनकी मन्द-मन्द मुस्कराती हुई आकृति की याद अपने हृदय में संजोये गया। जितना ही उनसे मिलना सरल था, उतना ही उनको भूल जाना कठिन। यह न केवल मेरा ही अनुभव है, बल्कि उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में जो भी व्यक्ति आये हैं, सबके अन्तर में यही स्वर गूँजता है।

कुछ साहित्यिक ऐसे होते हैं, जो अपने ही मन की रुचि-अरुचियों

के बीच एक संकुचित स्थान बनाते हैं। साहित्य-देवता को कुछ निश्चित मनगढ़ंत सीमा रेखाओं के घेरे में स्थापित कर देते हैं और चाहते यह हैं कि लोग बजाय उस देवता के, उनकी ही पूजा किया करें। लेकिन कुछ ऐसे साहित्यकार भी हैं, जो न तो कोई दल बनाते हैं और न कीर्तनिया भक्तों की मण्डली ही जुटा कर रखते हैं, जो आगे-पीछे उनका गुणगान करती चले। पांडेय जी इसी दूसरी कोटि के साहित्य-सृष्टा थे।

जो रचनाएँ उनके पास प्रकाशनार्थ आतीं, उनमें वह कोई काट-छाँट कर व्यर्थ अपने पांडित्य-प्रदर्शन का नाटक नहीं रचते थे। उनका यह दृष्टिकोण था कि प्रत्येक कलाकार अपने सहज स्वभाव में ही विकसित हो सकता है। उसे विकास का अवसर-भर प्रदान कर देना चाहिए। प्रतिभाओं को किसी निर्दिष्ट दिशा में मोड़ने का यह अर्थ है कि किसी नदी की धारा को उसकी स्वाभाविक गति से वंचित कर नहर बना देना। ऐसी दशा में वह केवल यंत्र-मात्र बनकर रह जाता है, वह कोई मौलिक चिंतन या रचना नहीं कर सकता है। जहाँ तक प्रोत्साहन का प्रश्न है, वह अवश्य दिया जाय; परन्तु, कहीं ऐसा न हो कि परोपकार के विचार से किसी की आत्मा ही कुचल दी जाय। जिस प्रकार शिशु के कलरव को सुनकर माता-पिता उसका आनन्द लेते हैं, उसी प्रकार नयी-नयी कला-बेलियों को विकसित देख कर उन्हें परम तृप्ति होती थी। इनमें किसी प्रकार की कतरब्योंत उन्हें पसन्द नहीं थी। बल्कि, एक निपुण माली की तरह सुन्दर-सुन्दर फूलों का गुलदस्ता सजा कर रख देने में उन्हें जीवन का सच्चा लाभ दिखायी पड़ता था।

पांडेय जी जो भी कार्य करते थे, वह किसी लोभ-लालच या महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि अपना एक कर्त्तव्य समझ कर। "कर्मण्ये-वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" गीता के इस आदेश का वह अक्षरशः पालन करते थे। संतोष-वृत्ति उनमें इतनी अधिक थी कि किसी से कुछ याचना करना तो दूर रहा, देने पर भी अत्यंत संकोच से उसे ग्रहण करते थे। अपरिग्रही ऐसे कि जीवन-यात्रा का उतना ही पाथेय साथ लिया, जितने कि अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत हुई। यही कारण था कि कठिन

से कठिन संकट की घड़ियों में भी उनका मुख कभी मलीन न हुआ। आत्म-संयम का तेज सदैव उनके धवल ललाट एवं मुख मण्डल को उज्ज्वल किये रहता था। प्रशस्त भाल पर रक्त तिलक, अधरों पर सहज विकसित मुस्कान, सत्तर वर्ष से ऊपर की अवस्था में भी सुपुष्ट शरीर देखकर कोई भी यह सहज ही अनुमान कर लेता कि हम किसी प्राचीन काल की देवमूर्ति के सम्मुख खड़े हैं और तत्काल श्रद्धा से उसका मस्तक अवनत हो जाता। आश्चर्य है कि ऐसी मूर्तियाँ आज भी हमारे बीच आती हैं और हमारे जीवन को आलोकित कर न जाने कहाँ अंतर्हित हो जाती हैं ? ऐसा कोई देवपुरुष जब हमारे बीच उपस्थित होता है, तब हम उसे पहचान नहीं पाते और जब वह चला जाता है, तब हम 'हाय' कर उठते हैं। पण्डित रूपनारायण पाण्डेय भी इसी कोटि के देवमानव थे। उन्होंने हमसे कुछ नहीं लिया। कोई याचना नहीं की। साहित्य का वह निस्पृह पुजारी हमारे द्वारा दिये गये किसी बड़े से बड़े सम्मान का भी इच्छुक नहीं था। पर, हमने उसे दिया ही क्या ? हीरे-मोतियों से तौल नहीं सकते थे। एक मामूली मानपत्र या अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित कर देने भर से ही हमारे परम पुनीत कर्तव्य की इतिश्री हुई जा रही थी। पर, हम वह भी नहीं कर सके।

खेद है कि उसका महत्व हम तब समझ रहे हैं, जब वह आज हमारे बीच नही हैं। और उससे भी महान खेद का विषय यह है कि ऐसा निरभिमानी एवं सरल व्यक्तित्व फिर नहीं मिलेगा। उन्हें लखनऊ अत्यन्त प्रिय था। लखनऊ की बात करने में उन्हें आनन्द मिलता था। किसी फल की कोई आकांक्षा नहीं। मैं जब उन्हें उस महान् साहित्यिक कृतित्व की याद दिलाता, जो उनकी स्नेह-छाँह में विकसित हुआ; तो मानो वह एक स्वप्न-जागरण की-सी स्थिति में बोल उठते—मैंने तो कुछ भी नहीं किया। कोई अपनी योग्यता से ही बढ़ा है। बात कुछ ऐसी नहीं है कि जिससे थोथी विनय की भावना टपकती हो। पर, आज के युग में जहाँ हर व्यक्ति की जबरदस्ती पद, मान या आत्मप्रतिष्ठा का सर्वाधिकार लूट लेने की प्रवृत्ति होती है, वहाँ एक अदना श्रेय भी लेना पाण्डेय जी

को महान् संकोच में डाल देता था। जब तक हृदय में पूर्ण त्याग की भावना न हो, तब तक क्या ऐसे विचार प्रकट हो सकते हैं ?

पाण्डेय जी हिन्दी के अतिरिक्त बँगला और संस्कृत भी अच्छी तरह जानते थे। नाटकों से उन्हें विशेष अभिरुचि थी और हिन्दी के इस अभाव की पूर्ति के लिये उन्होंने बंगला के श्रेष्ठ नाटकों का हिन्दी अनुवाद उपस्थित किया। विशेष रूप से द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों ने उन्हें प्रभावित किया और अत्यंत कुशलता के साथ उन्होंने उपर्युक्त नाट्य-कार के नाटकों का हिन्दी अनुवाद कर डाला। वे नाटक इतने सुन्दर बन पड़े हैं कि उनमें मौलिक का सा आनन्द प्राप्त होता है। यह था बंगला भाषा पर उनका अधिकार।

इंडियन प्रेस द्वारा प्रकाशित महाभारत का अनुवाद भी उन्होंने किया। यह एक ऐसा साहित्यिक यज्ञ था, जिसमें काफी धैर्य, लगन, उत्साह और परिश्रम की आवश्यकता थी। भगवान व्यास की कृपा से वह भी सुसम्पन्न हुआ और इस प्रकार पाण्डेय जी की धार्मिक प्रवृत्तिवाली आत्मा को शान्ति मिली।

किन्तु अफसोस है कि हम अपनी अज्ञानता से आज एक ऐसे महान् व्यक्तित्व को सदा-सदा के लिये खो बैठे, जो हमारी श्रद्धा-भक्ति का कोई महज मामूली सा कागज का टुकड़ा भी नहीं ले गया और दे गया हमारे ऊपर अपनी अनुकम्पा का इतना बड़ा ऋण कि यदि उसको चुकाने के लिये हमें सात बार धरती पर जन्म लेना पड़े, तो भी कम है। यही सोच कर हमें एक प्रसिद्ध उर्दू कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ याद आती हैं :—

कल तो यह कहते थे कि बिस्तर से उठा जाता नहीं।
आज दुनिया से चले जाने की ताकत आ गयी।

---

(६)

डा० सावित्री शुक्ल, ए० ए०, एम० एड०, पी-एच० डी, १२३ गुइन रोड, लखनऊ

कविवर पं० रूपनारायण पांडेय के निधन के साथ द्विवेदी युग की एक और शक्तिशाली प्रतिभा, सृजनात्मक व्यक्तित्व और उदारचेता मनस्वी का अन्त हो गया। पांडेय जी अपने क्षेत्र, अपनी शैली, अपने व्यक्तित्व की दृष्टि से अनोखे और मौलिक कलाकार थे। वे भावुक कवि, सफल नाटककार, अनुवादक, विशिष्ट सम्पादक और अत्यधिक उदार व्यक्ति थे।

पांडेय जी की कविता में प्रसाद गुण की प्रधानता है। लोक प्रचलित पदावली का प्रयोग करके पांडेय जी ने काव्य-रचना की है। पाण्डेय जी की कविताओं के विषय सामयिक और प्रभावशाली हैं। शांत-रस से ओत-प्रोत उनकी रचनाएँ बड़ी आकर्षक हैं। उनमें राष्ट्रीय भावना इतनी प्रबल है कि अपने देश की दुर्दशा का चित्र वे ईश्वर तक पहुँचाने के लिए व्यग्र और प्रयत्नशील रहते हैं। कबीरदास के समान ही पाण्डेय जी की करुणावृत्ति का प्रसार पशु-पक्षियों और वनस्पति जगत तक हुआ है। उनकी रचनाओं में आशा, उत्साह और प्रेरणा की अबाध धारा प्रवाहित है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ पठनीय होंगी:—

बाधाएँ हों लाख, मगर हम नहीं हटेंगे;
उमंग और उत्साह हमारे नहीं घटेंगे।
कष्ट कठिन हों, कृष्ण-कृपा से सभी कटेंगे;
अभी कभी तो मोह द्रोह के हृदय फटेंगे।
हम सब होंगे कर्त्तव्य रत, भव्य नव्य युग में कभी,
ये दोष न होंगे उस समय, जो हममें हैं अभी।

पाण्डेय जी की प्रेम विषयक कविताएँ भी आकर्षक हैं। उनकी कविताएँ लौकिक प्रेम से संबंधित न होकर अलौकिक तत्वों की ओर इंगित करती हैं। उपालंभ कविता से यहाँ कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं:—

वह चंचलता गई, हुए वे दिन सपने से;
अर्पण ही कर दिया हृदय अपना अपने से।
पतित कहो तो भले गले से नहीं लगाओ;
चरण-चिह्न तो हृदय बीच आकर कर जाओ।

पांडेय जी की कविताओं में प्रकृति-चित्रण रमणीय ढंग से हुआ है। 'चांदनी रात', 'ग्रीष्म' आदि कविताओं में उनका प्रकृति-प्रेम और प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण और प्रकृति के प्रति असीम ममता प्रकट होती है।

पांडेय जी व्यंग्य-रचना में बड़े कुशल थे। फैशनेबुल, चतुर बनने वाले नागरिकों के प्रति उनके व्यंग्य-बाण बड़े मार्मिक प्रतीत होते हैं। अछूतोद्धार की समस्या को पाण्डेय जी राजनीतिक दृष्टि से न देखकर मानवता की दृष्टि से देखते हैं। अछूत अन्य व्यक्तियों के समक्ष किसी प्रकार से हीन नहीं हैं, इस बात के वे समर्थक थे। पांडेय जी उन्हें अपना ही अंग मानते हैं। एक दूरदर्शी व्यक्ति के समान वे उपदेश देते हुए कहते हैं—

अपना ही अंग हैं ये अंत्यज असंख्य, इन्हें;
गले न लगाया तो अवश्य पछताओगे
ममता के मंत्र मे विषमता का विष जो
उतरा नहीं, जाति को तो जीवित न पाओगे।
पक्षाघात - पीड़ित समाज जो रहेगा पंगु
उन्नति की दौड़ में कहाँ से जीत जाओगे ?
साधना स्वराज्य की सफल कभी होगी नहीं;
अगर अछूतों को न आप अपनाओगे।

इन पंक्तियों से उनकी दूरदर्शिता और चिंतन की गहनता प्रकट होती है।

लक्खी बाई, वन विहंगम और पुत्रप्राप्ति का परिणाम आदि आपकी कविताएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। एक पक्षि-युग्म की करुण कहानी का विवरण निम्नलिखित पंक्तियों में बड़े रोचक ढंग से व्यक्त हुआ है। कवि कहता है:—

दिन एक बड़ा ही मनोहर था, छवि छाई बसंत की कानन में;
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी, जड़ चेतन के तन में, मन में।
निकले थे कपोत, कपोती कहीं पड़े झुंड में घूम रहे बन में;
पहुँचा यहाँ घोसले पास शिकारी शिकार की ताक में निर्जन में।

इन पंक्तियों से पांडेय जी की वर्णन और अभिव्यंजना शक्ति का आभास मिलता है। उनकी काव्य - भाषा सरल, सरस, प्रभावशाली और मुहावरेदार है। उदाहरणार्थ यहाँ चार पंक्तियाँ और उद्धृत की जाती हैं:—

बुद्धि-बिवेक की जोती बुझी, ममता-मद-मोह घटा घनी घेरी;
है न सहारो, अनेकन है ठग, पाप के पन्नग की रहै फेरी।
त्यों अभिमान को कूप इतै, उतै कामना-रूप सिलानी की ढेरी;
तू चलु मूढ़ सँभारि अरे मन, राह न जानी है रैनि अँधेरी।

(७)

श्री ब्योहार राजेंद्र सिंह, साठिया कुआँ, जबलपुर

स्वर्गीय पंडित रूप नारायण पांडेय हिन्दी साहित्य के उन साधकों में से एक थे जिन्होंने साहित्य-सेवा को अपने जीविका का साधन ही नहीं, अपनी जीवन की साधना बना लिया था। उनकी पीढ़ी में जितने साहित्य-साधक उत्पन्न हुए उतने शायद उनके बाद की पीढ़ी ने अभी तक उत्पन्न नहीं किये। वह युग हिन्दी के निर्माण का युग था। उनके युग के अधिकांश साहित्य साथी अब तक स्वर्ग के साथी बन चुके हैं और जो बच रहे हैं वे अभी तक साहित्य सेवा में जुटे हुए हैं। उनमें एक नाम प्रमुख रूप से हमारे सामने आता है; वह है पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेई का नाम। जितने कवि सम्पादक इतिहास लेखक वैज्ञानिक नाटककार राजनीति तथा अर्थशास्त्र के लेखक उनकी पीढ़ी ने उत्पन्न किये उनका स्मरण करते ही श्रद्धा से मस्तक नत हो जाता है।

उनके समय की पत्र-पत्रिकाओं ने भी हिन्दी साहित्य निर्माण और लेखकों को प्रोत्साहन देने के क्षेत्र में कितना कार्य किया उसका अनुमान लगाना कठिन है। 'सरस्वती' ही आज उनमें से शेष रह गई है—शेष ही

नहीं रह गई वरन् आपकी परम्परा को स्थिर किये हैं। शेष साप्ताहिक या दैनिक पत्रों में "श्री वकटेश्वर समाचार" अब भी चला जा रहा है। शेष पत्रिकाओं में लक्ष्मी, मर्यादा, प्रभा, प्रतिभा, हितकारिणी, कमला, पीयूष-प्रवाह तथा नृसिंह अपनी छाप छोड़कर सदा के लिये काल के गाल में लीन हो गये। स्वयं पांडेय जी की सम्पादिक पत्रिकायें, माधुरी, सुधा, इन्दु, नागरी प्रचारक, निगमागम चन्द्रिका आदि उनकी स्मृति रेखायें बनकर रह गई। जब हम विदेशी पत्रिकाओं से (जो कि अपनी स्वर्ण जयन्तियां तथा शताब्दियां मना रही हैं) अपनी पत्रिकाओं को तुलना करते हैं तो हमें हिन्दी संसार के प्रति एक निराशा की भावना घेर लेती है। हम अपनी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पत्रिकाओं को भी नहीं चला सके। यह हमारे लिये लज्जा की बात है।

पांडेय जी ने अपने जीवन का रसदान कर जिन पत्रिकाओं का सम्पादन किया उनमें प्रकाशित लेखों और टिप्पणियों का यदि संग्रह किया जाय तो एक अच्छा साहित्य प्रस्तुत हो सकता है। उन टिप्पणियों में साहित्यिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक तथा भाषा-विज्ञान सम्बन्धी अमूल्य सामग्री हमें प्राप्त हो सकती है जो कि साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक अलभ्य लाल सिद्ध होगा। केवल माधुरी के सम्पादन में ही उन्होंने अपने जीवन के २१ वर्ष व्यय किये। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त शायद ही किसी अन्य सम्पादक की इतनी लम्बी परम्परा हो। उनके सातत्य योग का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है।

सम्पादन के अतिरिक्त अनुवाद के क्षेत्र में भी उनकी देन अनुपम है। अक्सर लोग अनुवाद कार्य को यांत्रिक और हीन कार्य समझते हैं; किन्तु किसी भी उदीयमान साहित्य के लिये अन्य भाषाओं के अनुवाद एक परम आवश्यक निधि सिद्ध होते हैं। अँग्रेजी साहित्य के विषय में कहा गया है कि संसार की किसी भाषा में प्रकाशित कोई भी उत्तम ग्रन्थ तीन वर्षों के अन्दर अंग्रेजी भाषा में अनूदित हो जाता है। इसलिये आज अंग्रेजी भाषा का साहित्य भण्डार बहुत ही समृद्ध और पूर्ण माना जाता है। अन्य भाषाओं से सम्पर्क बनाये रखने के लिये भी एक भाषा में प्रकाशित ग्रन्थों का आदान-प्रदान होना बहुत आवश्यक है। इसी दृष्टि

से पांडेय जी ने भारतीय भाषाओं, खासकर संस्कृत और बंगला के प्रसिद्ध लेखकों को पहले पहल हिन्दी से परिचित कराया। संस्कृत साहित्य का भी हमारी भारतीय भाषाओं पर बड़ा प्रभाव है। संस्कृत से हमारी संस्कृति और ऐतिहासिक परम्परा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये भी उसकी ओर पांडेय जी का ध्यान जाना स्वाभाविक ही था।

बाल साहित्य की ओर हमारे ऊँचे समझे जाने वाले लेखकों और कवियों में उपेक्षा का भाव रहता है। उन्हें शायद पता नहीं कि विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उच्च साहित्य का सृजन करते हुए भी बाल साहित्य का पूरा ध्यान रखा और बालकों के लिये योग्य पुस्तकें तक लिखने में अपनी हीनता नहीं समझीं। इसी आदर्श से प्रेरित होकर पांडेय जी ने बाल साहित्य का सृजन करना प्रारंभ किया जो कि उस समय के लिए एक नवीन दिशा थी।

सम्पादक के अतिरिक्त लगभग ६० से अधिक ग्रन्थों का अनुवाद अपनी विरासत में छोड़ जाना किसी भी लेखक के लिये पूरा जीवन-कार्य है; तो भी उनके मौलिक ग्रन्थों की संख्या १५ से कम नहीं है जिनमें आधे पद्य में हैं।

इस प्रकार पं० रूपनारायण पांडेय ने अपना सारा जीवन साहित्य-साधना में बिताया तथा हिन्दी साहित्य को एक अक्षय निधि अर्पित कर दी। उनकी मौलिक रचनाओं से पता लगता है कि वे गद्य लेखक के अतिरिक्त एक सुकवि भी थे। इसके प्रमाणस्वरूप उनका 'श्रीकृष्ण चरित्र' महाकाव्य दर्शनीय है। उनकी रचनाओं का परोक्ष प्रभाव हिन्दी में नाट्य और उपन्यास साहित्य की वृद्धि में हुआ। बंगला साहित्य से प्रभावित होकर लेखकों ने भी मौलिक नाटकों और उपन्यासों की रचना प्रारम्भ की जिसका सुफल है कि आज हम हिन्दी में उत्कृष्ट नाटक और उपन्यासकार देखते हैं। नाटक रचना का प्रभाव हिन्दी रंगमंच के हृदय पर भी हुआ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पांडेय जी ने सम्पादन के क्षेत्र में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी और नाटक के क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की परम्परा को आगे बढ़ाया और इस प्रकार हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा की।

(८)

श्री अखिलेश मिश्र, 'स्वतंत्र भारत'-कार्यालय, लखनऊ

पूज्य पिता जी को एक ही व्यसन है; हिन्दी की पुरानी से पुरानी पत्रिकाएँ उनके पास सुरक्षित मिलेंगी। पिछले कुछ वर्षों से वृद्धावस्था के कारण उन्होंने पढ़ना-लिखना कम क्या, प्राय: बन्द कर दिया है; पर सन् ४४-४५ तक तो उन्होंने जो भी पत्रिका पढ़ी वह उनके पास अब तक सुरक्षित अवश्य होगी। चाँद, विशाल भारत, त्याग भूमि, सुधा, माधुरी और कल्याण को उनकी प्रियतम पत्रिकाओं में स्थान मिला है। बच्चों को वह अपनी पत्रिकाओं से दूर रखना ही पसन्द करते हैं; पर वह घर से बाहर होते थे तो मुझे कभी-कभी उनके बड़े बक्स की सामग्री पलटने का अवसर मिल जाता था।

पर यह चोरी बहुत दिनों न चल सकी। एक दिन पकड़ गयी। तब मैं मिडिल पास भी न था। कोर्स के बाहर कुछ पढ़ने की रुचि देखकर अध्यापक होने के नाते उन्होंने थोड़ा-बहुत बताना आरम्भ किया। उन्हीं से पहले-पहल माधुरी और सुधा पत्रिका के महत्व का परिचय मिला। स्व० पं० रूपनारायण पाण्डेय के संबंध में उन्होंने कई रोचक घटनाएँ मुझे बतायीं।

उन दिनों पाठ्यक्रम में पांडेय जी की भी दो-एक कविताएँ थीं। 'कपोत कपोती' कविता की कई पंक्तियाँ तो मुझे और मेरे सभी सहपाठियों को अबतक कंठाग्र होंगी। पाठ्य पुस्तक में कविता का यही शीर्षक था। बाद में पिताजी ने बताया कि कविता का शीर्षक है 'वन विहंगम।' तब से अबतक प्राचीन और नवीन अनेक कविताएँ पढ़ चुका हूँ, पर इतना प्रवाह-युक्त और कृत्रिमतारहित शैली में रचा हुआ सवैया छंद आज तक देखने को नहीं मिला:—

वन बीच बसे थे फँसे थे ममत्व में, एक कपोत कपोती कहीं।

× × ×

सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी, जड़ चेतन के तन में मन में ॥

इस कविता के अंतिम अंशों में करुण रस की व्यंजना भी अनूठी है। कक्षा में इस कविता को पढ़कर बहुधा रोना आता था।

और पाण्डेय जी का प्रथम दर्शन सन् १६४० के आसपास हुआ। चौक के साराफा बाजार में उन दिनों प्रतिवर्ष एक विराट कवि-सम्मेलन होता था। छात्र वर्ग में तब कवि-सम्मेलन के प्रति आकर्षण इतना था कि नाम सुन लेने पर 'किं दूरं शत योजनं।' लालकुआँ और गणेशगंज मुहल्लों की अपनी मंडली भी वहाँ डटी थीं। अध्यक्ष पद पर थे पं० श्री-नारायण चतुर्वेदी। वह उन दिनों उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा प्रसार अधिकारी थे। किसी आवश्यक कार्य से उन्हें शीघ्र ही उठकर जाना पड़ा तो अपना भार वह पं० रूपनारायण पाण्डेय को सौंपते गये। नाम सुना और सामने मूर्ति देखी तो—अपनी सारी मंडली की कमजोरी बता रहा हूँ—आँखों तथा कानों पर विश्वास न हुआ। इतने महान् साहित्यकार की वह सादगी देखकर विस्मय हुआ। मुझे तो उनकी धज से जीवन भर बड़ा संबल मिला है।

इसी के बाद राजनीतिक आन्दोलन के झोंके आये। उनमें मेरे जैसे न जाने कितने तिनके उड़ गये। घुमक्कड़पन का भूत बीच में कुछ उतरा तो एक दिन घर लौटकर फिर पत्रिकाएँ पलटीं। सामने दिखायी दिया माधुरी का 'पढ़ीस अंक'। पढ़ीस जी से बहुत निकट का संबंध था। उनसे बहुत कुछ सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन दिनों हिन्दी के बड़े से बड़े साहित्यकार को गुमनामी के हवाले कर देने की विचित्र परिपाटी सी चल पड़ी थी। उस अंक को देखकर ऐसा लगा, मानो पांडेय जी समाज को विस्मृति की नींद से झकझोर कर जगा रहे हैं। कितने असमय में गँवाया है उस यशस्वी सम्पादक को हमने! उसकी स्मृति को सजीव रखना चाहे तो आज का पत्रकार वर्ग यह संकल्प करे कि किसी भी साहित्य सेवी को प्राण रहते विस्मृत न होने देगा।

माधुरी की ही फायल में पांडेय जी की लेखनी का यह प्रसाद देखने को मिला जो १७ वर्ष बाद भी सम्पादकों, पत्रकारों, लेखकों और कवियों—सभी के लिए चेतावनी है।

'कोई पत्रिका जबतक अपना खर्च न चला सके तब तक वह स्थायी नहीं हो सकती और यथेष्ट खर्च किये बिना कोई पत्रिका अच्छी सामग्री नहीं प्राप्त कर सकती। इस समय हिन्दी के लेखक तो यथेष्ट हो गये हैं पर उनमें से अधिकांश की रचनाएँ सारहीन—खे खली ही होती हैं। परिश्रम और विचार करने की क्षमता या प्रवृत्ति कम लेखकों में पायी जाती है। कविताओं और कहानियों की ही भरमार है। पर केवल अचार या चटनी खाने से ही तृप्ति नहीं होती, उसके लिए अन्न की आवश्यकता होती है। सुनिश्चित निबंध, लेख, तथ्यमूलक स्पष्ट आलोचना, इतिहास विज्ञान, दर्शन आदि की ज्ञानगर्भ रचनाओं के बिना कोई भी पत्रिका केवल कहानी और कविता देकर शिक्षित पाठक को तृप्त नहीं कर सकती; उनकी भूख को, उनकी जिज्ञासा को मिटा नहीं सकती। ऐसी रचनाएँ हिन्दी में कितनी देख पड़ती हैं? आज़ का लेखक समाज पुरस्कार के बिना लिखना तो नहीं चाहता, पर पुरस्कार के योग्य रचनाएँ नहीं प्रस्तुत करता। लेखकों में से जो उच्च कोटि की सामग्री प्रस्तुत कर सकते हैं, उनके लिए भी एक कठिनाई है। उन्हें अध्ययन के लिए पुस्तकें नहीं हैं, देश में दो ही चार पुस्तकालय ऐसे हैं जिनमें विदेशी भाषाओं की उच्च कोटि की सभी विषयों की पुस्तकें प्राप्त हो सकें। एक महत्वपूर्ण लेख लिखने के लिए १०-२० पुस्तकें पढ़ने की आवश्यकता होती है। हिन्दी का लेखक अपने पास से सौ-दो सौ रुपये की पुस्तकें, लिखने के लिए खरीद नहीं सकता और पुस्तकालयों से उसे कोई सहायता नहीं मिलती। यही कारण है कि हर एक लेखक कविता और कहानी क्षेत्र को अपने लिए चुनता है और उनमें अधिकांश बुरी तरह असफल होते हैं।'

अधिक तो क्या कहूँ, पर पत्रकार की मेज पर बैठकर ऐसे अनुभव रोज ही अनेक होते हैं जिनके आधार पर यह कहने की धृष्टता कर सकता हूँ कि यदि उक्त उद्धरण सभी साहित्यकार और साहित्य प्रेमी ही नहीं, अध्यापक वर्ग एवं मंत्रिगण भी मढ़वा कर अपने बैठके में लटका लें तो मातृभाषा ६० फीसदी कुरोगों से मुक्ति पा जाय।

बहुत बाद में पुनः पांडेय जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

दरियागंज के जैन मंदिर में तुलसी जयन्ती का आयोजन था। पांडेय जी अध्यक्ष थे। मैं भी गोष्ठी में बैठा था। उतनी छोटी गोष्ठी में कोई बड़ा साहित्यकार कभी न जाता। पर पांडेय जी ने वहाँ पहुँचकर कोई कृपा की हो ऐसा उनके व्यवहार से नहीं लगा। सौजन्य के वह अवतार थे। उनके दरबार में छोटे का ही आदर था। वहाँ बोलते हुए पांडेय जी ने तुलसी को 'मर्मी कवि' कहा था। शब्द ही बताता है कि वक्ता शब्दों का कितना बड़ा मर्मज्ञ था। आज भाषा के साथ मनमानी बहुत हो रही है, पर यह चेतावनी देने वाला चला गया:—

'तू चलु मूढ़ संभारि अरे मन, राह न जानी है रैन अंधेरी'

भाषा की दृष्टि से उनकी एक-एक पंक्ति चिरस्मरणीय है। एक नमूना यह रहा:—

'काल की कला सा अंग साँचे में ढला' और
नाम भी भला सा बिरला सा एक लव्य था।

यों तो फटे चीथड़े जैसे विषयों पर काव्य रचना कर पांडेय जी ने अनूठी मौलिकता का परिचय दिया है, पर कुछ ऐसे विषय भी थे जिन पर हजारों लेखनियाँ चली हैं। पांडेय जी ने यदि ऐसे बहुप्रचलित विषयों पर भी कुछ कहा तो पढ़ने वाले पर मानों जादू हो गया। अछूतोद्धार ऐसा ही विषय है और पांडेय जी का स्वर यह है:—

'ममता के मंत्र से विषमता का विष जो,
उतरा नहीं जाति को तो जीवित न पाओगे।'

× × ×

साधना स्वराज्य भी सफल कभी होगी नहीं,
अगर अछूतों को न आप अपनाओगे।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के निधन पर तो ऐसी प्रेम, प्रशंसा, विनय, व्यंग्य युत वाणी किसी को मिली ही नहीं:—

सत्य ही क्या, वह सत्य का आग्रह भी अपने संग ले गये बापू।
देख स्वदेश की दुर्दशा यों, कहना पड़ता है—भले गये बापू॥

आजकल कवियों और कविताओं का जिस बड़े पैमाने पर सृजन हो रहा है उसे देखकर पांडेय जी के इस सूक्ष्म पर्यवेक्षण की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है:—

आँखें मुँदो, मुँह खोले हुए लिये लेखनी खींचता चील बिलौआ।
प्रेरणा के लिए रूप की हाट में घूम रहा ज्यों कटा कनकौआ॥
और गले की बदौलत ही मिले सम्मेलनों में सदैव बुलौआ।
लाख मिलाया करे तुक बेतुकी हंस न हो सकता कभी कौआ॥

इस प्रतिभा के साथ-साथ यह अभिमान रहित आत्म-निवेदन भी था:—

कवि जस चाहों मंद मति मैं उछाह के साथ
ज्यों वामन ऊँचे फलहिं उचकि चलावै हाथ

यह दोहा साहित्य के उन जुआ-धरों का दर्प चूर्ण कर देगा जिनमें सरसों सी प्रतिभा हिमालय जैसे अहंकार के नीचे पिसी जा रही है। उनके आदर्श का कवि यदि कहीं हो तो—

निग्रह अनुग्रह समर्थ कविराज के, शरीर में नवग्रह विराजमान मानिये।

प्रगतिवादियों और प्रयोगवादियों को स्व० पांडेय जी ने जो कड़ुई भेषज पिला दी है उसे यहाँ प्रस्तुत किये बिना भी यह आशा करना बेजा न होगा कि उससे विपथगामी नवयुवकों के तन का ही नहीं, मन का तामस भी मिटेगा।

ऊपर के सभी उद्धरणों में अलंकारों की स्वाभाविक छटा है पर उनका एक दोहा बिना जबरदस्ती के आयी हुई अनुप्रास छटा की दृष्टि से अद्वितीय है:—

गुरु गणेश गंगा गिरा गौरी गौरी नाथ
गो गोपी गोपाल की गाऊँ मैं गुन गाथ

गत वर्ष १२ जून को वह परमात्मा को प्यारे हो गये। उन्हीं के शब्दों में—

— — — — — — —यह विधि का व्यापार है
हृदय शान्त हो धैर्य धर मिथ्या सोच विचार है

लेकिन इस प्रकार 'विपदि धैर्य' की व्यवस्था कर लेने से पूर्व एक प्रतिज्ञा तो करनी ही चाहिए:—

बाधाएँ हों लाख मगर हम नहीं हटेंगे
आग और उत्साह हमारे नहीं घटेंगे

जीवन में केवल ३-४ बार उस महा मानव का दर्शन किया। उनके कर्तृत्व में चंचु प्रवेश का भी दंभ नहीं कर सकता। फिर भी उनके निधन का समाचार मर्माहत सा कर गया था। यही सोच रहा हूँ कि उनके प्रिय परिजनों, मित्रों और सदा के संगी-साथियों ने यह वज्रपात किस प्रकार छाती पर पत्थर रख कर सहन किया होगा !

(६)

डा० ब्रजकिशोर मिश्र, पी-एच० डी०, हिंदी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ

पं० रूपनारायण जी पाण्डेय को हिन्दी-जगत् कवि, अनुवादक, सम्पादक तथा आलोचक रूप में तो जानता है किन्तु वे उपन्यासकार भी थे, इसे सम्भवत: अधिक लोग नहीं जानते। अपने रचना काल के आरम्भिक दिनों में उन्होंने उपन्यास क्षेत्र में कुछ प्रयोग किए थे। उसका एक उदाहरण है 'पतित पति या भयानक भूल'।

सीतापुर के प्रसिद्ध रईस तथा साहित्य सेवी, पं० सोमेश्वर दत्त शुक्ल द्वारा स्थापित 'श्रीमती मुनिया देवी पुस्तकालय' में द्विवेदी-युगीन साहित्य की प्रचुर सामग्री विद्यमान है। उक्त पुस्तकालय को अब श्री शुक्ल जी ने 'हिन्दी-सभा, सीतापुर' के संरक्षण में दे दिया है। पाण्डेय जी का उक्त उपन्यास मुझे उन्हीं पुस्तकों के बीच उपलब्ध हुआ। पुस्तक के लेखक का नाम है श्री रूपनारायण शर्मा; मुद्रक हैं ऐंगलो ओरिएण्टल प्रेस, लखनऊ तथा वितरक हैं उपन्यास बहार आफिस, राजघाट, काशी। पुस्तक पर मुद्रण-सन् नहीं दिया है किन्तु श्री शुक्ल जी ने पुस्तक पर हस्ताक्षर करके १६-६-१२ तिथि डाली है, अत: उसका प्रकाशन सन् ११, १२ के ही आस-

पास हुआ होगा। पाण्डेय जी का रचना काल सन् ११, १२ तक आरम्भ हो चुका था और उनके लेख आदि भी सन् ७, ८ में छपने लगे थे।

प्रस्तुत उपन्यास का उद्देश्य प्रधानतः समाज-सुधार है। समाज के कुछ लज्जापूर्ण अंगों का उद्घाटन और उनके कुपरिणाम दिखला कर लेखक जनता की आँखें खोलना चाहता है।

मालती नामक एक कुलवधू की दुश्चरित्रता नासिर नामक व्यक्ति के साथ उसका अनुचित सम्बन्ध तथा उसकी प्रेरणा से अपने पति को विष देने का प्रयत्न, असफल होने पर दासी द्वारा उसके पति मदन की हत्या, नासिर की उपेक्षा के फलस्वरूप मालती का पश्चाताप तथा अपनी 'भयंकर मूल' का अनुभव करके नासिर से बदला लेना तथा आत्म-हत्या —यह पुस्तक का एक कथा सूत्र है। दूसरा कथा सूत्र बसन्त कुमार तथा उनकी पतिव्रता पत्नी शारदा का है। नासिर शारदा को प्रलोभन देकर भ्रष्ट करना चाहता है, बसन्त वेश्यागामी है; अपनी सारी सम्पत्ति वेश्या-गमन में बरबाद करता है, अन्त में उस पर चोरी का लांछन लगता है फिर भी वह राजदरबार में पत्नी की सच्चरित्रता के कारण बच जाता है और इस 'पतित पति' का सुधार हो जाता है।

उपन्यास की कथा बहुत कुछ कवित्वपूर्ण तथा घटना-प्रधान रोमांचकता से परिपूर्ण है। कवितापूर्ण वार्तालाप, ऋतुवर्णन की शैली में लिखे हुए दृश्य-चित्र तथा नकाब पोशों की रहस्यमयता का वर्णन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि लेखक पर हिन्दी की आरम्भिक उपन्यास शैली का प्रभाव है। बाबू देवकी नन्दन खत्री की उपन्यास कला का प्रभाव तो बहुत ही स्पष्ट है। नकाब, सीटी की आवाज, संकेत शब्द, सुरंग का मार्ग, तलवार-युद्ध आदि के द्वारा लेखक ने कथा में रोचकता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है।

सामाजिक दृष्टि से लेखक ने प्रच्छन्न व्यभिचार तथा वेश्यागमन का बीभत्स चित्रण करके पाठकों का मन उस ओर से विरक्त करने का प्रयत्न किया है। कथक्कड़ व्यास जी और वाजपेयी जी वेश्या की जूठी सिगरेट, शराब पीते और समोसा खाते हैं और समाज में धर्म के ठेकेदार

बनते हैं, इस तथ्य को बड़ी निर्भीकता के साथ लेखक ने प्रदर्शित किया है। चौक (लखनऊ) के क्षेत्र में बाजपेयी लोगों का प्रमुख स्थान है। उसी क्षेत्र का चित्रण पाण्डेय जी ने किया है, सम्भवतः उनको कोई ऐसे ही बाजपेयी मिल गए होंगे, यद्यपि उन्होने कह दिया है कि 'इनको लोग बाजपेयी जी कहते हैं। पर हमको नहीं मालूम कि यह कहाँ के बाजपेयी हैं........।' पाण्डेय जी का दृष्टिकोण इस उपन्यास में एक ओर तो पूर्णतथा यथार्थवादी है यद्यपि दूसरी ओर उन्होने जीवन में आदर्श की सफलता का चित्रण किया है।

प्रारम्भिक रचना होने के कारण शैली में विशेष प्रौढ़ता के दर्शन नहीं होते। उर्दू की आशिक-माशूकाना कथाओं की शैली का प्रभाव बहुत कुछ दृष्टिगत होता है, यद्यपि उसमें हिन्दी शैली का समावेश कर दिया गया है। कथा-प्रवाह में बीच-बीच नीति-कथन के लिए लम्बे-लम्बे उपदेशात्मक वाक्य तथा पैराग्राफ रक्खे गए हैं जिनमें स्त्री शिक्षा, पातिव्रत धर्म, जुआ-निषेध, वेश्यागमन-निवारण आदि विषयों पर व्याख्यान हैं। शायरी का प्रयोग वार्तालाप के बीच प्रचुरता के साथ किया गया है; प्रत्येक व्यक्ति वियोग व्यथा को अभिव्यक्त करने के लिए शेर पढ़ता है। शृंगारिक दृश्यों का चित्रण करने के लिए घनाक्षरी, सवैया अथवा संस्कृत श्लोकों का भी सहारा लिया गया है। आलंकारिकता भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। वाक्चातुरी का प्रयोग तो आवश्यक ही था।

भाषा बहुत कुछ समयानुकूल तथा पात्रानुकूल है। सामान्यतः चलती हुई मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया है; उर्दू के प्रचलित शब्द प्रचुर संख्या में हैं। मुसलमान पात्रों के अधिक होने कारण भी उर्दू शब्दावली अधिक अपनानी पड़ी है; कहीं-कहीं असंस्कृत भाषा भी प्रयुक्त कर दी गई है किन्तु वह पात्रों के चरित्र का यथातथ्य चित्रण करने के लिए। अवधी का प्रयोग अपने ठेठ रूप में है। व्यास जी बाजपेयी जी से कहते हैं 'अरे तुम तौ बाजपेयी जी आज लोटिया बोरि दिहयो।' और व्यास जी को जब नजीर जान की जूठी सिगरट पीनी पड़ती है तो वे कहते हैं 'अच्छा लाओ पी लेई, हजूर का है, अपने हिसाब तुमहूँ एक

चेली हौं।' इत्यादि। लखनऊ में सामान्यतया अवधी के इसी, पश्चिमी रूप का प्रयोग होता है। सम्पूर्ण कथा का वातावरण मध्ययुगीन सामन्तशाही वातावरण से परिवेष्टित है। कथा में राजदरबार में ही न्याय आदि होता है, सारो शासन व्यवस्था भी कोतवाल, सेनापति आदि चलाते हैं। इस कारण भाषा को भी उन्हीं के अनुकूल चलना पड़ता है। राज सभा का एक दृश्य देखिए—'सभा के बीच में एक सोने का सुंदर सिंहासन धरा हुआ है जिसमें अनेक बहुमूल्य रत्न जड़े हुए जगमग २ कर रहे हैं……… यकायक सब सभा में सन्नाटा छा गया।………श्री १०८ युक्त महाराज मेदिनी पुरन्दरसिंह जी राजसिंहासन पर आकर बिराजमान हुए।' इत्यादि।

स्पष्ट है कि यह सिंहासन बत्तोसी और बैताल पच्चीसी की सी भाषा है जिसमें पण्डिताऊपन तथा भाषा-शैली की अस्थिरता स्पष्ट है।

वातावरण के अनुकूल चुटकुले जोड़ने में उर्दूप्रधान चलती हुई भाषा का एक उदाहरण देखिए—शराब पीने पर आपत्ति करने के कारण जो उत्तर एक बुड्ढे मियाँ को मिलता है वह यह है—

उन्होंने कहा—आप यह क्या करते हैं? मजहब के दुश्मन को मुँह लगाते हैं?

मैंने कहा—आप नहीं समझे, मैं मुँह नहीं लगता हूँ, यह मजहब की दुश्मन है इसी से मैं इसका खून पीता हूँ।

यह भाषा का एक बिलकुल भिन्न रूप है।

वास्तव में लेखक के सम्मुख केवल सामाजिक कुरीतियों को चित्रित करके समाज का पुनर्निर्माण करने की दृष्टि प्रधान थी; अतएव उसने कथा संगठन तथा भाषादर्श की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया; दूसरे उसका रचना-युग आरम्भ तो हो ही रहा था; अत: अस्तव्यस्तता होना उचित ही है।

यथार्थ के इतने स्पष्ट चित्रण को देखकर लेखक की निर्भीकता तथा स्पष्टवादिता का पता चलता है; द्विवेदी-युगीन सुधार भावना की प्रेरणा से लेखक का व्यक्तित्व इस पुस्तक में अपनी अभिव्यंजना की ओर उन्मुख हो रहा था, जिसने आगे चल कर हिन्दी को श्रेष्ठ साहित्य प्रदान किया।

---

(१०)

श्री निरंकार देव सेवक, एम० ए०, वकील, बरेली

स्वर्गीय पं० रूपनारायण पांडेय के दर्शनों का सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ। पर उनके नाम से मैं उस समय से परिचित था जब मैं पांचवी या छटी कक्षा का एक अबोध विद्यार्थी था और अपनी पाठ्य पुस्तकों में उनकी सरस कवितायें पढ़ा करता था। जब कालिज में पहुँचा और ऊँची कक्षाओं का विद्यार्थी हुआ तो माधुरी सम्पादक के सम्बन्ध से उनसे परिचित हुआ। उनके विषय में अधिक, नहीं पर इतना अवश्य जानता था कि वह पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की तरह एक बहुत बड़े सम्पादक हैं। सन् १६३६ या ४० में मेरी सबसे पहिली कविता 'विहग कुमार' 'विशाल भारत' में छपी थी। उसके बाद उसी में दो-चार और कवितायें प्रकाशित हुईं। उनमें से एक कविता 'राजा रानी' थी जो मेरी 'स्वस्तिका' नामक पुस्तक में संगृहीत है। कविताओं के इस प्रकार के प्रकाशन से मुझे प्रसन्नता होना स्वाभाविक था; पर मैं यह कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि मेरी वे प्रारंभिक रचनायें किसी भी महान साहित्यिक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकेंगी। अचानक एक मित्र ने बताया, 'माधुरी' में तुम्हारी 'राजारानी' कविता की आलोचना निकली है। मैंने उत्सुकता पूर्वक उसे देखा। स्वर्गीय पांडेय जी ने मेरी उस कविता की कुछ पंक्तियाँ 'विशाल भारत' से उद्धृत करके कुछ इस प्रकार की बात लिखी थी—'आज जब हमारे देश को नई चेतना और स्फूर्ति देने वाली उत्साह वर्द्धक कविताओं की आवश्यकता हैं हमारे कवि किस प्रकार की शृंगारिक कवितायें लिखने में व्यस्त हैं—

मैं अपने मन का राजा हूँ, तुम हो अपने मन की रानी।

पांडेय जी के इस लेख ने मेरे ऊपर वही असर किया जो तांगे में नये-नये जोते गए घोड़े की पीठ पर तांगे वाले का पहला चाबुक करता है। इस चाबुक ने मुझे सचेत कर दिया। मेरी रग-रग में सिहरन पैदा कर दी। मैं आज सोचता हूँ इस प्रकार के चाबुक यदि पीठ पर न पड़ते तो शायद मैं आगे चलकर सामाजिक क्रान्ति की वे कवितायें, जिनमें से

केवल कुछ मेरी पुस्तक 'चिनगारी' में संगृहीत हैं, नहीं लिख पाता। पांडेय जी सचमुच साहित्यिक महारथी थे। साहित्य के रथ के किसी भी घोड़े को वह चाहें कितना ही नया क्यों न हो, वह अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देते थे। मुझसे सर्वथा अज्ञात अपरिचित होते हुए भी पांडेय जी ने ठीक समय पर मुझे जो दिशा निर्देश किया उसके लिए मैं सदैव उनका आभारी रहूँगा।

(११)

श्री हरिकृष्ण त्रिपाठी, रिसर्चस्कालर, दीक्षितपुरा, जबलपुर

पंडित रूपनारायण पांडेय हिन्दी के सरस कवि थे। द्विवेदी-युग के सफल अनुवादकों की अवली में वे शीर्ष स्थान के भागी हैं, क्योंकि साहित्य-सृजन की दिशा में अनुवाद साहित्य का अपना मूल्य होता है। अनुवाद में मूल लेखक की वृत्ति, कल्पना एवं कला को अपनी भाषा और साहित्यिक परंपरा के अनुसार प्रस्तुत करना कठिन कार्य होता है। सतत् परिश्रम और अध्यवसाय से पांडेयजी ने उस दिशा में अच्छी सफलता पाई और वे सिद्धहस्त अनुवादक के रूप में विख्यात हुए। किन्तु इन सब बातों के अतिरिक्त वे एक सफल पत्रकार थे। पत्रकारिता अपने आप में एक कला है; यद्यपि इस कला को तांत्रिकी पक्ष में ही स्वीकृत किया जायगा। दैनिक अथवा साप्ताहिक पत्रों की अपेक्षा मासिक पत्रों का संपादन अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण तथा अपेक्षाकृत कम तांत्रिकी होता है, इसलिए संपादक की कलात्मक रुचि का अधिक प्रयोग मासिक पत्रों में ही संभव होता है। मासिक पत्र के संपादकों को गंभीर सामग्री के चयन तथा संपादन के अतिरिक्त पाठकों के अनुकूल वातावरण के निर्माण का कार्य भी करना होता है। इसके लिए उन्नत मनीषा एवं सर्वांगपूर्ण अध्ययन की नितांत आवश्यकता होती है। पंडित रूपनारायण जी में इन गुणों का प्राचुर्य था। इंदु, कान्यकुब्ज, सुधा और माधुरी आदि पत्रों का संपादन कोई २०-२५ वर्षों तक उन्होंने सफलतापूवक किया। इतने दीर्घ काल तक किया जाने वाला संपादकीय कार्य स्वयं अपने में 'मिशन' का द्योतक है, और

स्वतंत्र अध्ययन का विषय भी। यद्यपि यह कार्य परिश्रमसाध्य अवश्य है, किन्तु व्यक्तित्व के सर्वांगीण अध्ययन की दिशा में आवश्यक है।

जीवन और कृतित्व के अध्ययन की दिशा में निजी पत्र-व्यवहार बहुत सहायक होता है। प्रस्तुत प्रसंग में द्विवेदी युग के प्रसिद्ध लेखक पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री की साहित्य सामग्री के अध्ययन-संकलन के प्रयास में मुझे पांडेयजी के कुछ पत्र प्राप्त हुए हैं; उन्हें यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। उनसे पांडेयजी की संपादन कला संबंधी कुछ संकेत मिल सकते हैं। पांडेयजी के छै कार्ड इस प्रकार हैं:—

१

लखनऊ, १३-७-१९२३

प्रिय महाशय,

आपका कृपा कार्ड मिला। खां साहेब अब्दुल अजीज खां का चित्र हम ३) में ले लेंगे।

प्राय: आपके सभी लेख बहुत बड़े-बड़े हैं। इसीसे अभी तक माधुरी में हम उन्हें नहीं निकाल सकते। हम चाहते हैं कि अब आप कोई छोटे २ लेख भेजने की कृपा करें तो उन्हें हम माधुरी में फौरन निकाल देंगे। कृपा-भाव सदैव बनाए रखिए।

भवदीय

रूपनारायण पांडेय

२

लखनऊ २१-१-१९२४

आपका ता० १६-११-२४ का कृपा पत्र मिला। ....

.... इसी कारण लेख अब तक न छप सका। अब पौष या माघ की संख्या में जाने वाला है। आप हमारी कठिनाई का अनुभव नहीं करते। आप छोटे और अर्थपूर्ण लेख भेजा करें, तो तत्काल छप जाया करें। लेख समूचे देने में फिर अन्य विषय में कमी करनी पड़ती है।

भवदीय

रूपनारायण पांडेय

संपादक

३

लखनऊ ३१-१-१९२४

मान्य महोदय,

पत्र मिला।.... ....आपके पत्र का उत्तर यथासमय दे दिया गया था। मालुम नहीं आपको क्यों नहीं मिला। आप वह पुस्तकें भेज दें। हम चित्र तैयार करवाकर वापस कर देंगे। लेख भी उसका भेजिएगा। दया भाव रखिए।

भवदीय
रूपनारायण पांडेय
संपादक

४

लखनऊ १६-२-१९२४

प्रिय अग्निहोत्री जी,

आपका कृपा पत्र, गोरक्षा शीर्षक लेख और Live-stock and Form Mechanic नाम की पुस्तक मिली। आपकी आज्ञा के अनुसार पुस्तक के चित्रों को बनने के लिए प्रेस भेज दिया है। शीघ्र काम हो जाने पर लौटा दी जायेगी। चित्रों के नीचे हम पुस्तक के अनुसार गौओं के नाम लिख लेंगे। यह आप भली भाँति जानते हैं कि मैटर डेढ़ मास पहिले प्रेस में दिया जाता है। आपका यह लेख मैटर भेजे जाने पर मिला। अतएव हम इस लेख को नौवीं में नहीं तो दसवीं में छापेंगे। एक बात और प्रार्थना करते हैं। लेख हमारे पास इतने अधिक हो गए हैं कि हम प्रकाशित करने का समय नहीं बतला सकते। इस समय पहले के आए हुए लेख ही हम प्राय: खपाना चाहते हैं और पुराने लेख ही छाप रहे हैं। आपका लेख ९वीं या १०वीं में जायगा। आप कृषि-संबंधी लेख भेज सकते हैं। लेख छोटा और उपयोगी होना चाहिए। लेख छोटा और रोचक ढंग से लिखिए। हम छापेंगे। पुस्तक संबंधी पत्र आप अलग लिखा करें और माधुरी संबंधी अलग; नहीं तो चिट्ठियों को फाइल करने में बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती है।

भवदीय
रूपनारायण पांडेय
संपादक

५

लखनऊ २६-२-१६२४

प्रिय अग्निहोत्री जी,

आपका २५-२-२४ का कृपा-कार्ड मिला। आपकी भेजी हुई पुस्तक और गोरक्षा नाम का लेख हमें मिल गए हैं। ब्लाक बनने प्रेस को भेजा है। २-४ रोज में काम हो जाने पर आपके पास पुस्तक लौटाने का प्रयत्न करेंगे। आप निश्चिंत रहें। कृपा-भाव रखिये। आशा है, आप प्रसन्न होंगे।

भवदीय
रूपनारायण पांडेय

पुनश्च—

आप कृषि-संबंधी लेख माधुरी के लिए भेजना चाहते हैं। सो आप भेजिए, किन्तु छोटा और रोचक हो।

६

लखनऊ १५-१२-१६२७

प्रिय अग्निहोत्री जी,

पत्र मिला। 'सुधा' के समय तो हमने कोई आपका लेख वापस नहीं किया। मुमकिन है, माधुरी के समय में कोई लेख वापस कर दिया हो। खैर, अब आप कोई लेख निर्दिष्ट विषय पर अवश्य भेजिए। उसे 'सुधा' में यथासंभव अवश्य छापेंगे—आशा है, आप प्रसन्न हैं। गढ़वाणी पर सम्मति भी भेजिए।

भवदीय
रूपनारायण पांडेय
संपादक

इन पत्रों से पांडेयजी की संपादन संबंधी चार प्रमुख बातें सामने आती हैं :—

१—लेखकों की रचनाओं में संभवतः स्वतः कोई काट-छांट न कर उन्हें स्वयं छोटी एवं रोचक रचनाएँ प्रेषित करने को कहते।

२—पत्रिका को सर्वांगपूर्ण बनाने के उद्देश्य से विभिन्न विषयक सामग्री के सन्निवेश का ध्यान उन्हें बराबर रहता।

३—रचनाएँ लौटाकर लेखकों को निराश न करते और यथासंभव सुविधानुसार उन्हें प्रकाशित कर सभी प्रकार के लेखकों से सहयोग बनाए रखते।

४—पुस्तकों पर सम्मति-समीक्षा विषय के अधिकारी विद्वानों से कराते।

वस्तुतः किसी भी कुशल संपादक के लिए इन पर अमल करना आवश्यक भी है।

(१२)

श्री सत्यदेव शर्मा, लखनऊ

पं० रूपनारायण जी पाण्डेय द्विवेदी-युग के समर्थ साहित्यिकों में से थे। उन्होंने साहित्य की उस समय सेवा की, जब हिंदी की हीनावस्था थी। ऐसे युग में बँगला के ललित ग्रन्थों को अनूदित कर हिंदी-पाठकों में रुचि पैदा करके वे प्रेमचन्द और प्रसाद के उपन्यासों की पृष्ठ-भूमि बने। हिंदी पाठकों के लिए डी० एल० राय, शरत् और रवींद्र की कृतियों का रसास्वादन सर्वप्रथम उन्होंने ही सुलभ किया। उनका अनुवाद जहाँ तक मूल भावों का प्रश्न है मूल ग्रन्थ-जैसा ही रोचक है और पाठक एक क्षण के लिए भी यह अनुभव नहीं करता कि वह कोई मौलिक रचना नहीं पढ़ रहा। बंगला के अतिरिक्त संस्कृत के सुन्दर ग्रन्थों का अनुवाद भी उन्हों ने प्रस्तुत किया और सुलझी हुई शैली अपनाने के कारण वे हिंदी-पाठकों में काफी प्रसिद्ध हुए। श्रीमद्भागवत का उनका हिन्दी अनुवाद तो बहुत लोक प्रिय है। अनुवादक के रूप में पाण्डेय जी की देन कभी भुलायी नहीं जा सकती। उस समय इस प्रकार के अनूदित साहित्य की आवश्यकता अपरिहार्य थी—हिन्दी-साहित्य की श्री वृद्धि और उसका भंडार भरने के लिए। उनकी अनुवादित रचनाओं का मूल्यांकन ऐतिहासिक दृष्टि से होना चाहिए न कि मात्र-अनुवाद मानकर। वे समर्थ साहित्यिक होने के साथ ही कुशल पत्रकार भी थे। अपने पेशे में सच्चे, खरे, आदर्श और उद्योग-निरत रह कर उन्होंने 'माधुरी', 'सुधा', 'इंदु' का सफल सम्पादन किया

और उनकी यह सेवा 'सरस्वती' द्वारा की गयी सेवा से कदापि कम नहीं। आज के कितने ही प्रख्यातनामा और युगप्रवर्तक लेखक, आलोचक, कवि, कथाकार उनसे पोषण पाकर शीर्षस्थ हुए। उनके द्वारा सम्पादित सामग्री यदि मूल रूप में प्राप्त हो सके, तो उनका ऐतिहासिक युग अपने आप बोल उठेगा कि वे क्या थे। ऐसे मनीषी की श्रद्धाञ्जलि का सुयोग हमारे लिए संतोष एवं हर्ष का विषय है।

(१३)

श्री नरेन्द्र कुमार पांडेय एम. ए, संपादक 'जनमत', लखनऊ

पांडेय जी द्विवेदी युग से निरंतर हिंदी के भंडार को अपनी अनमोल कला कृतियों से आपूर्ण करने वाले दिग्गज साहित्यकार, कवि, कहानी व उपन्यासकार, अनुवादक, समीक्षक एवं संपादक थे। हिंदी में आज अनेक उच्च प्रतिष्ठाप्राप्त-साहित्यकार स्व० पांडेय जी के ही प्रसाद हैं। अपनी विलक्षण प्रतिभा, विद्वत्ता और कर्मठता से पांडेय जी ने साहित्य में प्रवेश करते ही, तत्कालीन साहित्य प्रेमियों को अपने 'भावी महान साहित्यकार' का संकेत दे दिया था। उनकी प्रथम कविता सन् १९११ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। सरलता और प्रसाद गुण उनकी आरंभिक रचनाओं से लेकर समस्त ग्रंथों की अपनी निजी विशेषता रही है।

हिंदी-साहित्य में वस्तुत: यदि आचार्य द्विवेदी के बाद किसी ने युग-निर्माता की कोटि का कार्य करके हिंदी को समृद्धिवान बनाने का नि:स्वार्थ बीड़ा उठाया तो वह पं० रूपनारायण पांडेय थे। 'माधुरी' के सुयोग्य संपादक के रूप में उन्होंने हिंदी को ऐसे अनमोल 'साहित्यिक रत्न' प्रदान किए, जिनके नाम गिनाना तो यहाँ संभव नहीं है, किंतु जिनके बिना आधुनिक हिंदी क्या होती—इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। एक वाक्य में वर्तमान अनेक प्रख्यात कलाकार, कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, समीक्षक एवं संपादक हिंदी को पांडेय जी की ऐसी देन हैं, जो स्वयं उनके स्नेह, सौजन्य और प्रोत्साहन से ही पुष्पित और पल्लवित हुए हैं। यदि पांडेय जी द्वारा प्रणीत १०० से ऊपर उनकी श्रेष्ठ

कृतियाँ हिंदी में न भी होतीं तो भी वे इतने ही श्रेय के अधिकारी होते। पर पांडेय जी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य हिंदी में अनुवाद-साहित्य की रिक्तता की पूर्ति था। आज हिंदी भारत की सम्मानित राष्ट्र-भाषा है। इस पद को प्राप्त करने तक उसे कैसी विकट कठिनाइयों और असह्य वेदनाओं को सहन करना पड़ा है, यह हिंदी-प्रेमियों से छिपा नहीं है। आज से ५० वर्ष पूर्व जब हिंदी के नाम से लोग मुँह बिचकाते थे, पांडेय जी ने उसे सर्वांगपूर्ण बनाने और उसकी उत्कट सेवा करने का व्रत लिया था।

स्वतंत्र भारत में राष्ट्र-भाषा के रूप में आदृत होने के बाद, हिंदी को अन्य भाषाओं से उत्कृष्ट सामग्री लेकर उसे समृद्ध बनाने के लिए हमारी सरकार की ओर से भी कहा जाता है और इस दिशा में राज्य सरकार ने यथेष्ट कार्य भी किया है; किंतु पांडेय जी ने इस बात को ५० वर्ष पूर्व ही समझ लिया था कि अन्य प्रांतीय भाषाओं के सौंदर्य से हिंदी की समृद्धि में तो अभिवृद्धि होगी ही, साथ ही भाषा-विवाद उठने के अवसर न आयँगें। भाषाओं को इस प्रकार परस्पर सन्निकट लाने से सद्भावना का प्रसार होता है। आज हिंदी पाठक रवीन्द्र, शरत और डी. एल. राय जैसे महान बंगला लेखकों से पूर्ण परिचित है। पांडेय जी द्वारा अनूदित कृतियों में उनका अनुवादक तो प्रच्छन्न रह जाता है और पाठक को मौलिक कृति का रस मिलता है। बंगला के दर्जनों सुंदर उपन्यासों के उन्होंने मोहक हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किए।

पांडेय जी की क्षमता असीम थी। साहित्य के हर क्षेत्र में उनका समान अधिकार था। कभी किसी ने उनसे किसी की निंदा नहीं सुनी। साहित्य के वे ऐसे 'शंकर' थे जो दैनिक अभावों और असुविधाओं का विषपान करते हुए भी सदा मुस्कराते रहते थे और साहित्य-साधना में कठोर श्रम करते रहते थे। निधन के दो दिन पूर्व, रुग्णावस्था के बावजूद, उन्होंने आठ-आठ घंटे काम करके अपनी अंतिम पुस्तक समाप्त की थी। नाम की इच्छा से कोसों दूर केवल काम में विश्वास करने वाले पांडेय जी सच्चे अर्थों में प्रगतिशील और श्रमजीवी साहित्यिक थे।

× × ×

विश्वास नहीं होता कि साहित्यिकों के सच्चे साथी और पथप्रदर्शक, सरलता और सौजन्य की प्रतिमूर्ति, प्रकांड विद्वता को अपनी मधु मुस्कान के आवरण में छिपाए हुए, राष्ट्रभाषा के अप्रतिम उन्नायक 'पांडेय जी' के अब दर्शन न होंगे। किंतु...........यथार्थ बड़ा क्रूर होता है—उसकी कठोर चट्टान पर भावुकता भले ही अपना सिर ठोंक-ठोंक कर धुन ले—वह विचलित हो जाए—असंभव ! 'पांडेय जी' आज नहीं हैं—यह यथार्थ है, किंतु उनकी पावन स्मृति, उनके साहित्यिक शिष्यों को सदैव उनकी भाँति ही, बिना फल की इच्छा के, निष्काम साहित्य-साधना के लिए प्रेरित करती रहेगी—और जब वे अपने पथ को तिमिराभिभूत पायँगें तो उस अलौकिक 'प्रकाशपुंज' से ज्योति विकीर्ण होगी—पथ-प्रदर्शन के लिए—नई प्रेरणा के लिए।

'मौन तपस्वी, हिंदी के उन्नायक 'रूप नारायण'।
वाणी-पुत्र ! प्रणाम पुनः भावांजलि-मर्म-समर्पण ।।'

परिशिष्ट

(१)

एक अभिनंदन पत्र

[पांडेय जी को भेंट किये गये अनेक अभिनंदन-पत्रों में से एक]

मान्यवर !

हम 'शतदल' के सदस्य, कवि, कलाकार और लखनऊ के नागरिक आपकी ६६वीं वर्षगाँठ के पुण्य अवसर पर एकत्र होकर हृदय से आपका अभिनन्दन करते, एवं आपके दीर्घजीवी होने की शुभ कामना प्रकट करते हैं।

कविवर !

आपने अपने और खड़ीबोली के नवयौवनकाल में ब्रजभाषा काव्य की समस्त विशेषताओं को बड़ी सुन्दरता के साथ खड़ीबोली में सँवार कर उस युग के अपने अन्य कवि-बन्धुओं के साथ नई हिन्दी को नयी चेतना दी, भाषा को भारतीय काव्य परम्परा के रस से सिद्ध किया। आपने मानव हृदय की उच्चतम भावनाओं से हिन्दी के काव्य साहित्य को सुअलंकृत किया है। खड़ीबोली के प्रतिष्ठापक कवि ! उस युग के पुण्य-वान् प्रतीक के स्वरूप में आपके भव्य साहित्यिक व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित कर हम आपको अपने हृदय-सुमनों की माला अर्पित करते हैं।

सम्पादकवर !

आपने 'नागरी प्रचारक', 'निगमागम चंद्रिका', 'इन्दु', 'कान्यकुब्ज', 'माधुरी' और 'सुधा' जैसी हिन्दी की श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाओं का सम्पादन कर हिन्दी साहित्य को जो स्वस्थ गति प्रदान की है, वह भविष्य के सम्पादकों के लिये सदा आदर्श के रूप में अमर रहेगी। नवयुग के वाहक आचार्य द्विवेदी जी के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए आपने

पुराने साहित्य और साहित्यकारों को सम्पूर्ण मानगौरव प्रदान करने के साथ ही साथ नयी विचार धाराओं और साहित्य-शैलियों को गति दी है। साहित्य और कला से जनता-जनार्दन का सांस्कृतिक कोष समृद्ध होता है। सम्पादक के रूप में आपने समाज-देवता की इस निधि की भली भाँति रक्षा की है, उसे बढ़ाया है। इसके लिये हिन्दी भाषा का साहित्य और समाज आपका चिर ऋणी रहेगा।

श्रेष्ठ साहित्यिक !

संस्कृत तथा बंगला से श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद कर तथा अपनी मौलिक रचनाओं से आपने राष्ट्र भाषा के साहित्य को समृद्ध किया है; और इस तरह हिन्दी के कलाकारों को प्रेरणा दी है। आपने अपना समस्त जीवन सत्साहित्य के निर्माण में लगाया है। आपकी विद्वता, विशाल हृदयता, सज्जनता और शालीनता साहित्य-जनोचित और समाज के लिये अनुकरणीय हैं।

इस पुण्य अवसर पर आपका अभिनन्दन करते हुए हम हिन्दी के प्राचीन गौरव और नये साहित्य का अभिनन्दन करते हैं। हम हृदय से कामना करते हैं कि सरस्वती की सेवा में संलग्न होकर अपने बहुमूल्य जीवन के आने वाले अनेक वर्षों तक आप नवयुग के इतिहास को महत्त्व और गौरव प्रदान करें।

हम हैं आपके प्रशंसक—

'शतदल' के सदस्य, कवि, कलाकार

और

लखनऊ के नागरिक

लखनऊ

२२ अक्टूबर, १९५०